(कमलाचण्डीग्रन्थमाला - ४)

श्रीकृष्णविद्यावागीश भट्टाचार्येण विरचिता

षट्-कर्म-दीपिका

'अंजलि' हिन्दी व्याख्या संवलिता

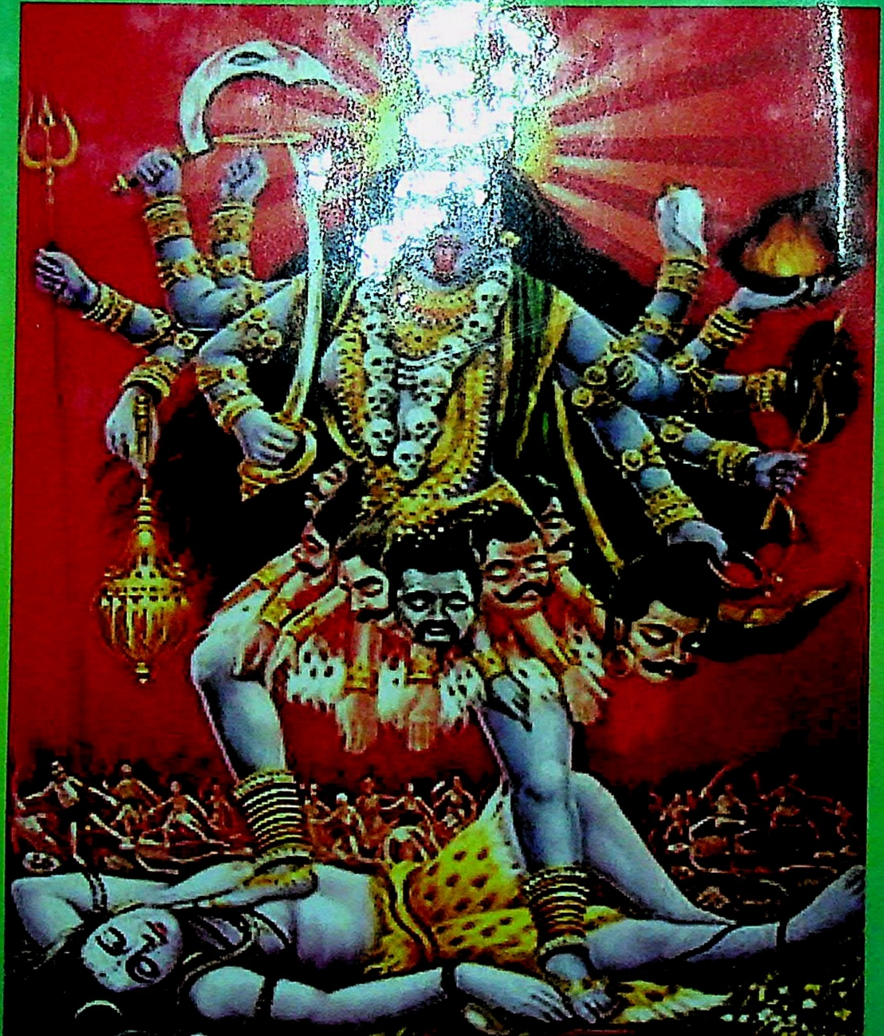

भाष्यानुवाद
स्वामी श्री शत्रुघ्न दास
सहायक
आरती शर्मा 'ऋचा'

सम्पादक
'कुलमार्तण्ड'
मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

(कमलाचन्डीग्रन्थमाला - ४)

श्रीकृष्णविद्यावागीश भट्टाचार्येण विरचिता

षट्-कर्म-दीपिका

'अंजलि' हिन्दी व्याख्या संवलिता

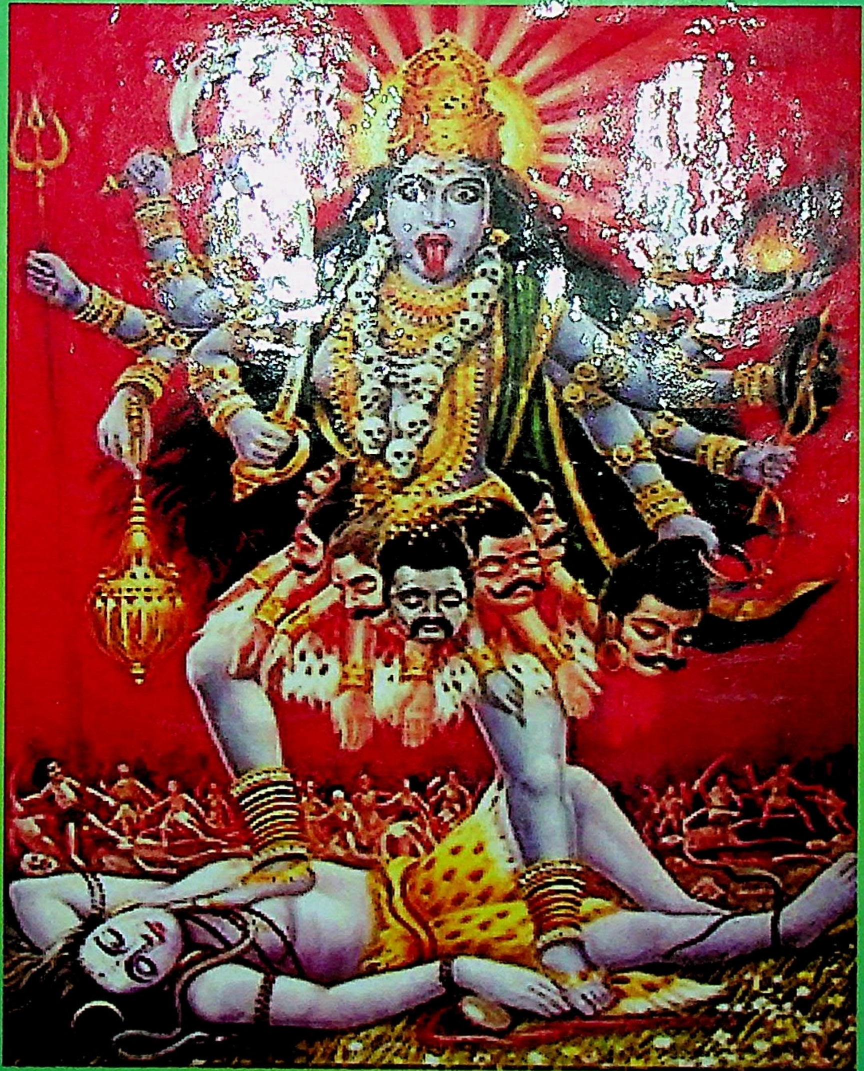

भाष्यानुवाद
स्वामी श्री शत्रुघ्न दास
सहायक
आरती शर्मा 'ऋचा'

सम्पादक
'कुलमार्तण्ड'
मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

कमलाचण्डी ग्रन्थमाला-४

श्री कृष्ण विद्यावागीश भट्टाचार्य-विरचिता

षट्-कर्म दीपिका

'अंजलि' - हिन्दी व्याख्या संवलिता

व्याख्याकार

स्वामी शत्रुघ्न दास

सहायक

आरती शर्मा "ऋचा"

सम्पादक

"कुलमार्तण्ड" - पं० मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

प्रकाशक
श्री मधुसूदन प्रकाशन
पो०ओ० जाखचौरा,
टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)

प्रकाशक :

श्री मधुसूदन प्रकाशन
पो०ओ० - जाखचौरा
टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)
दूरभाष - 09760219141, 09997979276, 09411184063
mail : vikasthapliyal31@gmail.com

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 2015 (रामनवमी 2072)

मूल्य 250/- मात्र

मुख्य प्राप्ति स्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
469/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं0 21 ए, अंसारी रोड,
दरिया गंज, नई दिल्ली - 110002
फोन - 011-32996391

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117, गोपाल मन्दिर लेन
पो.बॉ. नं. 1129, वाराणसी-221001
फोन - 0542-2335263

टाईपसेटिंग :

कृष्णा कम्यूनिकेशन्स, ऋषिकेश

मुद्रक : आईशा प्रिटिंग प्रैस, देहरादून 0135-2650064

Kamla-Chandi Granthmala - 4

SHAT-KARMA DEEPIKA

By

Shri Krishna Vidya Vagish Bhattacharya

(With - Anjali Hindi Commentary)

Translated by

SWAMI SHATRUGHNA DAS

Assisted by

ARTI SHARMA "RICHA"

Edited by

"KULMARTANDA"
MADHSUDAN PRASAD SHUKLA

Published by
Madhusudan Prakashan
P.O. - Jakh Chaura, Tehri-Garhwal
Uttarakhand - 249130

Publishers :
Shri Madhusudan Prakashan
P.O. Jakhchaura, Tehri Garhwal
Uttarakhand - 249130
Tel. : 9760219141, 9997979276, 9411184063
E-mail : vikasthapliyal31@gmail.com

© All Rights reserved with the Publisher

First Edition - 2015 (Ram Navami-2072)

Price : 250/-

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : 011-32996391

CHAUKHAMBA SURBHARTI PRAKASHAN
K.37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. : 0542-2335263

Typesetting :
Krishna Communications, RKSH

Printed by :

समर्पण

पूज्य पिता स्व० पं० श्री चण्डी प्रसाद थपलियाल जी
की पावन स्मृति में
सादर समर्पित

'प्रकाशक'

पूर्व-पीठिका

तन्त्र साहित्य के सुधी पाठकों के समक्ष हिन्दी अनुवाद और क्रिया विधि निरूपण सहित 'षट्कर्म दीपिका' नामक यह ग्रन्थ रत्न प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है। महामहोपाध्याय पूज्यपाद गोपीनाथ कविराज के 'तान्त्रिक-साहित्य' में दिये गये विवरण के अनुसार यह ग्रन्थ-रत्न बंगला लिपि में वर्षों पूर्व प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी अनुवाद और क्रिया विधि निरूपण सहित देव नागरी लिपि में इस ग्रन्थ का यह प्रथम प्रकाशन है। यह एक संग्रह-ग्रन्थ है और इसका निबन्धन श्री कृष्णानन्द विद्या-वागीश भट्टाचार्य ने सोलहवीं शताब्दी में किया था। श्री कृष्णानन्द विद्या वागीश ने पंद्रहवीं शताब्दी के अंत में गौड़ देश (बंगाल) में जन्म लिया था। विद्वानों का कथन है कि श्री कृष्णानन्द विद्या वागीश और गौराङ्ग महाप्रभु बचपन में सहपाठी थे। विद्यार्जन के बाद श्री कृष्णानन्द विद्या-वागीश ने बंगाल की पुण्य भूमि में तन्त्र-साधना का प्रचार और परिष्कार किया और गौराङ्ग महाप्रभु ने कृष्ण-भक्ति की सरिता बहाई। तन्त्र-साहित्य के सुधी पाठकों के लिए श्री कृष्णानन्द विद्या-वागीश अपरिचित और अनजान नाम नहीं है। उनकी एक अन्य कृति 'तन्त्रसार' को आर्ष तन्त्र-साहित्य में एक प्रामाणिक एवं प्रौढ़ कृति की प्रतिष्ठा प्राप्त है। वे तन्त्र-साहित्य के चूड़ान्त विद्वान् और क्रियाशील सिद्ध साधक थे। अतएव उनकी इस प्रस्तुत कृति की प्रामाणिकता तथा शास्त्रीयता स्वयं सिद्ध है।

तन्त्र और षट् कर्म

षट् का अर्थ है छ:। आर्ष मान्यताओं में षट् का बहुत महत्व है। मनुष्य के काम-क्रोध आदि छ: शत्रु हैं। वर्ष में वसन्त-ग्रीष्म आदि छः ऋतुएं होती हैं। मधुर-तिक्त-काषाय आदि छः रस हैं। वेदों पर आधारित सांख्य-योग-वेदान्त आदि छः दर्शन हैं। शिक्षा-कल्प-निरुक्त-व्याकरण-छन्द-ज्योतिष वेद के छः अंग हैं। इसी तरह तन्त्र में छः प्रकार के कर्म हैं जिन्हें सामूहिक रुप से षट्-कर्म कहा जाता है। 'कर्म' एक पारिभाषिक पद है। कर्म और क्रिया में अन्तर है। जब किसी उद्‌देश्य विशेष की पूर्ति के लिए यथा विहित विधि से कोई अनुष्ठानात्मक क्रिया की जाती है तो उसे 'कर्म' कहते हैं। तन्त्र शास्त्र में इनकी संख्या छः मानी गयी है।

केवल छः कर्म ही क्यों?

यहाँ यह सहज जिज्ञासा होती है कि जब मनुष्य की इच्छाओं की कोई संख्या निश्चित नहीं है और न ही उद्देश्यों की और प्रयोजनों की संख्या निर्धारित तथा निश्चित है, तो फिर तन्त्र में इन तमाम इच्छाओं और प्रयोजनों की पूर्ति के लिए केवल छः कर्म ही क्यों निर्धारित किये गये हैं? प्रयोजन-सिद्धि के इन कर्मों की संख्या छः ही क्यों है?

इस जिज्ञासा या प्रश्न का समाधान वहुत सरल है। हम अपने हाथ-पैर आदि पंच कर्मेन्द्रियों से नाना प्रकार की क्रियायें और चेष्टा करते हैं मगर हमारी इन सारी क्रियाओं या कर्मों का समाहार 'वचनादान गमन विसर्ग आनन्द' संज्ञक पाँच क्रियाओं में हो जाता है, उसी तरह मनुष्य की अनन्तानन्त इच्छाओं, कामनाओं, उद्देश्यों और प्रयोजनों का समाहार इन षट्-कर्मों में हो जाता है। ये षट्-कर्म हैं :- (1) शान्ति (2) वश्य (3) स्तम्भन (4) विद्वेषण (5) उच्चाटन और (6) मारण।

यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम उद्देश्य (अध्याय) में ही इन कर्मों की प्रयोजनीयता को स्पष्ट कर दिया गया है, फिर भी त्वरित सन्दर्भ के लिए इन षट्-कर्मों से परिचित हो जाना सर्वथा सन्दर्भ सापेक्ष है।

शान्ति कर्म - जिस कर्म के विधिवत् सम्पादन द्वारा शारीरिक एवं मानसिक रोगों, पर प्रयोग जनित कृत्या-प्रभावों तथा अमंगल करने वाले ग्रहों के दोषों का निवारण किया जाता है, वह शान्ति-कर्म है। आर्थिक सुख-समृद्धि तथा पारिवारिक सुख-शान्ति, शारीरिक निरोगता एवं अन्य पुष्टि कर्म इसी के अन्तर्गत आते हैं।

वश्य कर्म - जिस कर्म के द्वारा समस्त प्राणियों (विशेषकर मनुष्यों) के मनोभावों में परिवर्तन करके उन्हें अपने अनुकूल बना लिया जाता है, उसको 'वश्य' या वशीकरण कहते हैं। मोहन और आकर्षण भी इसी के अन्तर्गत हैं।

स्तम्भन - समस्त प्राणियों की मानसिक तथा शारीरिक प्रवृत्तियों को निरुद्ध कर देना स्तम्भन कर्म है।

उच्चाटन - किसी व्यक्ति को अपने देश या स्थान से भ्रष्ट कर देना या भगा देना उच्चाटन कर्म है।

विद्वेषण - परस्पर प्रेम करने वाले दो व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों में परस्पर द्वेष उत्पन्न कर देना विद्वेषण कर्म है।

मारण - अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किए बिना किसी का प्राण हरण कर लेना मारण कर्म है।

यदि गम्भीरता से विचार और संश्लेषण किया जाये तो मानवीय जीवन की सभी आवश्यकतायें उपर्युक्त षट्-कर्मों के दायरे में आ जाती हैं। इसलिए तन्त्र-मनीषियों ने इनकी संख्या छः तक सीमित रखी है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन सभी छः कर्मों के मन्त्र तथा साधन की क्रिया-विधि बताई गई है। इसके साथ ही तन्त्र-साधना की सामान्य क्रिया-विधि का निरूपण भी इस ग्रन्थ में किया गया है।

षट्-कर्मों की व्यापकता

प्रस्तुत ग्रन्थ में षट्-कर्म साधन की विपुलता देखकर यह नहीं समझना चाहिए कि तंत्र-शास्त्र में इन कर्मों के साधन के लिए इतने ही मन्त्र या इतने ही विधान हैं। यथार्थ यह है कि सम्पूर्ण तन्त्र साहित्य इन षट्-कर्मों से भरा पड़ा है। शायद ही ऐसा कोई तन्त्र ग्रन्थ हो, जिसमें षट्-कर्मों या इनमें से कुछ कर्मों का उल्लेख या विधान न हो। शायद ही कोई ऐसा मन्त्र हो जिसका प्रयोग सभी या किसी 'कर्म' के साधन के लिए नहीं किया जा सके। चाहे वह भगवती बाला का त्र्यक्षरी मन्त्र हो अथवा भगवती चण्डी का 'नवार्ण' मन्त्र, चाहे भगवती ललिता का पञ्चदशाक्षरी मन्त्र हो या भगवती दक्षिणकालिका का द्वाविंशदक्षरी मन्त्र – इन सभी मन्त्रों से षट्-कर्म साधन के विधान ग्रन्थों में बताये गये हैं। देवी बगलामुखी के मन्त्रों के इतने प्रयोग बताये गये हैं कि वैष्णवी शक्ति देवी पीताम्बरा मोक्ष दायिनी के बजाय शत्रु संतापकारिणी के रूप में जानी जाती है। गायत्री मन्त्र का भी षट्-कर्म साधन विधान ग्रन्थों में मिलता है। काली, तारा, महात्रिपुरसुन्दरी आदि महाविद्याओं के मन्त्रों की विशेषता यह है कि इनकी साधना करके मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है, राज्य भी प्राप्त किया जा सकता है, और शत्रु का दमन भी किया जा सकता है। तन्त्र-ग्रन्थों में जहां इन महाविद्याओं के मन्त्रों का षट्-कर्म साधन विधान बताया गया है, वहीं यह भी कहा गया है कि साधक को काम्य कर्मों में तत्पर नहीं होना चाहिए –

> **''शुभं वाप्यशुभं वापि काम्य कर्म करोति यः।**
> **तस्यारित्वं व्रजेन्मन्त्रो, न तस्मात्तत्परो भवेत्॥''**

मन्त्र महोदधि (२५/७३) में जो उपर्युक्त निदेश दिया गया है, वैसे ही निदेश अन्य तन्त्र ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

केवल 'काम्य कर्म' मन्त्र

तन्त्र ग्रन्थों में गणेशजी और महाविद्याओं के मन्त्रों से षट्-कर्म साधन बताने के साथ ही सैकड़ों ऐसे मन्त्र बताये गये हैं जिनसे किसी विशेष 'कर्म' ही किया जा सकता है। 'वश्य' मन्त्र से केवल वशीकरण होगा, उच्चाटन या विद्वेषण नहीं। विद्वेषण मन्त्र से केवल विद्वेषण होगा स्तम्भन या मारण नहीं। प्रस्तुत ग्रन्थ में इसी कोटि के मन्त्र और उनका साधन विधान बताया गया है। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है, प्रत्येक कर्म के लिए इस प्रकार के सैकड़ों मन्त्र होने के बावजूद प्रत्येक कर्म का अधिष्ठायी देवता एक ही होता है। मन्त्र-भेद होने से, साधन-क्रिया में कुछ भेद होने के बावजूद अधिष्ठायी देवता में भेद या परिवर्तन नहीं होता। इसका निरूपण प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम उद्देश्य (अध्याय) में किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि तत् तत् 'कर्म' के मन्त्र की साधना या प्रयोग करते समय तत् तत् कर्म के अधिष्ठायी देवता का यथा विधि अर्चन करना चाहिए।

आदर्श और यथार्थ

यहाँ यह जिज्ञासा भी की जा सकती है कि जब तन्त्र का उद्देश्य आत्मा का परमात्मा में विलय है तथा उच्च तन्त्र ग्रन्थों में काम्य कर्मों का निषेध किया गया है तो फिर इन्हीं तन्त्र-ग्रन्थों में काम्य-कर्मों के अनुष्ठान का विस्तार से निरूपण क्यों किया गया है। बेहतर तो यह होता कि काम्य कर्मों के अनुष्ठान का विधान ही नहीं बताया गया होता। हां! निस्संदेह यह श्रेष्ठ स्थिति होती मगर ऐसा होने से तन्त्र-साहित्य का चरित दर्शन-शास्त्र की तरह एकांगी हो जाता। सांसारिक जीवन के लिए आवश्यक अर्थ और काम रूप दो पुरुषार्थों की सिद्धि के लिये कोई विधान ही शेष नहीं रहता, जबकि हमारी आर्ष जीवन-दृष्टि मोक्ष रूप पारमार्थिक लब्धि को सर्वोच्च वरीयता देने के साथ ही धर्म पूर्वक अर्थ और काम को भी समान रूप से महत्व देती है। वेदों में सांसारिक जीवन के अभ्युदय, देश और राष्ट्र की सुरक्षा एवं समृद्धि, शत्रुओं के पराभव तथा दमन, कृत्या एवं रोगों के शमन आदि के लिए पचासों सूक्त एवं स्तवन हैं। तन्त्र ने भी वेदों के इसी संतुलित एवं सामंजस्य पूर्ण मार्ग का अवलम्बन करते हुए मनुष्य के सांसारिक एवं सामाजिक जीवन की समस्याओं के निराकरण तथा जीवन की खुशहाली के लिए षट्-कर्म विधान प्रस्तुत किया है। जिस तरह यात्रा करते समय हम मार्ग के सभी अवरोधों और अड़चनों, विघ्नों और बाधाओं को दूर करते हुए आगे बढ़ते हैं, उसी तरह सांसारिक एवं सामाजिक जीवन के कारण साधना मार्ग में आने वाले व्यवधानों और अवरोधों का निराकरण करते हुए आगे बढ़ने के लिये ये षट्-कर्म विधान बताये गये हैं।

अभिचार कर्म

इन षट्-कर्मों में उच्चाटन-विद्वेषण और मारण निस्सन्देह क्रूर कर्म हैं। ऐसे कर्म जिनको करने से पाप लगता है। इन कर्मों का क्या औचित्य है? यदि इस सवाल पर गम्भीरता से विचार किया जाये तो इन क्रूर कर्मों का भी उज्जवल पक्ष है। किसी गरीब की जमीन पर किसी आततायी दबंग ने कब्जा कर रखा है, उस जमीन से उस दबंग का कब्जा हटा देना (उच्चाटन) क्या गुनाह है? गांव और समाज को सताने और परेशान करने के लिए षडयन्त्र करने वालों के बीच फूट डालना (विद्वेषण) क्या गुनाह है? इसी तरह हत्या पर आमादा शत्रु को अपनी आत्मरक्षा के लिए मार देना क्या गुनाह है? ये क्रूर कर्म ऐसी ही विषम परिस्थितियों से अपनी और समाज की रक्षा के लिए बताये गये हैं। साथ ही यह हिदायत भी दी गई है कि ऐसे क्रूर कर्म करने के बाद साधक को यथा-विधि प्रायश्चित भी करना चाहिए।

यह है तन्त्र-साहित्य और तन्त्र साधना में षट्-कर्म विधान की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि। इसके परिप्रेक्ष्य में ही हमें इन कर्मों की उपयोगिता, आवश्यकता तथा करणीयता का मूल्यांकन करना चाहिए।

एक निवेदन!

इस ग्रन्थ के सुधी पाठकों से एक नम्र-निवेदन है, यह ग्रन्थ उनके अध्ययन और अकादमिक ज्ञान के लिए है। कृपया इस ग्रन्थ को पढ़कर षट्-कर्म साधन का सरंजाम नहीं करें। बिना गुरु के षट्-कर्म विधान का अनुष्ठान मना है, जैसा कि ग्रन्थ के प्रथमोद्देश में कहा गया है -

'गुरु बिनाऽपि शास्त्रेऽस्मिन्नाधिकारः कथञ्चन'

गुरु के बिना इस शास्त्र में प्रवेश का अधिकार नहीं है, लेकिन आजकल इसके सर्वथा विपरीत हो रहा है। ''स्वयम्भू गुरु'' तन्त्र साधना की ओट में 'माला-मुन्दरी' का व्यवसाय चला रहे हैं तो ''कतरन-बटोर'' तन्त्र विदों ने अशास्त्रीय, अप्रामाणिक तथा मनगढंत 'साधना-ग्रन्थों' का अम्बार लगा दिया है। ऐसी परिस्थिति में प्रस्तुत-कृति एक दीप स्तम्भवत् है जो ज्ञान पिपासु पाठकों और श्रद्धावान् साधकों का मार्ग-दर्शन करने में सक्षम है।

ग्रन्थ के बारे में

इस ग्रन्थ को दीप स्तम्भवत् निरूपित करने के पीछे ठोस कारण है। पहली बात तो यह ग्रन्थ तन्त्र-शास्त्र के चूडान्त विद्वान् और सिद्ध-साधक कृष्णानन्द विद्या-वागीश के द्वारा निबंधित है। दूसरी बात यह कि मूल बंगला संस्करण से क्रिया-विधि निरूपण सहित इसे हिन्दी में जिन्होंने प्रस्तुत किया है, वे स्वामी शत्रुघ्न दास एक बहुभाषा विद्, मनस्वी, अध्ययनशील विद्वान् होने के साथ ही भगवत् साधनारत आत्मतुष्ट चतुर्थाश्रमी साधक हैं। ऐसे मनस्वी तपोनिष्ठ साधक के द्वारा प्रणीत या भाष्यकृत ग्रन्थ केवल उनकी विद्वता का नहीं अपितु उनकी साधना का भी प्रतिफल होता है। प्रस्तुत कृति को हम एक ऐसा ही ग्रन्थ मान सकते हैं।

'पार्थिव पूजन' एवं वन दुर्गा विधान

दूसरी बात यह कि इस कोटि के भाष्यकार स्वतः प्रेरणा से मूल-ग्रन्थ में सन्दर्भ सापेक्ष अनुषांगिक सामग्री भी प्रस्तुत कर देते हैं। प्रस्तुत कृति इसका अपवाद नहीं है। 'पार्थिव पूजन' तथा 'वन दुर्गा साधन विधान' प्रस्तुत ग्रन्थ में स्वामी जी का विचक्षण अवदान है।

भगवती वन दुर्गा की साधना एक ऐसी अचूक साधना है जिसके द्वारा व्यष्टि और समष्टि जीवन की सभी और प्रत्येक समस्या का समाधान किया जा सकता है, और भगवान शिव तो षट्कर्म साधकों के भी एक मात्र शरण्य हैं जिनकी शरण में जाकर उन्हें षट्कर्म साधना जन्य ताप से अपनी रक्षा करनी चाहिए। भगवान् शिव के पार्थिव पूजन का जितना क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित तथ सांगोपांग निरूपण प्रस्तुत कृति में किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

वैदिक-मन्त्र

इसके साथ ही ग्रन्थ की इस प्रस्तुति में एक विशेष बात और भी है। 'मूल-ग्रन्थ' में वैदिक मन्त्रों का सांकेतिक उल्लेख करके संक्षेप में उनका साधन-विधान बताया गया है। भाष्यकार स्वामी जी ने इन मन्त्रों का सम्पूर्ण परिचय देते हुए यथा विस्तार उनका साधन-विधान प्रस्तुत किया गया है, जो उनकी अध्ययनशीलता तथा बहुज्ञता का परिचायक है।

अन्त में कविता

प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में "साधक की अनन्त यात्रा" शीर्षक कविता की प्रस्तुति ग्रन्थ के प्रकाशक का विचक्षण प्रयोग है। शायद इसका प्रयोजन यह इंगित करना है कि षट्कर्म के प्रपञ्च में न उलझते हुए साधक को अपनी संसार यात्रा को यथा सम्भव संक्षिप्त करके त्वरित गति से उस बिन्दु पर पहुंचना चाहिए जहां से उसकी संसार-यात्रा प्रारम्भ हुई थी। तन्त्र-साधना का सर्वोच्च पारमार्थिक लक्ष्य यही है।

विनीत

माघ पूर्णिमा
२०७१ विक्रमी

मधुसूदन प्रसाद शुक्ल
विलासपुर (छत्तीसगढ़)

विषयानुक्रमणिका

प्रथमोद्देश (सामान्य धर्मः)

१. ग्रन्थावतरणम् - १
२. षट्कर्मणां सर्वकालिकत्वम् - २
३. षट्कर्माणि (नामानि) - २
४. षट्कर्मणां लक्षणम् - २
५. षट्कर्मणां देवताः - ३
६. षट्कर्मणां दिङ्नियमः - ३
७. षट्कर्मणां ऋतुकालादि निर्णयः - ३
८. प्रकारान्तरं-ऋतुनिर्णयम् - ४
९. षट्कर्मणां ऋतवः - ४
१०. षट्कर्मणां तिथिवारनियममाह - ४
११. षट्कर्मणां नक्षत्रनियममाह - ५
१२. कालविशेषश्च - ६
१३. षट्कर्मणां लग्ननियममाह - ६
१४. भूतोदये षट्कर्म-नियमः - ७
१५. षट्कर्म-दिङ्नियमस्तु तन्त्रान्तरे - ७
१६. षट्कर्मणां वर्णभेदमाह - ८
१७. उत्थित सुप्तोपविष्टादयः - ८
१८. मन्त्रस्याधिष्ठातृदेवतामाह - ९
१९. मन्त्राणां वर्णसंख्याभेदे संज्ञा,
कार्यविशेषेपु च तेषां प्रयोगश्च - ९
२०. कार्यविशेषे योजनपल्लवादि निर्णयः -१०
२१. पुनः सम्पुटमाह भट्ट धृतम् -११
२२. कर्मविशेषे हुं फट् वषडादीनि -१२
२३. स्त्रीपुंनपुंसकमन्त्रनियममाह -१३
२४. आग्नेयसौम्येत्यादि मन्त्रधर्मः -१३
२५. मन्त्राणां सुप्तप्रबुद्धकालाः -१३
२६. आसनानि -१४
२७. विकट-कुक्कुटासनयोर्लक्षणम् -१४
२८. षण्मुद्राः -१५
२९. देवध्यानमाह -१५

द्वितीयोद्देशः (कुण्डादि नियमाः)

१. रक्षार्थम् -१६
२. षट्कर्मसु कुण्डनिर्देशः -१६
३. यथोत्तरं प्रयोगोत्कर्षः -१८
४. कुम्भ स्थापनम् (आङ्गिरसे) -१८
५. रुद्र-ध्यानं पूजनञ्च -१९
६. शत्रोर्भयनिवृत्तये अन्तिमोपाय
रूपेण मारणम् -२०
७. विशुद्धेश्वर तन्त्रे स्वाप जागृत कालः -२१
८. माला निर्णयः -२१
९. जपाङ्गुलिनियमः -२२
१०. जपदिङ्नियमः -२२
११. जपलक्षणं-वाचिकादिमन्त्राश्च -२३
१२. कुण्डदिङ्नियमः -२३
१३. शान्त्यादौ द्रव्य-नियमः -२३
१४. वह्नेर्जिह्वाः -२६
१५. अन्यत्रापि वह्नेर्जिह्वाः -२६
१६. अग्नेर्नामानि -२७
१७. होम व्यवस्था -२७
१८. सुक्स्रुवनियमः -२८
१९. होममुद्राः -२९

तृतीयोद्देश

१. ऋषय ऊचुः - -३१
हरेर्नामत्रयस्य माहात्म्यं जिज्ञासा
२. ब्रह्मोवाच -३१
३. अच्युतादि नाम मन्त्रस्य ऋषि-छन्दादि-३१
४. हरि ध्यानं जप पूजनञ्च -३२
५. प्रयोग विधिः -३३
६. आथर्वणोक्त ज्वरशान्तिः -३५
७. तन्त्रोक्त ज्वरशान्तिप्रयोगः
(तुम्बुरभैरव ध्यानम्) -३६
८. तुम्बुर भैरव मन्त्र-प्रयोगश्च -३७
९. सञ्जीवनी विद्या -३८
१०. मृत्तिका शिवलिङ्ग पूजाविधिः -३८
११. कालोत्तरे नारदवाक्यम् -३८
१२. स्कन्दपुराणे लिङ्गार्चन माहात्म्यम्-३९
१३. लिङ्ग प्रमाणम् -४०
१४. कालोत्तरे लिङ्ग प्रमाणम् -४०
१५. लिङ्ग पुराणे प्रमाणम् -४०
१६. प्रमाणमन्यत तन्त्रान्तरे -४०
१७. प्रमाणान्तरं शिवधर्मे -४१

१८. तथाह लिङ्गपुराणे -४१
१९. मन्त्र तन्त्र प्रकाशे -४१
२०. शिव पूजा विधानम् -४२
२१. अग्नि पुराणे -४२
२२. शैवागमे -४२
२३. लिङ्ग पुराणे -४३
२४. लिङ्ग मुद्रा -४३
२५. मुखवाद्यफलम् -४३
२६. लिङ्गस्तवः (भविष्य पुराणोक्त) -४४
२७. शैव वर्जनीयनि-यथा शिव-धमोत्तरे -४६
२८. शिव लिङ्ग पूजा प्रयोगः -४६
२९. तथाह लैङ्गे (लिङ्गपुराणे) -४८
३०. शिव रहस्ये-शिव निर्माल्य-भोजनम् -४८
३१. हारीतोक्त नक्षत्र दोषाज्ज्वर शान्तिः -४९
३२. नक्षत्र-दोषजन्य ज्वर भोग कालः -४९
३३. हारीतोक्त ज्वरशान्तिविधानम् -५१
३४. हारीतोक्त ज्वरहरणबलिमन्त्र -५५
३५. पुत्तलक विसर्जनम् -५५
३६. गर्गोक्त ज्वरहरण बलिः -५६
३७. गर्गोक्त ज्वरहरण बलिमन्त्र -५६
३८. ज्वरहरण बलिमन्त्रस्तु प्रकारान्तरेण -५७
३९. वाराही मायातन्त्रयोश्चण्डी पाठ फलम्-५७
४०. श्री शिव उवाच -५७
४१. चण्डी पाठे कलस स्थापनम् -६०
४२. कामना भेदेन हवनीय द्रव्याणि -६१
४३. चण्डीपाठ-विधिः -६२
४४. दक्षिणात्यसम्प्रदायमते चण्डीपाठ क्रमः-६२
४५. वाराही तन्त्रे -६३
४६. चण्डी ध्यानम् -६४
४७. चण्डीपाठे विनियोगः -६४
४८. त्र्यम्बक विधानम् -६४
४९. त्र्यम्बक मंत्रस्य ऋषि छन्दादि
वर्ण-पद-न्यासः -६४
५०. त्र्यम्बक प्रयोगः -६५
५१. देवता (त्र्यम्बक शिव) ध्यानम् -६७
५२. शिव लिङ्ग पूजनम् -६८
५३. जप-फल-श्रुति -६९
५४. मृत सञ्जीवनी विधानम् -७०
५५. मन्त्रोद्धारः -७०
५६. मृत सञ्जीवन्याः अप्य स्वरूपम् -७०
५७. शुक्रोपासित मृतसञ्जीवनी विद्या -७०
५८. अन्य प्रकार मृतसञ्जीवनी विद्या-७१
५९. त्र्यम्बक-ध्यानम् -७१
६०. मृत्युञ्जय प्रयोगः -७२
६१. मृत्युञ्जय रुद्र (सदाशिव) ध्यानम् -७२
६२. शूलरोग प्रतिकारः -७३
६३. गर्भ जनन (सुख प्रसव) उपायः-७४
६४. निगडभञ्जनम् -७४
६५. वृष्टिकरणम् -७५
६६. शीर्षादिरोगनिवारणम्-आथर्वणोक्तमन्त्राः-७५

चतुर्थोद्देश (वशीकरणम्)

१. वशीकरणाय कज्जल प्रयोग विधिः-७७
२. मोहिनी मन्त्र प्रयोग विधिः -७८
३. चिटि मन्त्र प्रयोग विधिः -७८
४. राजमुखि मन्त्र -७९
५. ब्रह्मश्री मन्त्र प्रयोगः -७९
६. गौरी (पार्वती) ध्यानम् -८१
७. मदन मन्त्र प्रयोगः -८१
८. चामुण्डा महामोहन (वशीकरण)
मन्त्र प्रयोगः -८२
९. अन्य मन्त्र प्रयोगः -८३

पञ्चमोद्देश (स्तम्भनम्)

१. स्तम्भन विषये जिज्ञासा
(श्रीदेव्युवाच) -८४
२. श्री भैरव उवाच -८४
३. श्री बगलामुखी षट्त्रिंशदक्षरी
मन्त्रोद्धारः -८५
४. कर-षडङ्ग वर्ण-न्यासाः -८६
५. श्रीबगलामुखी (पीताम्बरा) ध्यानम्-८७
६. साधन विधिः -८८
७. कर्मविशेषे कुण्डलक्षणम् -८८
८. आसन भेदाः -८९
९. कर्म विशेशे यज्ञसामग्री -८९
१०. मन्त्रस्य विभिन्न प्रयोगाः -९०

स्तम्भन कारक विविध प्रयोगाः

११. गर्भ-गति स्तम्भक प्रयोगः -९१
१२. वाणी (मुख) स्तम्भन प्रयोगः -९१
१३. दिव्य स्तम्भन प्रयोगाः -९५
१४. श्री बगला यन्त्रार्चन विधान
जिज्ञासा -९६

१५. श्री बगला यन्त्र लेखन विधिः -९६
१६. यन्त्रार्चनम् -९७
१७. श्रीबगलामुखी (ब्रह्मास्त्र-विद्या) स्तोत्रम्-१००

षष्ठोद्देश (स्तम्भनम्)

१. श्री हरिद्रा गणपति प्रयोगः -१०६
२. मन्त्रोद्धारः ऋषि-छन्दादि न्यासश्च -१०७
३. हरिद्रा गणपति ध्यानम् -१०७
४. प्रयोग विधिः -१०८
५. हरिद्रा गणपति स्तम्भन यन्त्र लेखन विधिः -१०९
६. स्तम्भन यन्त्र प्रयोग विधिः -१०९
७. आकर्षण यन्त्र निर्माण -प्रयोग विधिश्च -११२

सप्तमोद्देश (आकर्षण-विद्वेषणौ)

१. मन्त्रोद्धारः -११६
२. सध्यान प्रयोग विधिः -११६
३. स्त्री-आकर्षण-प्रयोगः -११७
४. नृप-नर-देवानामाकर्षण प्रयोगः -११८
५. विद्वेषणम् - प्रयोग विधिः -११९
६. विद्वेषणाय प्रथम मन्त्र प्रयोगः -१२०
७. विद्वेषणाय द्वितीय मन्त्र प्रयोगः -१२०
८. घुर्घुटिका विद्या प्रयोगः -१२२

अष्टमोद्देश (उच्चाटनम्)

१. मन्त्र प्रयोग विधिश्च -१२३
२. अन्य मन्त्र प्रयोगः -१२४

नवमोद्देश (मारणम्)

१. मारण योग्य मनुष्याः -१२६
२. ज्ञातव्य विषयाः -१२६
३. लवण मन्त्र विधानम् ऋक्-पञ्चक-लवण मन्त्राः -१३१
४. लवण मन्त्रस्य ऋषि छन्दादि चिटि मन्त्रः न्यासश्च -१३२
५. अग्नि-रात्रि-दुर्गा-भद्रकाली देवतानां ध्यानम् -१३३
६. मन्त्रस्य पुरश्चरणं विविध प्रयोगञ्च -१३३
७. लवण मन्त्रस्य साधन विधिः -१३६
८. चिटि मन्त्र-वर्ण-न्यासः -१३७
९. सङ्घन्यासः -१३७
१०. अग्न्यादि देवानामुपस्थापन मन्त्राः -१३८
११. पुत्तलिका खण्डनं हवन विधिञ्च -१३९
१२. अन्य रुपेण पुत्तली प्रयोगः -१४०

परिशिष्ट भागः

१. हारीत संहितोक्त नक्षत्र जन्य ज्वर भोग कालः -१४२
२. हारीत संहितोक्त नक्षत्राणामंश भेदेन ज्वर भोग कालः -१४४
३. हारीत संहितोक्त नक्षत्र दोष शान्तिः शान्ति विधाने समिद्गन्ध पुष्प वर्णाणि-१४७
४. हारीत संहिता प्रोक्त योग जन्य ज्वर भोग कालः -१५०
५. पार्थिवेश्वर-पूजनम् -१५२
६. वन दुर्गा - प्रयोग विधिः (मन्त्र, विनियोग, न्यासादि) -१६७
७. वनदुर्गायाः ध्यानम् -१६८
८. वनदुर्गायाः सात्विक ध्यानम् -१६८
९. वनदुर्गायाः राजस ध्यानम् -१६८
१०. वनदुर्गायाः तामस ध्यानम् -१६९
११. वनदुर्गायाः प्रयोग (आवरण-पूजन) विधिः -१७०
१२. वनदुर्गा-मन्त्र-प्रयोगः -१७०
१३. ज्वरादि विपन्नाशक प्रयोगः -१७०
१४. अपस्मारादि रोग नाशक प्रयोगः-१७१
१५. ग्रहाभिचारादि शमन प्रयोगः -१७१
१६. वाञ्छितार्थ-सिद्धि-प्रयोगः -१७१
१७. शत्रु सैन्य पलायन प्रयोगः -१७२
१८. विद्वेषण-प्रयोगः -१७२
१९. उच्चाटन-प्रयोगः -१७२
२०. स्तम्भन-प्रयोगः -१७२
२१. मारण-प्रयोगः -१७२
२२. उच्चाटन-प्रयोगः -१७३
२३. हस्तिवशीकरण-रोगशमनक-प्रयोगः -१७३
२४. राष्ट्रपुरादि-रक्षा-श्रीवृद्धिकर-प्रयोगः-१७४
२५. वशीकरण-प्रयोगः -१७५
२६. सर्वसिद्धिकर प्रयोगः -१७५
२७. सद्यः श्री प्राप्ति प्रयोगः -१७५
२८. शत्रु सैन्य विनाश प्रयोगः -१७६
२९. वनदुर्गा-यन्त्रोद्धारः -१७६
३०. वनदुर्गायाः स्त्रोतम् -१७७
३१. मंत्र-संजीवीनी-विद्या -१७९
३२. कविता(साधक की अनन्त यात्रा) -१८१

राजीव श्रीवास्तव

त्रीं

392/359 मधवापुर
मं. गां. मार्ग (सब्जी मंडी रोड)
इलाहबाद - 211003 (उ०प्र०)
mahavidya9@gmail.com

।। श्री तारा चरणारविन्द शरणम्।।

शुभशंसा

जगज्जननी जगदम्बा मां तारिणी की कृपा से मैंने ‘‘श्री मधुसूदन प्रकाशन’’ द्वारा प्रकाशित ‘षट्कर्म दीपिका’ का सांगोपाङ्ग अध्ययन किया। यह पुस्तक निश्चित रुप से जिज्ञासुओं और साधकों दोनों के लिए ही अत्यन्त उपयोगी और संग्रहणीय है।

श्री मधुसूदन प्रकाशन द्वारा निरन्तर ही प्राचीन शाक्त ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है इसके लिए प्रकाशक, संपादक एवं ग्रन्थों के भाष्यकार निश्चय ही धन्यवाद के पात्र हैं।

इस प्रकाशन द्वारा प्रकाशित ‘‘स्वच्छन्द पद्धति’’, ‘‘दारिद्र्य-ध्वंसिनी प्रयोग’’ एवं ‘‘सांख्यायन-तन्त्रम्’’ का भी मैंने अध्ययन किया है। तीनों ही ग्रन्थ अत्यन्त ही उपयोगी और शाक्त समाज की अमूल्य निधि हैं। इन ग्रन्थों के प्रकाशन के स्तुत्य कार्य के लिए नवयुवक श्री विकास थपलियाल एवं अनुभवी शाक्त लेखक श्री मधुसूदन प्रसाद शुक्ल जी का आभार व्यक्त करता हूँ।

सांख्यायन तन्त्र के भाष्यकार आदरणीय स्वामी शत्रुघ्न दास जी का मैं विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हुए हृदय से अभिवादन एवं अभिनन्दन करता हूँ। जिन्होंने माँ की कृपा से माँ बगला के प्रयोगों से सम्बन्धित सर्वाधिक प्रमाणिक एवं प्राचीन ग्रन्थ का अत्यन्त ही शुद्ध भाषानुवाद किया है। तन्त्र शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध हैं और इन ग्रन्थों में मन्त्रों को कूट भाषा में लिखा गया है जिसके कारण इन मन्त्रों का शुद्ध उद्धार करना अत्यन्त ही क्लिष्ट कार्य है। परन्तु इस दुरुह कार्य को स्वामी जी ने जिस सहजता और निष्ठा से पूर्ण किया है उसके लिए सम्पूर्ण शाक्त समाज सदैव स्वामी जी का आभारी रहेगा।

आशा करता हूँ कि भविष्य में भी शाक्त परम्परा के प्राचीन और दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन ‘‘श्री मधुसूदन प्रकाशन’’ करता रहेगा।

जगद्जननी मां तारिणी इस प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों और प्रकाशन को अपनी कृपा से परिपूर्ण रखें।

हार्दिक शुभकामनायें एवं साधुवाद!

महाशिवरात्रि

17 फरवरी 2015

जगतारिणी चरण
रेणु अकिंचन
राजीव श्रीवास्तव

षट्-कर्म-दीपिका

(श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीश भट्टाचार्यकृता)
'अंजलि' हिन्दी व्याख्या

षट्-कर्म-दीपिका

(श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीश भट्टाचार्यकृता)

'अंजलि' हिन्दी व्याख्या

अथ प्रथमोद्देश:

(सामान्य धर्म:)

॥ ग्रन्थावतरणम्॥

कृत्या देवीं नमस्कृत्य तथा त्रिपुरसुन्दरीम्।
भद्रकालीञ्च देवेशीं तथा षट्कर्म देवताम्॥
श्री कृष्ण विद्यावागीश भट्टाचार्येण धीमता।
क्रियते विदुषां प्रीत्यै कृत्या पल्लवदीपिका॥१॥

देवी कृत्या, त्रिपुरसुन्दरी, देवेश्वरी भद्रकाली तथा षट्कर्मों के देवताओं को प्रणाम कर बुद्धिमान श्री कृष्णानन्द विद्यावागीश भट्टाचार्य द्वारा विद्वानों की प्रसन्नता (ज्ञानार्जन अथवा विपद्निवारण सहित लौकिक सुख प्राप्ति) के लिए कृत्या देवी से सम्बन्धित पल्लव (षट्कर्म) दीपिका नामक इस ग्रन्थ की रचना की जाती है॥१॥

क्रोधाज्ज्वलन्तीं ज्वलनं वमन्तीम्,
सृष्टिं दहन्तीं दितिजं ग्रसन्तीम्।
भीमं नदन्तीं प्रणमामि कृत्याम्
रोरूयमाणां क्षुधयोग्रकालीम्॥२॥

क्रोध के कारण प्रज्ज्वलित अग्नि के समान, मुख से अग्नि की लपटें निकलती हुई, सारी सृष्टि को जलाती हुई सी, दैत्य समुदायों का भक्षण करती हुई, मुख से भयंकर ध्वनि (गर्जना) करती हुई, तथा भूख के कारण रोती (विलाप करती) हुई उग्रकाली स्वरूप वाली कृत्या देवी को मैं प्रणाम करता हूँ॥२॥

उन्मत्तभैरवीतन्त्रात् फेत्कारी डामरात्तथा।
तथा च मालिनीतन्त्रात्तथा कालोत्तरादपि॥
सिद्धयोगीश्वरीतन्त्रात् योगिनीजालसंवरात्।
सर्वतन्त्रात् समाकृष्य षट्कर्मविधिरुच्यते॥

इस प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्मत्त भैरवीतन्त्र, फेत्कारी तन्त्र, डामर तन्त्र, मालिनी तन्त्र, कालोत्तर तन्त्र, सिद्धयोगीश्वर तन्त्र, योगिनी जाल संवरादि समस्त तन्त्रों से संग्रह कर षट्कर्मों के सम्पादन की विधि (नाम, लक्षण, कालादि सहित) का वर्णन किया गया है।

पुस्तके लिखिता विद्या, येन सुन्दरि! जप्यते।
सिद्धिर्न जायते देवि! कल्पकोटिशतैरपि॥

षट्-कर्म-दीपिका

(श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीश भट्टाचार्यकृता)

'अंजलि' हिन्दी व्याख्या

षट्-कर्म-दीपिका

(श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीश भट्टाचार्यकृता)
'अंजलि' हिन्दी व्याख्या

अथ प्रथमोद्देशः

(सामान्य धर्मः)

।। ग्रन्थावतरणम्।।

कृत्या देवीं नमस्कृत्य तथा त्रिपुरसुन्दरीम्।
भद्रकालीञ्च देवेशीं तथा षट्कर्म देवताम्।।
श्री कृष्ण विद्यावागीश भट्टाचार्येण धीमता।
क्रियते विदुषां प्रीत्यै कृत्या पल्लवदीपिका।।१।।

देवी कृत्या, त्रिपुरसुन्दरी, देवेश्वरी भद्रकाली तथा षट्कर्मों के देवताओं को प्रणाम कर बुद्धिमान श्री कृष्णानन्द विद्यावागीश भट्टाचार्य द्वारा विद्वानों की प्रसन्नता (ज्ञानार्जन अथवा विपद्निवारण सहित लौकिक सुख प्राप्ति) के लिए कृत्या देवी से सम्बन्धित पल्लव (षट्कर्म) दीपिका नामक इस ग्रन्थ की रचना की जाती है।।१।।

क्रोधाज्ज्वलन्तीं ज्वलनं वमन्तीम्,
सृष्टिं दहन्तीं दितिजं ग्रसन्तीम्।
भीमं नदन्तीं प्रणमामि कृत्याम्
रोरूयमाणां क्षुधयोग्रकालीम्।।२।।

क्रोध के कारण प्रज्ज्वलित अग्नि के समान, मुख से अग्नि की लपटें निकलती हुई, सारी सृष्टि को जलाती हुई सी, दैत्य समुदायों का भक्षण करती हुई, मुख से भयंकर ध्वनि (गर्जना) करती हुई, तथा भूख के कारण रोती (विलाप करती) हुई उग्रकाली स्वरूप वाली कृत्या देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।।२।।

उन्मत्तभैरवीतन्त्रात् फेत्कारी डामरात्तथा।
तथा च मालिनीतन्त्रात्तथा कालोत्तरादपि।।
सिद्धयोगीश्वरीतन्त्रात् योगिनीजालसंवरात्।
सर्वतन्त्रात् समाकृष्य षट्कर्मविधिरुच्यते।।

इस प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्मत्त भैरवीतन्त्र, फेत्कारी तन्त्र, डामर तन्त्र, मालिनी तन्त्र, कालोत्तर तन्त्र, सिद्धयोगीश्वर तन्त्र, योगिनी जाल संवरादि समस्त तन्त्रों से संग्रह कर षट्कर्मों के सम्पादन की विधि (नाम, लक्षण, कालादि सहित) का वर्णन किया गया है।

पुस्तके लिखिता विद्या, येन सुन्दरि! जप्यते।
सिद्धिर्न जायते देवि! कल्पकोटिशतैरपि।।

गुरु विनाऽपि शास्त्रेऽस्मिन्नाधिकारः कथञ्चन।
अथाभिधास्ये शास्त्रेऽस्मिन् सम्यक् षट्कर्मलक्षणम्।
सर्वतन्त्रानुसारेण प्रयोगफल सिद्धिदम्।।३।।

हे देवि! सुन्दरि! जो साधक पुस्तक में लिखित विद्या (मन्त्र) को स्वयं ही ग्रहणकर उसका जप करता है, उसके द्वारा करोड़ों कल्पों तक जप करने पर भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता, अर्थात् साधकों को मन्त्र-सिद्धि (सफलता) प्राप्त नहीं होती है। इस तन्त्र-शास्त्र में गुरु से दीक्षा प्राप्त किए बिना किसी को भी जप-पूजनादि साधना (उपासना) करने का अधिकार नहीं है।

इस षट्कर्म दीपिका नामक शास्त्र में, अब मैं षट्कर्मों के नाम, लक्षण, प्रयोगविधि, फल सिद्धि आदि का वर्णन समस्त तन्त्रशास्त्रों के आधार पर करूंगा।।३।।

।। षट्कर्मणां सार्वकालिकत्वम्।।

षट्कर्मणां सार्वकालिकत्वमाह यथा स्मृतिः।
नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यथा तथा।।४।।

तथाह मनुः- **स्ववीर्य्याद्राजवीर्य्याच्च स्ववीर्य्य बलवत्तरम्।**
तस्मात् स्वेनैव वीर्य्येण निग्रह्णीयादरीन् द्विजः।।५।।

स्मृति ग्रन्थों में जिस प्रकार नैमित्तिक एवं काम्य कर्मों की सार्वकालिकता (आवश्यकतानुसार किसी भी काल में करने का निर्देश) कही गई है उसी प्रकार षट्कर्मों का भी सम्पादन सामान्यतः किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर किया जा सकता है।।४।।

मनु का कथन है कि ब्राह्मण के स्वतेज (ब्रह्मतेज) और राज (क्षत्र) तेज दोनों की तुलना करने पर ब्राह्मण का स्व (ब्रह्म) तेज ही अधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है। इसलिए ब्राह्मण को उचित है कि वह अपने ब्रह्म तेज (सामर्थ्य) से ही शत्रुओं का निग्रह (दमन अथवा वशीकरण) करे।।५।।

।। षट्कर्माणि (नामानि)।।

शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने तथा।
मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः।।६।।

१. शान्ति, २. वशीकरण, ३. स्तम्भन, ४. विद्वेषण, ५. उच्चाटन, ६. मारण। इन छः कर्मों को विद्वानों ने षट्कर्म कहा है।।६।।

।। षट्कर्मणां लक्षणम्।।

रोगकृत्याग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरिता।
वश्यं जनानां सर्वेषां विधेयत्वमुदीरितम्।।७।।
प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं समुदाहृतम्।
स्निग्धानां द्वेषजननं मिथो विद्वेषणं मतम्।।८।।
उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रंशनं परिकीर्तितम्।
प्राणिनां प्राण-हरणं मारणं समुदाहृतम्।
स्वदेवतादिक्कालादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत्।।९।।

जिस कर्म के विधिवत् सम्पादन द्वारा शारीरिक मानसिक रोगों, परप्रयोगजनित कृत्या-प्रभावों तथा अमङ्गल करने वाले ग्रहों के दोषों का निवारण किया जाता है, उस कर्म का नाम 'शान्ति' (कर्म) है।

जिस कर्म के द्वारा समस्त प्राणियों (विशेषकर मनुष्यों) के मनोभावों में परिवर्तन कर उन्हें अपने अनुकूल बना लिया जाता है, उस कर्म को 'वश्य' (वशीकरण) कहते हैं।।७।।

समस्त प्राणियों की मानसिक व शारीरिक प्रवृत्तियों (व्यवहारों) को निरुद्ध कर उन्हें जड़वत् बना देने वाला कर्म 'स्तम्भन' कहा जाता है।

परस्पर प्रेम करने वाले दो व्यक्तियों (अथवा जनसमूहों) के मध्य द्वेष उत्पन्न करने वाला कर्म 'विद्वेषण' कहलाता है।।८।।

किसी भी व्यक्ति को अपने देश (निवास स्थान) से भ्रष्ट (इधर-उधर भटकने के लिए विवश) कर देने वाला कर्म 'उच्चाटन' के नाम से कहा गया है।

बिना अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किए केवल मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र के द्वारा सम्पन्न होने वाले जिस कर्म के द्वारा प्राणियों के प्राणों का हरण कर उन्हें मार दिया जाता है, उस कर्म को 'मारण' कहते हैं।

इन कर्मों के अधिष्ठातृ देवता, प्रायोगिक दिशा तथा कालादि का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करके ही इनकी साधना (कर्मों का सम्पादन) करनी चाहिए।।९।।

।। षट्कर्मणां देवता:।।

रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा काली यथा क्रमात्।
षट्कर्म देवता: प्रोक्ता: कर्मादौ ता: प्रपूजयेत्।।१०।।

शान्ति कर्म की देवता रति, वश्य की वाणी, स्तम्भन की रमा, विद्वेषण की ज्येष्ठा, उच्चाटन की दुर्गा तथा मारण कर्म की देवता काली (भद्रकाली) कही गयी है। इस प्रकार षट्कर्मों के षड्देवता कहे जाते हैं। किसी भी कर्म-प्रयोग के पूर्व कर्मानुसार इनका पहले पूजन अवश्य करना चाहिए।।१०।।

।। षट्कर्मणां दिङ्नियम:।।

ईशचन्द्रेन्द्र निर्ऋतिवाय्वग्नीनां दिशो मता:।
क्रमेण षट्कर्मेषु प्रशस्ता: ककुभ: स्मृता:।।११।।

ईशान, उत्तर, पूर्व, नैर्ऋत्य, वायव्य तथा आग्नेय क्रमश: शान्ति, वश्य, स्तम्भन विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण कर्म के लिए श्रेष्ठ दिशाएं कही गई हैं। साधक को कर्मानुसार इन्हीं दिशाओं की ओर मुख करके साधना करनी चाहिए।।११।।

।। षट्कर्मणां ऋतुकालादिनिर्णय:।।

सूर्योदयात् समारभ्य घटिका दशकं क्रमात्।
ऋतव: स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रे दिने दिने।
वसन्त ग्रीष्मवर्षाख्य शरद्धेमन्तशैशिरा:।।१२।। (घटिकात्र दण्डरूपा)

प्रतिदिन सूर्योदय से प्रारम्भ कर अगले सूर्योदय तक चौबीस घंटों में दस-दस घटिकाओं (दस दण्डों अथवा चार घंटों) के काल को क्रमशः वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त तथा शिशिर ऋतु के रूप में (दिन-रात्रि मिलाकर) माना गया है।।१२।।

।। प्रकारान्तरं-ऋतुनिर्णयम्।।

वसन्तश्चैव पूर्वाह्ने ग्रीष्मो मध्याह्न उच्यते।
वर्षा ज्ञेया पराह्ने तु प्रदोषे शिशिर स्मृतः।।
अर्द्धरात्रौ शरत्काला ऊषा हेमन्त उच्यते।
अन्ये च ऋतवः सर्वे सायाह्नादौ प्रकीर्त्तिताः।।१३।।

अन्य मतानुसार दिन के पूर्वाह्न में वसन्त ऋतु, मध्याहन् में ग्रीष्म, अपराह्न में वर्षा, प्रदोष काल में शिशिर, अर्ध (मध्य) रात्रि में शरत् तथा ऊषा काल में हेमन्त ऋतु मानी गई है। दिन की दोनों सन्ध्याओं के प्रारम्भ में सभी ऋतुएं कही गई हैं।।१३।।

एक अन्य मतानुसार एक दिन में इन ऋतुओं का विभाजन काल कुछ भिन्न है, यथा-

ऊषा योगे च हेमन्तः प्रभाते शिशिरागमः।
प्रहरार्द्धे वसन्तः स्याद् ग्रीष्मो मध्यन्दिनागमे।
तुर्ययामे च वर्षाख्यः शरदस्तङ्गते रवौ।।

।। षट्कर्मणां ऋतवः।।

हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि।
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो ग्रीष्मे विद्वेष ईरितः।
प्रावृडुच्चाटने ज्ञेया शरन्मारणकर्मणि।।१४।।

शान्ति कर्म के लिए हेमन्त ऋतु तथा वशीकरण कर्म के लिए वसन्त ऋतु श्रेष्ठ कही गयी है। इसी प्रकार स्तम्भन कर्म के लिए शिशिर, विद्वेषण के लिए ग्रीष्म, उच्चाटन के लिए वर्षा तथा मारण कर्म के लिए शरत् ऋतु जानना चाहिए।।१४।।

।। षट्कर्मणां-तिथिवारनियममाह।।

प्रयोक्तव्यानि विधिना स च सम्प्रोच्यतेऽधुना।
द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा।
बुधेज्यकाव्यसोमाश्च शान्तिकर्मणि कीर्त्तिताः।।१५।।
गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी।
नवमी पौष्टिके शस्ता चाष्टमी दशमी तथा।
पुष्टिर्धनजनादीनां वर्द्धनं परिकीर्त्तितम्।।१६।।
दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रदिने तथा।
आकर्षणे त्वमावास्या नवमी प्रतिपत्तथा।।१७।।
पौर्णमासी मन्दभानुयुक्ता विद्वेषकर्मणि।
षष्ठी चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्दवारकाः।

उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषेषु विशेषतः॥१८॥
चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावस्या तथैव च।
मन्दारार्कदिनोपेता शस्ता मारण-कर्मणि॥१९॥
बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी तथा।
पौर्णमासी च विज्ञेया तिथिः स्तम्भन कर्मणि॥२०॥
शुभ ग्रहोदये कुर्याद् शुभान्यशुभकोदये।
रौद्रकर्माणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम्॥२१॥

अब मैं विभिन्न कर्मों के विधिपूर्वक सम्पादन हेतु उनके लिए जो-जो प्रशस्त तिथियाँ तथा दिन हैं, उनके विषय में कहता हूँ।

बुध, गुरु, शुक्र तथा सोमवार (कहीं पर केवल बुध तथा गुरु) से युक्त द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी तथा सप्तमी तिथियाँ शान्ति कर्म में उत्तम कही गई हैं॥१५॥

पौष्टिक कर्म के लिए गुरुवार तथा सोमवार से युक्त षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी तथा नवमी तिथियाँ प्रशस्त हैं। इसके अतिरिक्त अष्टमी तथा दशमी तिथियाँ भी धन-जनादि की पुष्टि एवं वृद्धि हेतु श्रेष्ठ कही गई हैं॥१६॥

सूर्य तथा शुक्रवारों को यदि दशमी तथा एकादशी हो तो ये आकर्षण कर्म में शुभ मानी जाती हैं॥१७॥

अमावस्या, नवमी, प्रतिपदा तथा पूर्णिमा तिथि यदि शनि अथवा रविवारों से युक्त हो तो विद्वेषण कर्म के लिए उत्तम होती है।

शनिवार युक्त षष्ठी, चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथियाँ विशेषतः प्रदोष काल में होने पर उच्चाटन कर्म में प्रशस्त हैं।(कहीं पर केवल कृष्ण पक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियाँ ही शनियुक्त कही गई हैं।)॥१८॥

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी तथा अमावस्या तिथियाँ शनि, मंगल अथवा रविवार से युक्त होने पर मारण कर्म हेतु श्रेष्ठ हैं॥१९॥

बुध अथवा सोम से युक्त पञ्चमी तथा दशमी (शुक्ल पक्ष) एवं पूर्णमासी तिथि स्तम्भन कर्म के लिए विहित जानना चाहिए॥२०॥

इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान में रखना चाहिए कि शुभ ग्रहों के उदयकाल में शान्ति पुष्टि आदि शुभ कर्म तथा अशुभ ग्रहोदय काल में अशुभ (रौद्र) कर्म (विद्वेषणोच्चाटनादि) करना चाहिए। रिक्ता तिथियों (चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी) में रविवार तथा मृत्युयोग होने पर मारण कर्म करना चाहिए॥२१॥

॥ षट्कर्मणां नक्षत्रनियममाह॥

स्तम्भनं मोहनञ्चैव वशीकरणमुत्तमम्।
माहेन्द्रे वारुणे चैव कर्त्तव्यमिह सिद्धिदम्॥२२॥
ज्येष्ठा चैवोत्तराषाढा चानुराधा च रोहिणी।
माहेन्द्रमण्डल ह्येतत् सर्वकर्म प्रसिद्धिदम्॥२३॥
स्यादुत्तरभाद्रपदा मूला शतभिषा तथा।

पूर्वभाद्रपदाऽश्लेषा ज्ञेया वारुणमध्यगाः।
पूर्वाषाढा तु तत्कर्मसिद्धिदा शम्भुना स्मृता॥२४॥
विद्वेषोच्चाटनं वह्निवायुयोगे च कारयेत्।
स्वाती हस्ता मृगशिरा चित्रा चोत्तरफाल्गुनी।
पुष्या पुनर्वसुर्वह्निमण्डलस्थाः प्रकीर्त्तिताः॥२५॥
आश्विनी भरणी चार्द्रा धनिष्ठा श्रवणा मघा।
विशाखा कृत्तिका पूर्व फाल्गुनी रेवती तथा।
वायुमण्डलमध्यस्थास्तत्तत्कर्म प्रसिद्धदाः॥२६॥

माहेन्द्र तथा वारुण मण्डलस्थ नक्षत्रों में स्तम्भन, मोहन (आकर्षण) तथा वशीकरण कर्म करना सिद्धिप्रद होता है॥२२॥

ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़, अनुराधा तथा रोहिणी ये माहेन्द्रमण्डलस्थ नक्षत्र समस्त कर्मों के लिए सिद्धिदायक हैं॥२३॥

उत्तरभाद्रपद, मूल, शतभिषा, पूर्व भाद्रपद तथा आश्लेषा ये वारुणमण्डलस्थ नक्षत्र कहे गये हैं। इसके अतिरिक्त शिव के वचनानुसार पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में भी उपर्युक्त कर्म सिद्धिप्रद होते हैं॥२४॥

विद्वेषण तथा उच्चाटन सम्बन्धित कर्मों को अग्नि तथा वायुमण्डल के नक्षत्रों में करना चाहिए।

स्वाती, हस्त, मृगशिर, चित्रा, उत्तरफाल्गुनी, पुष्य तथा पुनर्वसु नक्षत्रों को अग्निमण्डलस्थ कहा गया है। अश्विनी, भरणी, आर्द्रा, धनिष्ठा, श्रवण, मघा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्व फाल्गुनी तथा रेवती ये नक्षत्र वायुमण्डलस्थ हैं। इन नक्षत्रों में जो-जो कर्म करने योग्य कहे गये हैं, वे विधिवत् करने पर सिद्धिप्रद होते हैं॥२६॥

॥ कालविशेषश्च॥

वश्यं पूर्वेऽह्नि मध्याह्ने विद्वेषोच्चाटनं तथा।
शान्तिपुष्टी दिनस्यान्ते सन्ध्याकाले च मारणम्॥२७॥

दिन के पूर्वाह्न में वशीकरण, मध्याह्न काल में विद्वेषण तथा उच्चाटन, दिन के शेष भाग (सूर्यास्त से पूर्व तक) में शान्ति तथा पुष्टि कर्म एवं सन्ध्याकाल में मारण कर्म करना चाहिए।

॥ षट्कर्मणां लग्ननियममाह॥

कुर्याच्च स्तम्भनं कर्म हर्यक्षे वृश्चिकोदये।
द्वेषोच्चाटादिकं कर्म कुलीरे वा तुलोदये॥
मेषकन्याधनुर्मीने वश्यशान्तिकपौष्टिकम्।
मारणोच्चाटने चासौ रिपुभेदविनिग्रहे॥२८॥

सिंह तथा वृश्चिक लग्न में स्तम्भन कर्म करना चाहिए। विद्वेषण-उच्चाटनादि कर्क अथवा तुला लग्न में करे। मेष, कन्या, धनु तथा मीन लग्न में वश्य, शान्ति, पौष्टिक, मारण, उच्चाटन तथा शत्रुओं में परस्पर भेद (द्वेष) पैदाकर उनका दमन

अथवा वशीकरण करने वाले कर्म, इन सबका प्रयोग किया जा सकता है।।२८।।

।। भूतोदये षट्कर्मनियमः ।।

जलं शान्तविधौ शस्तं वश्ये वह्निरुदीरितः।
स्तम्भने पृथ्वी शस्ता विद्वेषे व्योम कीर्त्तितम्॥
उच्चाटने स्मृतो वायुर्भूम्यग्निर्मारणे मतौ।
तत्तद्भूतोदये सम्यक् तत्तन्मण्डल संयुतम्।
तत्तकर्म विधातव्यं मन्त्रिणा निश्चितात्मना॥२९॥
परचक्रभयादौ वा तीव्ररुपे महाभये।
न कालनियमो गम्यः प्रयोगाणां कदाचन॥३०॥

जिन-जिन तत्त्वों के उदयकाल में जो जो कर्म विहित हैं उन्हें, उन-उन तत्त्वों के मण्डल सहित (बनाकर) संशय रहित निश्चयात्मक बुद्धि वाले साधक को भली-भाँति सम्पन्न करना चाहिए। शान्ति कर्म के समय जल तत्त्व तथा वशीकरण में अग्नि तत्त्व का उदय प्रशस्त है। स्तम्भन कर्म के समय पृथ्वी तत्त्व तथा विद्वेषण में आकाश तत्त्व का उदय होना कहा गया है। उच्चाटन कर्म करते समय वायु तत्त्व तथा मारण कर्म काल में भूमि तथा अग्नि तत्त्व उदित होना श्रेष्ठ माना जाता है। किसी शत्रु द्वारा उत्पन्न अथवा अन्य किसी कारण से उपस्थित महाभय (संकट) की अवस्था में उसके निवारण के लिए बिना काल नियमों का विचार किए तुरन्त कर्म करना चाहिए। जब जैसी परिस्थिति हो उसी के अनुसार कर्म का सम्पादन करें।।२९,३०।।

(विशेष-अर्ध चन्द्राकार दोनों ओर से पद्मदल युक्त जल तत्त्व मण्डल-शान्तिकर्म में, स्वस्तिक गर्भित त्रिकोणाकार अग्निमण्डल वश्य में, वज्रांकित चतुरस्र पृथ्वी मण्डल स्तम्भन में, वृत्ताकार आकाश मण्डल विद्वेषण में, छः बिन्दुओं सहित वृत्त वायुमण्डल उच्चाटन कर्म में तथा भूमि एवं अग्नि मण्डल मारण में प्रशस्त है। कर्मो के अनुसार इन मण्डलों को बनाकर इनके भूतों की आभा के समान वर्ण से इन्हें रंग लेना चाहिए। इनके मध्य में साधक को अपना नाम अंकित करना चाहिए। आकाश तत्त्व का वर्ण स्वच्छ, वायु का कृष्ण (काला), अग्नि का लाल, जल का शुभ्र तथा पृथ्वी तत्त्व का वर्ण पीत है।)

।। षट्कर्म दिङ्नियमस्तु तंत्रान्तरे।।

इन्द्रे स्तम्भनमुच्चाटमग्नौ सर्वाभिचारकम्।
याम्ये रक्षसि विद्वेषः शान्तिर्वारुणवायवे॥
कुलोत्सादं मरुद्भागे यक्षे कलहविग्रहौ।
कुर्वीत नोदितं कर्म यच्चान्यद् ब्रह्मणः पदे॥३१॥

ब्रह्मणः पदे-ऐशान्याम्।

स्तम्भन-कर्म पूर्व मुख तथा उच्चाटन आग्नेय दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए। दक्षिण दिशा में मुख करके सभी अभिचार कर्म किये जा सकते हैं। नैर्ऋत्य दिशा की ओर मुख करके विद्वेषण तथा पश्चिम व वायव्य की ओर मुख कर

शान्ति कर्म करना चाहिए। कुल के विनाश (मारण) हेतु वायव्य दिशा की ओर तथा परस्पर लड़ाई-झगड़ा (द्वेष) कराने के लिए उत्तर की ओर मुख करके कर्म करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिन कर्मों के विषय में नहीं कहा गया है, उन्हें ईशान की ओर मुख करके करें।।३१।।

चामुण्डा तन्त्र में उक्त मत से भिन्नता है। यथा -

जपेत् पूर्वमुखो वश्ये दक्षिणञ्चाभिचारके।
पश्चिमे स्तम्भनं विद्यादुत्तरे शान्तिकं भवेत्।।
आकर्षणमथाग्नेये नैर्ऋते मारणं तथा।
उच्चाटनन्तु वायव्ये ऐशान्यां मोक्षदायकम्।
तथाभिचारे कार्या च दक्षिणप्लवना मही।।

।। षट्कर्मणां वर्णभेदमाह।।

वश्ये चाकर्षणे क्षोभे रक्तवर्णं विचिन्तयेत्।
निर्विषीकरणे शान्तौ पुष्टौ चाप्यायने सितम्।।
पीतं स्तम्भन कार्येषु धूम्रमुच्चाटने स्मृतम्।
उन्मादे शक्रगोपाभं कृष्णवर्णन्तु मारणे।।३२।।

वशीकरण, आकर्षण तथा क्षोभ (चञ्चलता अथवा उच्चाटन) कर्म के समय कर्म देवता का रक्तवर्ण में चिन्तन (ध्यान) करना चाहिए। विष हरण, शान्ति, पुष्टि तथा तृप्ति (वृद्धि) कारक कर्म के समय शुभ्र श्वेत वर्ण युक्त देवता का ध्यान करे। स्तम्भन कार्य में पीतवर्ण, उच्चाटन में धूम्र वर्ण, उन्माद (पागलपन) पैदा करने वाले कर्म के समय वीर बहूटी (रक्त वर्ण कीट विशेष) की सी आभा युक्त तथा मारण कर्म काल में कृष्ण वर्ण तत्तद्देवता का ध्यान करना चाहिए।।३२।।

अन्य मतानुसार- **सितरक्तपीत मिश्र कृष्ण धूम्राः प्रकीर्त्तिताः।**
वर्णतो मन्त्र सम्प्रोक्ता देवताः षट्सु कर्मसु।।

।। उत्थित सुप्तोपविष्टादयः।।

उत्थितं मारणे ध्यायेत् सुप्तमुच्चाटने प्रभुम्।
उपविष्टं सुरेशानि! सर्वत्रैवं विचिन्तयेत्।।३३।।
आसीनं श्वेतरूपन्तु सात्विके समुदाहृतम्।
पीतवर्णं राजसेतु रक्तं श्याममुदाहृतम्।
यानमार्गस्थितं तूर्णं कृष्णं तामस उच्च्यते।।३४।।
सात्विकं मोक्षकामानां राजसं राज्यमिच्छताम्।
तामसं शत्रुनाशार्थं सर्वव्याधिनिवारणम्।
सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं तामसं तु विचिन्तयेत्।।३५।।

मारण कर्म में देवता का ध्यान उत्थित रूप (खड़े हुए) में करना चाहिए। उच्चाटन कर्म में सुप्तावस्था (लेटे हुए) तथा अन्य सभी कर्म काल में बैठे हुए रूप में देवता का ध्यान करना चाहिए। सात्विक कर्म के समय देवता का ध्यान आसन पर

बैठे हुए श्वेत रूप में करना कहा गया है। राजस कर्म के समय पीत, रक्त अथवा श्याम वर्ण देवता का ध्यान करे। तामस कर्म-काल में देवता का ध्यान आकाश मार्ग में स्थित घने काले मेघ-वर्ण में करना चाहिए। मोक्ष कामना-कर्म-काल में सात्विक ध्यान, राज्य (धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य) प्राप्ति हेतु राजस ध्यान तथा शत्रुनाशार्थ, सर्वव्याधि निवारण एवं सर्वापद् शान्त्यर्थ देवता का तामस ध्यान करना चाहिए।।३३-३५।।

।। मन्त्रस्याधिष्ठातृदेवतामाह।।

रुद्रारताक्ष्र्य गन्धर्व यक्ष रक्षोऽहिकिन्नराः।
पिशाचभूत दैत्येन्द्रसिद्धाः किंपुरुषासुराः।।
सर्वेषामपि मन्त्राणां एते पञ्चदश स्मृतः।
केचिदष्टादशप्राहुः समग्राणां नृणां मताः।।३६।।

रुद्र, मंगल, ताक्ष्र्य (गरुड), गन्धर्व, यक्ष, रक्ष, सर्प, किन्नर, पिशाच, भूत, दैत्य, इन्द्र, सिद्ध, किम्पुरुष तथा असुर ये पन्द्रह, सभी विद्वान मनुष्यों के विचार से समस्त मन्त्रों के अधिष्ठातृ देवता कहे जाते हैं। परन्तु कोई-कोई इनकी संख्या अट्ठारह कहते हैं।।३६।।

।। मन्त्राणां वर्णसंख्याभेदे संज्ञां, कार्यविशेषेषु च तेषां प्रयोगश्च।।

कर्तरी त्वेकवर्णेन द्विवर्णाभ्यां सूचीस्मृता।
मुदगरस्तु त्रिभिर्वर्णेन चतुभिर्मुषलस्तथा।।
क्रूरः शनिः पञ्चवर्णैः षड्भिर्वर्णैस्तु शृङ्खलः।
क्रकचः सप्तभिः शूलश्चाष्टभिर्नवभिः पविः।।
शक्तिश्च दशभिश्चैकादशभिः परशुः स्मृतः।
चक्रं द्वादशभिर्वर्णैः कुलिशः स्यात् त्रयोदशैः।।
चतुर्दशैश्च नाराचो भुशुण्डी पक्षवर्णिका।
पद्मं षोडशभिर्वर्णैः मन्त्रच्छेदे तु कर्तरी।।
भेदे तु कथिता सूची भञ्जने मुद्गरः स्मृतः।
मुषलं क्षोभणे बन्धे शृङ्खलः क्रकचश्छिदि।।
घाते शूलं पविः स्तम्भे शक्तिं बन्धे च कर्मणि।
विद्वेषे परशुञ्चक्रं सर्वकर्मसु योजयेत्।।
उत्सादे कुलिशः शस्तो नाराचः सैन्यभेदने।
भुशुण्डी मारणे पद्मं शान्तिपुष्ट्यादि कर्मणि।।
चक्रं तु रञ्जकं कर्म सर्वत्रैवं प्रयोजयेत्।
क्वचिदेवं दर्शितन्तु वामाचार विरोधनम्।
सहस्राक्षरमन्त्रादेः प्रयोगो विधि दर्शनात्।।३७।।

मन्त्रों के उनकी वर्ण संख्या के अनुसार भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। एकाक्षर मन्त्र 'कर्तरी' द्वयक्षर मन्त्र 'सूची', त्र्यक्षर मन्त्र 'मुद्गर' तथा चतुरक्षर मन्त्र 'मुषल' कहा जाता है।

पञ्चवर्णों से निर्मित मन्त्र क्रूर शनि कहा जाता है। छः वर्णों का मन्त्र 'शृंखल,' सात वर्णों का 'क्रकच', अष्ट वर्णात्मक 'शूल' तथा नववर्णों के मन्त्र को 'पवि' (वज्र)कहते हैं। दश वर्णों वाला मन्त्र 'शक्ति', ग्यारह वर्ण का 'परशु', वारह वर्णात्मक मन्त्र 'चक्र', तेरह वर्णों वाला 'कुलिश' कहा जाता है। 'नाराच' मन्त्र चौदह वर्णों का , 'भुशुण्डी' पन्द्रह वर्णों का तथा 'पद्म' नामक मन्त्र पोडशवर्णात्मक होता है।

छेदन कर्म में 'कर्तरी' मन्त्र, भेदन में 'सूची' मन्त्र, भञ्जक कर्म हेतु 'मुद्गर' मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। क्षोभ कर्म के लिए 'मुषल' मन्त्र, बन्धन कर्म हेतु शृङ्खल' मन्त्र, छिन्न-भिन्न करने के लिए 'क्रकच' मन्त्र तथा घात कर्म में 'शूल' का प्रयोग करना चाहिए। स्तम्भन कर्म के लिए 'पवि', बन्धन हेतु 'शक्ति' तथा विद्वेषण के लिए 'परशु' संज्ञक मन्त्र प्रयोग करे। 'चक्र' संज्ञक मन्त्र का प्रयोग सर्वकर्मों के लिए किया जा सकता है। उच्चाटन कर्म में 'कुलिश' तथा सैन्य भेदन के लिए 'नाराच' मन्त्र का प्रयोग कहा गया है। मारण कर्म में 'भुशुण्डी' तथा शान्तिपुष्ट्यादि कर्म में 'पद्म' संज्ञक मन्त्र की योजना करे। सुख-शान्ति प्रसन्नता प्राप्ति हेतु तथा देवता की प्रीति के लिए 'चक्र' नाम वाले मन्त्र की योजना करे। इस प्रकार सब कर्मों में यथाविधि मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

कुछ लोग तन्त्र शास्त्रों में इससे भी अधिक यहाँ तक कि सहस्राक्षर मन्त्रों के भी प्रयोग विधियों का दर्शन होने के कारण उपर्युक्त प्रयोग विधि का वामाचार से विरोध दिखलाते हैं अर्थात् उपर्युक्त रूप से मन्त्रों का प्रयोग दक्षिणाचार विधि में करना चाहिए।।३७।।

।। कार्यविशेषे योजनपल्लवादि निर्णयः।।

पञ्चाशद्वर्णरूपात्मा मातृका परमेश्वरी।
तत्रोत्पन्ना महाकृत्या त्रैलोक्यभयदायिनी।
यथा कामो जपः कार्यो मन्त्राणामपि मे शृणु।।३८।।
मन्त्रादौ योजनं नाम्नः पल्लवः परिकीर्त्तितः।
मारणे विश्वसंहारे ग्रहभूतनिवारणे।।
उच्चाटने च विद्वेषे पल्लवः परिकीर्त्तितः।
मन्त्रान्ते नाम संस्थानं योग इत्यभिधीयते।।
शान्तिके पौष्टिके वश्ये प्रायश्चित्तविशोधने।
मोहने दीपने योगान् प्रयुञ्जन्ति मनीषिणः।।
स्तम्भनोच्चाटनोच्छेद विद्वेषेषु स चोच्यते।।३९।।
नाम्न आद्यन्तमध्येषु मन्त्रः स्याद्रोध उच्यते।
मन्त्राभिमुख्यकरणे सर्वव्याधिनिवारणे।।
ज्वर ग्रह विषाद्यार्त्ति-शान्तिकेषु स चोच्यते।
सम्मोहने स एवाथ मन्त्राणामक्षराणि च।।४०।।
एकैकान्तरितं यत्तु ग्रथनं परिकीर्त्तितम्।
तच्छान्तिके विधातव्यं नामाद्यन्ते यथा मनुः।

तत् सम्पुटं भवेत्तत्तु कीलने परिभाषितम्।
स्तम्भे मृत्युञ्जये इच्छेद्रक्षादिषु च सम्पुटम्।।४१।।

परमेश्वरी मातृका का स्वरूप पचास वर्णात्मक है। मातृका (वर्णों) से विभिन्न मन्त्रों (षट्कर्म मन्त्रों की भी) की उत्पत्ति होती है। कृत्योत्पत्ति षट्कर्म मन्त्रों के प्रयोग से होती है। अतः परम्परया मातृका से ही महाकृत्याओं की उत्पत्ति मानी जा सकती है। यह महाकृत्या त्रिलोकी को भयभीत करने वाली है।

कामनानुसार किस प्रकार मन्त्रों का जप करना चाहिए उसकी विधि मुझसे सुनो। किसी भी मन्त्र के आदि (प्रारम्भ) में साध्य नाम जोड़ने की क्रिया पल्लव कही जाती है। मारण कर्म में, विश्व के संहारक कर्म में, ग्रहभूतादिक निवारण में, उच्चाटन तथा विद्वेषण कर्म में 'पल्लव' का प्रयोग कहा जाता है।

मन्त्र के अन्त में साध्य नाम की योजना 'योग' कही जाती है। शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, प्रायश्चित कर्म द्वारा स्वशोधन, मोहन तथा दीपन कर्मों में बुद्धिमान साधक 'योग' का प्रयोग करते हैं। स्तम्भन, उच्चाटन, छेदन तथा विद्वेषण कर्मों में भी 'योग' का ही प्रयोग कहा जाता है।

नाम के आदि, मध्य तथा अन्त में मन्त्र वर्णों की योजना 'रोध' कही जाती है। मन्त्रों के अभिमुखीकरण (अनुकूलन) हेतु समस्त रोगों के निवारण के लिए, ज्वरग्रह विषादि से उत्पन्न कष्ट के नाश हेतु तथा सम्मोहन कार्य में 'रोध' मन्त्रों का प्रयोग कहा जाता है।

साध्य नाम वर्णों के द्वारा मन्त्र वर्णों को ग्रंथित करना अर्थात् प्रथम नाम वर्ण फिर मन्त्र का प्रथम वर्ण, इसके बाद नाम का द्वितीय वर्ण फिर मन्त्र का द्वितीय वर्ण इस प्रकार मन्त्र वर्णों का क्रमशः न्यास करना 'ग्रन्थन' कहा जाता है। इसका प्रयोग सम्मोहन कर्म में किया जाना चाहिए।

साध्य नाम के आदि में (पहले) अनुलोम तथा अन्त में विलोम रूप से मन्त्र की योजना सम्पुट कहलाता है। इसे कीलन भी कहा जाता है। शान्ति, स्तम्भन कर्म, अकाल मृत्यु-निवारण (मृत्युञ्जय प्रयोग) तथा स्वरक्षण की इच्छा वाले व्यक्ति को 'सम्पुट' युक्त मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।।४१।।

।। पुनः सम्पुटमाह भट्ट धृतम्।।

मत्रादौ वदेत् सर्वं साध्यसंज्ञामनन्तरम्।
विपरीतं पुनश्चान्ते सम्पुटं तत्स्मृतं बुधैः।।४२।।

सर्वप्रथम समस्त मन्त्रवर्णों को अनुलोम विधि से लिखकर साध्य नाम वर्णों को लिखे। फिर मन्त्र वर्णों को विलोम-विधि से लिखें। इस क्रिया को विद्वानों द्वारा सम्पुट कहा गया है।।४२।।

मन्त्रार्णद्वन्द्वमेकैकं साध्यनामाक्षरं क्रमात्।
कथ्यते सविदर्भस्तु वश्याकर्षणपौष्टिके।।४३।।

मन्त्र के दो-दो वर्णों के मध्य साध्य नाम के एक-एक वर्णों को क्रमशः

लिखना विदर्भ कहा जाता है। इस विधि का प्रयोग वशीकरण, आकर्षण तथा पौष्टिक कर्म में करना चाहिए।।४३।।

(शारदा तिलक के अनुसार ग्रन्थन, विदर्भ, सम्पुट, रोधन, योग तथा पल्लव का प्रयोग क्रमशः शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण कर्मों में करना चाहिए।)

।। कर्मविशेषे हुं फट् वषडादीनि।।

बन्धनोच्चाटने द्वेषे संकीर्णे हुं पदं जपेत्।
फट्कारं छेदने हुं फट् रिष्टिग्रहनिवारणे।।
पुष्टौ चाप्यायने वौषट् बोधने मलिनी कृतौ।
अग्निकार्ये जपेत् स्वाहां नमः सर्वत्र चार्चने।।४४।।
शान्तिपुष्टिवशद्वेषाकृष्ट्युच्चाटन मारणे।
स्वाहा स्वधा वषट् हुं च वौषट् फट् योजयेत् क्रमात्।।
वश्याकर्षण सन्तापज्वरे स्वाहां प्रकीर्त्तयेत्।
क्रोधोपशमने शान्तौ प्रीतौ योज्यं नमो बुधैः।।
वौषट् सम्मोहनोद्दीप-पुष्टि मृत्युञ्जयेषु च।
हुकांर प्रीतिनाशे च छेदने मारणे तथा।।
उच्चाटने च विद्वेषे वौषट् चान्धीकृतौ वषट्।
मन्त्रोद्दीपनकार्येषु लाभालाभे वषट् स्मृतम्।।४५।।

बन्धन, उच्चाटन, द्वेष तथा संकीर्ण (कठिनाई-बाधा) आदि उत्पन्न करने वाले कर्मों के प्रयोग काल में मन्त्र के साथ 'हुं' पद लगाकर जप करना चाहिए। छेदन कर्म हेतु 'फट्' तथा पापग्रहों के निवारण हेतु 'हुं फट्' युक्त मन्त्र जपना चाहिए। पुष्टि तथा आप्यायन (तृप्ति अथवा स्वास्थ्य) कर्म में वौषट् एवं बोधन (जागरण), मलिन (पतित-भ्रष्ट) करने वाले कर्म तथा हवन कार्य में स्वाहा युक्त मन्त्र का प्रयोग करे। अर्चन (पूजन) कार्य हेतु सर्वत्र 'नमः' युक्त मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

शान्तिकर्म में 'स्वाहा', पुष्टि में 'स्वधा', वशीकरण में 'वषट्' (आकर्षण में भी), द्वेष में 'हुं', उच्चाटन में 'वौषट्' तथा मारण कर्म में 'फट्' युक्त मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

वशीकरण, आकर्षण, संताप तथा ज्वर सम्बन्धित कर्मों में स्वाहा युक्त मन्त्र का प्रयोग करे। क्रोध निवारण, शान्ति तथा प्रीति उत्पन्न करने वाले कर्म-प्रयोग के समय 'नमः' युक्त मन्त्र की योजना करे। सम्मोह, उद्दीपन, पुष्टि तथा मृत्युञ्जय (अकाल मृत्यु निवारण अथवा रोग शमन) कर्म प्रयोग में 'वौषट' युक्त मन्त्र का प्रयोग करे।

प्रीतिनाशक (विद्वेषण) छेदन तथा मारण कर्म में 'हुं', उच्चाटन तथा विद्वेषण में 'वौषट्' अन्धेपन के कर्म में, मन्त्रोद्दीपन कर्म में तथा सम्पत्तिविनाश हेतु किये जाने वाले कर्म प्रयोग में 'वषट्' युक्त मन्त्र का प्रयोग करना कहा गया है।।४४,४५।।

(कुलार्णव तन्त्रानुसार-उच्चाटन कर्म में वषट्, मारण में 'हुं फट', स्तम्भन

में नमः, शान्ति पुष्टि कर्म में 'स्वाहा' युक्त मन्त्र का प्रयोग कहा जाता है। होम तर्पण कर्म में भी स्वाहा तथा न्यास पूजन कर्मकाल में मन्त्र के अन्त में 'नमः' पद की योजना करनी चाहिए। जप हेतु मन्त्र का जैसा स्वरूप है वैसा ही प्रयोग करना चाहिए।)

।। स्त्रीपुंनपुंसकमन्त्रनियममाह।।

स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिधा स्युर्मन्त्रजातयः।
स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता नमोऽन्ताश्च नपुंसकाः॥
हुं फट् पुमांस इत्युक्ता वश्यशान्त्यभिचारके।
क्षुद्रक्रियाद्युपध्वंसे स्त्रियोऽन्यत्र नपुंसकाः॥४६॥

स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक रूप से मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं। 'स्वाहा' युक्त मन्त्र स्त्री मन्त्र तथा 'नमः' अन्त वाले मन्त्र नपुंसक कहे जाते हैं। हुं फट् युक्त मन्त्र पुरुष मन्त्र कहे जाते हैं। वशीकरण में स्त्री मन्त्र, शान्ति में नपुंसक तथा अभिचार कर्म हेतु पुरुष मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। क्षुद्र अभिचारिक क्रियाओं के नाश के लिए स्त्री मन्त्र तथा अन्यत्र नपुंसक मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है।।४६।।

।। आग्नेयसौम्येत्यादिमन्त्र धर्मः।।

तारान्त्याग्निविषप्रायो मन्त्र आग्नेय उच्यते।
सौम्याश्च मनवः प्रोक्ता भूयिष्ठेन्द्वमृताक्षराः॥
आग्नेय-मन्त्राः सौम्याः स्युः प्रायशोऽन्ते नमोऽन्विताः।
मन्त्रः शान्तोऽपि रौद्रत्वं हुं फट् पल्लवितो यदि॥४७॥

जिन मन्त्रों में अग्निवर्ण 'र' तथा विष वर्ण 'म' का प्रायः प्रयोग हो तथा अन्त में 'ॐ' हो, वे आग्नेय मन्त्र कहे जाते हैं। जिन मन्त्रों में 'स' तथा 'व' वर्णों की अधिकता हो, वे सौम्य कहलाते हैं। आग्नेय मन्त्र भी प्रायः 'नमः' अन्त में होने पर सौम्य और हुं, फट् से पल्लवित होने पर सौम्य मन्त्र भी रौद्र (आग्नेय) हो जाते हैं।

।। मन्त्राणां सुप्त प्रबुद्धकालाः।।

सुप्तः प्रबुध्यमानोऽपि मन्त्रः सिद्धिं न गच्छति।
स्वापकालो वामवहो जागरो दक्षिणावहः॥
स्वापकाले तु मन्त्रस्य जपो न च फलप्रदः।
आग्नेयाः सम्प्रबुध्यन्ते प्राणे चरति दक्षिणे॥
वामे चरति सौम्याश्च प्रबुद्धा मन्त्रिणां सदा।
नाडीद्वयगते प्राणे सर्वे बोधं प्रयान्ति च।
प्रयच्छन्ति फलं सर्वे प्रबुद्धा मन्त्रिणां सदा॥४८॥

जब श्वास प्रवाह चन्द्र नाडी (वाम नासिका) से होता है तो यह काल सामान्यतः मन्त्रों के लिए सुप्तकाल कहा जाता है। सूर्य नाडी (दक्षिण नासिका) से श्वास प्रवाह होने पर जागरण काल माना जाता है। सुप्त काल में मन्त्र-जप फल-प्रद नहीं होता है। जब दक्षिण नासिका से प्राण संचरण (श्वास प्रवाह) हो रहा हो तो

आग्नेय मन्त्र जागृत होते हैं। सौम्य मन्त्र वाम स्वर चलने के समय जागृत होते हैं। परन्तु जब वाम तथा दक्षिण दोनों स्वर (सुषुम्ना में) चल रहे हों तो सभी मन्त्र जागृत हो जाते हैं। जागृत मन्त्र ही साधक के लिए सदा सर्वफलदायी होते हैं।

।। आसनानि।।

आसनानि प्रवक्ष्यामि कर्मणां विहितान्यपि।
पद्मासन पौष्टिके तु शान्तिके स्वस्तिकासनम्।।
आकृष्टे पौष्टिके तद्वद्विद्वेषे कुक्कुटासनम्।
अर्धस्वस्तिकमुच्चाटे अर्धस्थापनपार्ष्णिकम्।।
मारणे स्तम्भे तद्वद्विकटं परिकीर्त्तितम्।
वश्ये भद्रासनं तेषां कथ्यते चाथ भावना।।४९।।

भिन्न-भिन्न कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न आसनों का विधान है। पौष्टिक कर्म पद्मासन में बैठकर करना चाहिए। शान्ति कर्म के लिए स्वस्तिकासन तथा आकर्षण, पुष्टि कर्म एवं विद्वेषण कर्म हेतु कुक्कुटासन का प्रयोग करना चाहिए। पिछला अर्ध भाग भूमि स्थापित कर अर्धस्वस्तिक आसन का प्रयोग उच्चाटन कर्म में करे। मारण तथा स्तम्भन कर्म हेतु विकटासन तथा वश्यकर्म में भद्रासन का प्रयोग करे।।४९।।

(शारदा तिलक के अनुसार-षट्कर्मों में क्रमशः पद्मासन, स्वस्तिक, विकट, कुक्कुट, वज्र तथा भद्रासन का प्रयोग करना चाहिए।''पद्माख्यं स्वस्तिकं भूयो विकटं कुक्कुटं पुनः। वज्रं भद्रकमित्याहुरासनानि मनीषिणः।।)

।। विकट कुक्कुटासनयोर्लक्षणं।।

जानुजङ्घान्तरालेषु भुजयुग्मं प्रवेशयेत्।
विकटासनमेतत् स्यादुपविश्योत्कटासने।।
कृत्वोत्कटासनञ्चैव समपादद्वयं ततः।
(पद्मासनन्तु तु संयोज्य जानूर्वोरन्तरे करौ।
निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्योमस्थं कुक्कुटासनम्)
वश्ये मेषासनं प्रोक्तं आकृष्टिर्व्याघ्रचर्मणि।।
उष्ट्रासनं तथोच्चाटे विद्वेषे तुरगासनम्।
मारणेमाहिषं चर्म मोक्षे हस्त्यजिनं भवेत्।
अथवा कम्बलं रक्तं सर्व कर्मसु कारयेत्।।५०।।

दोनों घुटनों तथा जंघाओं के बीच दोनों हाथों को प्रविष्ट कराकर बैठना विकटासन है। फिर पिछला भाग कुछ उठाकर दोनों पैरों को सम करके स्थित होना कुक्कुटासन है। (पद्मासन में बैठकर घुटनों तथा जांघों के बीच दोनों हाथों को प्रवेश कराकर पृथ्वी पर स्थापित कर आकाशस्थ (भूमि से थोड़ा ऊपर उठकर) स्थित होना कुक्कुटासन कहा जाता है।)

वशीकरण में मेषासन (भेड़ के ऊन का आसन), आकर्षण में व्याघ्र चर्म, उच्चाटन में ऊँट का चर्मासन, विद्वेषण में अश्वचर्मासन, मारण कर्म में भैंसे के चर्म का आसन तथा मोक्षेच्छु कर्म में हस्तिचर्मासन का प्रयोग करना चाहिए अथवा समस्त काम्य कर्मों के लिए लाल कम्बल के आसन का प्रयोग करे।।५०।।

।। षण्मुद्राः।।

षण्मुद्रा क्रमशो ज्ञेयाः पद्मपाशगदाह्वयाः।
मुषलाशनिखड्गाख्याः शान्तिकादिषु कर्मसु।।५१।।

शान्त्यादि षट्कर्मों में क्रमशः पद्म, पाश, गदा, मुषल, अशनि तथा खड्ग नामक षण्मुद्राओं का प्रयोग जानना (करना) चाहिए।

।। देवध्यानमाह।।

शान्तिपौष्टिकवश्येषु सौन्दर्यातिशयान्विताः।
सर्वाभरण सन्दीप्ताः प्राप्तकालमनोरथाः।
ध्यातव्या देवताः सम्यक सुप्रसन्नाननाम्बुजाः।।
आकर्षणेऽपि तद्वच्च वडिशैरिव मत्स्यकान्।
साध्यमाकर्षणे द्वेषे भर्त्स्यमानं जनैरिव।
बाध्यमानो जनैर्दण्डैर्दारितस्तस्करो यथा।।
उलूको वा यथा रिष्टैर्मन्तव्योच्चाटने रिपुः।
यत्किञ्चित शवमारूह्य सन्दष्टौष्ठपुटः क्रुधा।
कर्म कुर्यात् ततो मन्त्री यथा क्रूरेषु कर्मसु।।५२।।

इति श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीशभट्टाचार्य्यकृतायां षट्कर्मदीपिकायां
सामान्यधर्मः प्रथमोद्देशः।।

कार्यों की विभिन्नता के अनुसार देवता के ध्यानस्वरूप में विभिन्नता होती है। शान्ति, पौष्टिक तथा वश्य कर्मकाल में अति सौन्दर्ययुता, सर्वाभरण भूषिता, नव यौवना विकसित कमल के समान प्रसन्न वदना देवता का भली भाँति ध्यान करना चाहिए। आकर्षण कर्म में इसी भाँति देवता का ध्यान करते हुए यह भी ध्यान करे कि जिस प्रकार वंशी (मछली पकड़ने का एक उपकरण) मछली को आकर्षित करती है उसी प्रकार देवता भी साध्य (व्यक्ति) को आकर्षित कर रहा है। विद्वेषण कर्म में लोगों (मनुष्यों) द्वारा भर्त्सना (अपमानित) किये जाते हुए साध्य का ध्यान करना चाहिए। जैसे वध योग्य चोर को लोग दण्ड देते हैं तथा पीड़ित करते हैं उसी प्रकार साध्य का भी ध्यान करना चाहिए। उच्चाटन कर्म में शत्रु (साध्य) को उल्लू तथा कौवे रूप में अनिष्टकर मानते हुए ध्यान करना चाहिए। किसी शव पर आरुढ़ होकर क्रोध पूर्वक दाँतों से होठों को दबाते (चबाते हुए) अथवा इस रूप में स्वयं की कल्पना करते हुए क्रूर अभिचार कर्मों को करना चाहिए।।५२।।

।। श्री कृष्णानन्द विद्यावागीश भट्टाचार्य कृत षट्कर्म-दीपिका में सामान्य धर्म नामक प्रथमोद्देश की 'अंजलि' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ द्वितीयोद्देश:

(कुण्डादिनियमाः)

॥रक्षार्थम्॥

ग्रामे च निर्जने देशे विदध्यादभिचारकम्।
यत्राभिचारहोमन्तु कुर्य्याच्च भुवि साधकः॥
तत्राभितो भटैः रक्षां कारयेदात्मसिद्धये।
न चेच्चान्यः क्षितिपतिश्चारैर्ज्ञात्वा निहन्त्यमुम्॥१॥

साधक को अभिचार कर्मों का सम्पादन किसी ग्राम में अत्यन्त निर्जन एकान्त स्थान में करना चाहिए। साधक जहाँ अभिचार हेतु हवन कर्म करे वहाँ अपनी रक्षा हेतु रक्षकों की भी चारों ओर व्यवस्था करनी चाहिए। अन्यथा कोई अन्य राजा (प्रतिपक्षी) अपने गुप्तचरों द्वारा इसे जानकर साधक का वध करवा सकता है॥१॥

॥ षट्कर्मसु कुण्डनिर्देशः॥

विद्वेषे चाभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते।
द्विमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रन्तु सर्वतः॥
उच्चाटनन्तु नैर्ऋत्यां शत्रुपक्षस्य कारयेत्।
उत्सादनन्तु वायव्यां देवानामपि कारयेत्॥
शत्रूणां तापने शस्तं योन्याख्यमग्निकोणगम्।
अर्द्धचन्द्रन्तु याम्यायां शत्रूणां मारणे स्थितम्॥
त्रिकोणं नैर्ऋते कुण्डं रिपूणां व्याधिवर्द्धनम्।
दाहायाग्नौ च विद्वेषे कुण्डं पूर्णेन्दुसन्निभम्।
चतुरस्रञ्च कर्त्तव्यं द्वेषादौ तु विचक्षणैः॥

विद्वेषण तथा अभिचार कर्म में हवन के लिए एक हाथ मान वाले दो मेखलायुक्त त्रिकोण कुण्ड का निर्माण कोण दिशाओं में करना चाहिए। उच्चाटन के लिए शत्रुपक्ष के निवास स्थल की नैर्ऋत्य दिशा में कुण्ड बनाना चाहिए। वायव्य दिशा में स्थित त्रिकोण कुण्ड में हवन करने से देवताओं का भी उच्चाटन (अथवा नाश) हो जाता है। शत्रु-सन्तापन के लिए आग्नेय कोण में त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिए। शत्रुओं का मारण करने के लिए अर्धचन्द्राकार कुण्ड मण्डप (अथवा शत्रु-निवास) की दक्षिण दिशा में बनाना चाहिए। शत्रुओं के रोग वृद्धि हेतु नैर्ऋत्य दिशा में स्थित त्रिकोण कुण्ड का प्रयोग करे। शत्रु शरीर में दाह उत्पन्न करने तथा विद्वेषण के लिए आग्नेय कोण में पूर्ण चन्द्रमा के समान (वृत्ताकार) कुण्ड का प्रयोग करना चाहिए। विद्वेषणादि समस्त कर्मों के लिए चौकोर कुण्ड का भी प्रयोग बुद्धिमान साधक इच्छानुसार कर सकता है।

कुण्डं सुलक्षणं कृत्वा तत्र कर्माणि साधयेत्।
चतुरस्रे भवेद्वश्यमाकर्षः स्यात् त्रिकोणके।।
कर्षणस्तम्भने देवि! विद्वेषञ्च त्रिकोणके।
अथैवोच्चाटनं प्रोक्तं षट्कोणे मारणं स्मृतम्।।
उदीच्यां पौष्टिके कुण्डं वारुण्यां शान्तिकादिषु।
उच्चाटे चानिले कुण्डं याम्ये च मारणं भवेत्।।
मानहीनादिकं दोषं नास्ति कुण्डेऽभिचारके।
शुभेषु स्युर्विवाहान्ताः क्रियास्ताः क्रूरकर्मणि।
मारणान्ताः समुद्दिष्टा वह्नेरागमवेदिभिः।।२।।

नियमानुसार सुन्दर तथा शास्त्रीय लक्षणों से युक्त कण्ड का निर्माण कर साधक को कर्म का सम्पादन करना चाहिए।

वशीकरण कर्म के लिए चौकोर कुण्ड, आकर्षण, स्तम्भन, विद्वेषण तथा उच्चाटन के लिए त्रिकोणाकार तथा मारण कर्म के लिए षट्कोण कुण्ड का प्रयोग कहा गया है।

पौष्टिक कर्म के लिए कुण्ड का निर्माण मण्डप अथवा ग्राम के उत्तर की ओर शान्ति कर्म हेतु पश्चिम दिशा में, उच्चाटन में वायव्य तथा मारण कर्म में दक्षिण की ओर करना चाहिए। अभिचार कर्म के लिए कुण्ड निर्माण में निर्देशित किये गये हस्तादिमानों में न्यूनाधिकता होने पर भी कोई दोष नहीं होता है।

शान्ति और पुष्टि आदि शुभ कर्मों में अग्नि के विवाह पर्यन्त संस्कार और क्रूर (मारण) कर्म में 'अन्त्येष्टि' पर्यन्त सभी संस्कार करना चाहिए।।२।।

विमर्श :- गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नालछेद, नामकरण, निष्क्रमण, अन्न प्राशन, चूड़ाकर्म (मुंडन), उपनयन, महाव्रत (त्रिव्रत) समावर्तन, विवाह तथा अंत्येष्टि/द्विजातियों के ये संस्कार हैं। कुण्ड/स्थण्डिल में अग्नि स्थापित किये जाने के बाद अग्नि के ये संस्कार किये जाते हैं। एतदर्थ प्रत्येक संस्कार का नामोल्लेख करते हुए घृत की आहुति दी जाती है। यथा-

ॐ अस्य अग्नेः गर्भाधान संस्कारं सम्पादयामि स्वाहा। हवन कर्म में अग्नि का संस्कार कर्म सम्पादन की विस्तृत विधि अन्य तन्त्र ग्रन्थों में दृष्टव्य है।

ततो राज्ञातिविद्वांसमथर्वश्रुतिपारगम्।
बहुभिर्द्रविणैर्वस्त्रैर्नानारत्नैर्विभूषणैः।
पूजयित्वा ततः पश्चाद् विधिना वृणुयाद्द्विजम्।।
वृतोऽप्युत्साहसंयुक्तः सर्वरक्षापरायणः।
यत्नतो मारणं कर्म कुर्य्याद्राज्ञो हितेच्छया।।
वित्तशाठ्यं परित्यज्य सर्वकर्माणि कारयेत्।
वित्तशाठ्यं निहन्त्याशु पुत्रमायुर्यशोधनम्।
देशरक्षणधर्मेण न स्वयं पापभाग् भवेत्।।
तेजोनाशो भवेदादौ बलनाशस्ततो भवेत्।

सपत्नस्य ततो नाशस्तिस्रश्चावृत्तयस्ततः।
त्रिरावृतौ फलालाभे त्रिरावृत्तं पुनश्चरेत॥३॥

इसलिए राजा (अथवा जो भी व्यक्ति किसी ब्राह्मण के द्वारा कर्म कराना चाहता हो या साधक स्वयं) को सर्वप्रथम तन्त्रशास्त्रोक्त कर्मों के ज्ञाता विद्वान, कर्म सम्पादन में समर्थ एवं अथर्व वेद के तान्त्रिक क्रिया-कलापों को जानने वाले ब्राह्मणों का विधिपूर्वक प्रचुर धन, वस्त्र, अनेकों रत्नाभूषणों के प्रदान सहित पूजन कर वरण करना चाहिए।

स्वयं तथा राजा (यजमान) की भी सर्वप्रकार से रक्षा करते हुए वृत ब्राह्मणों को भी धैर्य, उत्साह, प्रसन्नता एवं प्रयत्न पूर्वक राजा की रक्षा (हित) के लिए मारण (अथवा अन्य करणीय) कर्म करना चाहिए। कर्म के विधिवत् सम्पादन हेतु राजा (यजमान) को आवश्यकतानुसार धन व्यय करना चाहिए। कृपणता (कंजूसी) न करे, क्योंकि कर्म में की गई धन की कृपणता शीघ्र ही पुत्र, आयु, धन तथा यश का विनाश कर देती है। देश (तथा देश के योग्य शासक-राजा) की रक्षा करना 'राष्ट्र-धर्म' कहा जाता है। अतः इसके लिए शत्रु का मारणादि कर्म करने वाला ब्राह्मण (अथवा अन्य कोई भी) स्वयं पाप का भागी नहीं होता। शत्रु के पूर्णतः विनाश के लिए मारण क्रिया की तीन आवृत्ति करनी चाहिए। पहली आवृत्ति से शत्रु का तेज नष्ट होता है, दूसरी आवृत्ति से बलनाश तथा तीसरी आवृत्ति करने पर शत्रु की निश्चित ही मृत्यु हो जाती है। यदि तीन आवृत्ति के पश्चात् भी फल-प्राप्ति (शत्रु-विनाश) न हो तो पुनः कर्म की त्रिरावृत्ति करनी चाहिए॥३॥

॥ यथोत्तरं प्रयोगोत्कर्षः॥

वश्यात् स्तम्भनमुत्कृष्टं स्तम्भनान्मोहनं महत्।
मोहनाद्वेषणं श्रेष्ठं द्वेषादुच्चाटनं वरम्॥
उच्चाटनादपि महन्मारणं सर्वतोमहत्।
मारणादधिकं कर्म न भूतं न भविष्यति॥
तत्रैव दक्षिणे चित्तं कृत्वा मारणमारभेत्।
शान्तिपुष्टी दिनस्यान्ते सन्ध्याकाले तु मारणम्॥४॥

वशीकरण की अपेक्षा स्तम्भन कर्म उत्कृष्ट होता है। स्तम्भन से उत्कृष्ट मोहन, मोहन से उत्कृष्ट विद्वेषण, विद्वेषण से श्रेष्ठ उच्चाटन तथा उच्चाटन से श्रेष्ठ मारण कर्म कहा जाता है। शत्रु के प्रति किया गया मारण-कर्म (अति आवश्यक होने पर) सर्वश्रेष्ठ होता है। मारण से श्रेष्ठ अन्य कोई कर्म न कभी पहले था न भविष्य में ही होगा। अतः साधक जहाँ भी यह मारण कर्म करे दक्षिण दिशा का ध्यान तथा उसी दिशा में मुख करके स्थिर मानस होकर करे। शान्ति-पुष्टि कर्म दिन के अन्तिम प्रहर (तीसरे चौथे) में तथा मारण कर्म सन्ध्या काल मे करना चाहिए॥४॥

॥ कुम्भ स्थापनम् (आङ्गिरसे)॥

शान्तिके स्वर्णकुम्भञ्च नवरत्नैर्विभूषितम्।

तदभावे रौप्यकुम्भं ताम्रं वापि सुलक्षणम्।।
अभिचारे लोहकुम्भं स्थापयेत् सुसमाहितः।
उत्सादे काचकुम्भञ्च मोहने रैत्यकुम्भकम्।।
उच्चाटने च मृत्कुम्भं कालमण्डलसंस्थितम्।
सर्वकर्मणि वा कुर्य्यात् कुम्भं ताम्रमयं तथा
तत्तत्कुम्भञ्च संस्थाप्य रुद्रं देवीञ्च पूजयेत्।
उपचारक्रमेणैव देवं ध्यायेद यथाविधि।।५।।

नव रत्नों[1] से विभूषित (पूर्ण) स्वर्ण कुम्भ की स्थापना शान्ति कर्म में करना चाहिए। इसके अभाव में समस्त शुभ लक्षणों से युक्त सुन्दर चाँदी या ताम्र कलश की स्थापना करे। अभिचार कर्म के लिए लौह-कुम्भ की स्थापना करे। उत्सादन (विनाश) के लिए काँच (शीशा) का कुम्भ, मोहन कर्म में पीतल का तथा उच्चाटन कर्म में लौह मण्डल (आधार) पर स्थित मृत् कुम्भ (मिट्टी का कलश) की स्थापना करनी चाहिए। अथवा सभी कर्मों के लिए ताम्र कलश की ही स्थापना करे।।५।।

कर्मानुसार कुम्भों की विधिवत पूजन क्रम सहित स्थापना करके रुद्र तथा भद्र काली देवी की पूजा करनी चाहिए। दोनों का पूजन-क्रम अलग-अलग करना चाहिए। पूजन से पूर्व रुद्रदेव का ध्यान निम्नवत करना चाहिए।

।। रुद्र-ध्यानं पूजनञ्च।।

शूलहस्तं महारौद्रं सर्ववैरिनिसूदनम्।
पूर्णचन्द्रसमाभासं रुद्रं वृषभवाहनम्।
अथवान्यप्रकारेण ध्यानं कुर्य्यात् समाहितः।।६।।

समस्त शत्रु समूहों का विनाश करने वाले, हाथ में शूल (त्रिशूल) धारण किये हुए, महारौद्र रूप पूर्णिमा के चन्द्र-समान आभायुक्त रुद्र देव अपने वाहन वृषभ पर स्थित हैं अथवा स्थिर चित्त हो अन्य (दूसरे) प्रकार से ध्यान करे।।६।।यथा-

काश्मीरस्फटिकप्रभं त्रिनयनं पञ्चाननं शूलिनम्
खट्वाङ्गासिवरप्रसादडमरुं चक्राब्जवीजाभयम्।
विभ्राणं दशदोर्भिरक्षजटिलं वीरासने संस्थितम्
गौरीश्रीसहितं सदैवमखिलं ध्यायेच्छिवं चर्मिणम्।।७।।

भगवान शिव के शरीर की कान्ति काश्मीरी स्फटिक के समान शुभ्र गौरवर्ण है। इनके पाँच मुख हैं। प्रत्येक मुख तीन-तीन नेत्रों से युक्त है। अपने दसो हाथों में शूल, खट्वाङ्ग, तलवार, वर, प्रसाद, डमरु, चक्र, कमल, विजौरा फल तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं। जटाओं में रुद्राक्ष तथा शरीर पर व्याघ्र (अथवा हस्ति) चर्माम्बर धारण किये हुए सर्वसृष्टि स्वरूप ये भगवान शिव गौरी तथा श्री सहित वीरासन में बैठे हुए हैं। इस प्रकार सदैव शिव का ध्यान करना चाहिए।।७।।

रुद्रमन्त्रेण कुर्य्याच्च उपचारान् पृथग्विधान्।
भद्रकालीञ्च सम्पूज्य नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः।

१- पुष्पं नीलं च वैदूर्यं, विद्रुमं मौक्तिकं तथा।
ततो मरकतं वज्रं, गोमेदं पद्मरागकम्।। - मेरूतन्त्रे

पट्टवस्त्रैरलङ्कारैर्वलिदानैः पृथग्विधैः।।

ध्यान के पश्चात् अलग-अलग उपचार सामग्री द्वारा रूद्र तथा भद्रकाली का पूजन करें। रूद्र का पूजन रूद्र मन्त्र द्वारा करना चाहिए। दोनों के लिए नैवेद्य, पट्टवस्त्र, अलंकार, बलिदान आदि की व्यवस्था पृथक-पृथक ही करनी चाहिए।

।। शत्रोर्भयनिवृत्तये अन्तिमोपाय रूपेण मारणम्।।

यत्र न स्यादुपायोऽन्यः शत्रोर्भयनिवृत्तये।
तदाऽनन्यगतित्वेन मारणादीनि कारयेत्।।८।।
दीपादग्निं समानीय धूपाद्वा चान्त्यजादपि।
विद्वेषणाभिचारे च क्रव्यादंशं न सन्त्यजेत्।।
अत्र चैव विधायाग्निं परिस्तीर्य्य शरैस्तृणैः।
विभीतकपरिध्या च कल्पयेद् यस्य मारणम्।।
जुहुयान्निम्बतैलाक्तैः काकोलूकीयपक्षकैः।
दारयैनं शौषयैनं मारयेत्यभिधाय च।
अष्टोत्तरशतेनैव मनसा जुहुयादृचा।।
होमान्ते विधिवत् कृत्यामाराध्याग्नेश्च सन्निधौ।
यो मे च कण्टकं दूराद् दूरं वा चान्तिकेऽपि च।।
पिब हृद्यमसृक् तस्येत्युक्त्वा साधु निवेदयेत्।
संरक्ष्याग्निं विधानेन नवरात्रं समापयेत्।।
मृतस्तिष्ठति ज्ञात्वैवं तावदस्य रिपोर्मृतिः।
वसनं लोहितं प्रोक्तम् उष्णीशं लोहितं स्मृतम्।
सङ्कल्प्य जपहोमादौ तदावरणमारभेत्।।९।।

जब शत्रु से उत्पन्न होने वाले भय की निवृत्ति का कोई भी उपाय सफल न हो रहा हो तो दृढ़ निश्चय होकर एकमात्र मारण का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। इस कर्म में हवन-हेतु शत्रु गृह के दीपक से, धूप-पात्र से अथवा अन्त्यज (चाण्डाल) के घर से अग्नि लाकर कुण्ड में स्थापित करें। विद्वेषणादि अभिचार कर्मों में अग्नि के क्रव्यादंश का त्याग नहीं करना चाहिए। कुण्ड में विधिवत् अग्नि स्थापित कर कुण्ड के चारों ओर कुशों को बिछाकर अग्नि का परिस्तरण करना चाहिए। मारण कर्म में विभीतक (बहेड़ा) की समिधा में शत्रु की कल्पना करके नीम के तेल से भीगे हुए कौवे तथा उल्लू के पंखों सहित उसका हवन करें। आहुति डालते समय मन्त्र के साथ दारय एनं (शत्रु-नाम) शोषय एनं, मारय एनं का मानसिक उच्चारण करते हुए एक सौ आठ बार हवन करें। हवन के पश्चात् अग्नि के सानिध्य (समीप) में ही कृत्या देवी का पूजन करें। पूजन के बाद ''यो मे कण्टकं दूरात् दूरं वान्तिके पिव हृदयमसृक् तस्य'' इस प्रकार प्रार्थना करे। अग्नि का संरक्षण करते हुए नवरात्रों (नव-रात तक) तक इस कर्म को करे। यदि ज्ञात हो कि शत्रु अभी जीवित है तो तब तक यह कर्म करे जब तक उसकी मृत्यु न हो जाय। मारण कर्म में आसन का रंग लाल होना चाहिए तथा साधक को लाल वस्त्र तथा सिर पर लाल रंग का ही साफा (पगड़ी) धारण करनी चाहिए। जप होमादि में पहले

सङ्कल्प करके ही कर्म आरम्भ करे तथा इसे गुप्त भी रखने का प्रयत्न करे।

।। विशुद्धेश्वरे तन्त्रे स्वाप-जागृत कालः।।

स्वापकाले तु मन्त्रस्य जपो न च फलप्रदः।
स्वापकालो वामवहो जागरो दक्षिणावहः।
शान्तिकर्मणि मिश्रं वा जपेन्मन्त्रं प्रसिद्धये।।१०।।

सुप्तकाल अर्थात् जब श्वाँस वाम नासिका (चन्द्र नाड़ी) से चल रहा हो तो मन्त्र का जप फलदायी नहीं होता। जपादि कर्म जागरण काल जब श्वाँस दक्षिण नासिका से चल रह हो तभी करना चाहिए। शान्ति-पुष्ट्यादि कर्मों में जब दोनों स्वर (सुपुम्ना में) चल रहे हों तो जप करने से मंत्र सिद्ध होता है।

।। माला निर्णयः।।

प्रबालवज्रमणिभिर्वश्यपौष्टिकयोर्जपेत्।
मत्तेभदन्तमणिभिर्जपेदाकृष्टिकर्मणि।।
साध्यकेशसूत्रयुक्तैस्तुरङ्गदशनोद्भवैः।
अक्षमालां परिष्कृत्य विद्वेषोच्चाटने जपेत्।।
मृतस्य युद्धशून्यस्य दशनैगर्दभस्य च।
कृत्वाक्षमालां जप्तव्यं शत्रुमारणमिच्छता।।
क्रियते शङ्खमणिभिर्धर्मकामार्थसिद्धये।
पद्माक्षैः प्रजपेन्मन्त्रं सर्वकामार्थसिद्धये।।

वशीकरण के लिए मूँगा तथा पौष्टिक कर्म के लिए हीरे के दानों से बनी माला से जप करना चाहिए। आकर्षण हेतु हाथी-दाँत की मणियों की माला से तथा विद्वेषण एवं उच्चाटन कर्म में साध्य (जिस व्यक्ति के प्रति कर्म करना है) के केशों द्वारा गुँथी हुई घोड़े के दाँतों की मणियों की माला से जप करना चाहिए। माला बनाने के बाद उसका संस्कार अवश्य करना चाहिए। शत्रु के विनाश (मारण) हेतु युद्ध में सिर कटने से मरे हुए व्यक्ति के दाँतों अथवा गदहे के दाँतों से बनी माला का प्रयोग करना चाहिए। धर्म-अर्थ-काम की सिद्धि हेतु शंख-मणि (मोती) की माला का प्रयोग करना चाहिए। समस्त इच्छित सांसारिक भोगों (विशेषकर धन) की प्राप्ति के लिए कमल गट्टे की माला से जप करना चाहिए।

रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रः सर्वफलप्रदः।
स्फाटिकी मौक्तिकी वापि रौद्राक्षी वा प्रबालजा।।
सारस्वताप्तये शस्ता पुत्रजीवैस्तथाप्तये।
पद्मसूत्रकृता रज्जुः शस्ता शान्तिकपौष्टिके।।
आकृष्ट्युच्चाटयोर्वाजिपुच्छबालसमुद्भवा।
नरस्नायुविशेषैस्तु मारणे रज्जुरुत्तमा।।
अन्यासाञ्चाक्षमालानां रज्जुः कार्पासिकी मता।
सप्तविंशतिसंख्याकैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति।।

अक्षैस्तु पञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा।
अक्षमाला विनिर्दिष्टा तन्त्रादौ तत्त्वदर्शिभिः।
अष्टोत्तरशतेनैव सर्वकर्मसु पूजिता॥११॥

रुद्राक्ष की माला द्वारा जप करना सभी मन्त्रों के लिए फलप्रद होता है। ज्ञान (विद्या) प्राप्ति के लिए स्फटिक, मोती, रुद्राक्ष अथवा मूँगा की माला श्रेष्ठ कही जाती है। पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्रजीवा की माला से जप करना चाहिए।

शान्ति तथा पौष्टिक कर्म में कमलनाल के तन्तु (रेशे) द्वारा बनी (गुंथी) हुई माला श्रेष्ठ होती है। आकर्षण तथा उच्चाटन में घोड़े के पूँछ के बाल से गुँथी माला का प्रयोग करना चाहिए। मारण कर्म में विशेष रुप से मनुष्य के स्नायु (नसों) सूत्र द्वारा बनी माला का प्रयोग करना चाहिए। अन्य कार्यों के लिए अक्षमाला में कपास सूत्र का प्रयोग करना चाहिए।

मुक्ति की कामना हेतु जप करने के लिए सत्ताइस दानों की माला बनानी चाहिए। अभिचार कर्मों के लिए पंद्रह दानों की माला फलदायी होती है। विभिन्न तन्त्रशास्त्रों में प्रायः सभी विद्वानों द्वारा एक सौ आठ दानों की माला को सभी कर्मों में श्रेष्ठ बताया गया है॥११॥

॥ जपाङ्गुलिनियमः॥

शान्त्यादिस्तम्भवश्येषु वृद्धाग्रेण च चालयेत्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु जपेदाकर्षणे मनुम्॥
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यान्तु विद्वेषोच्चाटयोर्जपेत्।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन मारणे जप ईरितः॥१२॥

शान्ति, पुष्टि, स्तम्भन तथा वशीकरण (भोग एवं मोक्ष के लिए भी) के लिए जप करने समय अक्षमाला को मध्यमा पर स्थित कर अंगूठे से घुमाना चाहिए। आकर्षण कर्म में अङ्गुष्ठ तथा अनामिका द्वारा जप करना चाहिए। (कहीं कहीं स्तम्भन के लिए भी यही विधि कही गई है।)विद्वेषण तथा उच्चाटन के लिए जप करते समय अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी का प्रयोग करना चाहिए। मारण कर्म के लिए अङ्गुष्ठ तथा कनिष्ठा से जप करना चाहिए॥१२॥

॥ जपदिङ्नियमः॥

जपेत् पूर्वमुखं वश्ये दक्षिणञ्चाभिचारके।
पश्चिमं धनदं विद्यादुत्तरं शान्तिकं भवेत्।
आयुष्यरक्षां शान्तिञ्च पुष्टिं वापि करिष्यति॥१३॥

वशीकरण हेतु पूर्व की ओर मुखकर तथा अभिचार कर्मों के लिए दक्षिण की ओर मुख करके जप करना चाहिए। धन प्राप्ति के लिए पश्चिम मुख तथा आयुरक्षा, शान्ति-पुष्टि कर्म के लिए उत्तर मुख होकर जप करना चाहिए॥१३॥

(चामुण्डा तन्त्र में वश्य के लिए पूर्व, सर्वाभिचार के लिए दक्षिण, स्तम्भन के लिए पश्चिम, शान्ति के लिए उत्तर, आकर्षण के लिए आग्नेय, मारण के लिए निर्ऋति, उच्चाटन के लिए वायव्य तथा मोक्ष के लिए ईशान दिशा की ओर मुख

करके जप करने का विधान कहा गया है।)

।। जपलक्षणम् वाचिकादिमन्त्राश्च।।

श्रूयतेऽन्यैः स तु वाचिकः स्यादुपांशुसंज्ञो निजदेहवेद्यः।
निष्कम्पदन्तौष्ठमथाक्षराणां यच्चिन्तनं स्यादिह मानसाख्यः।।
अभिचारे किल वाचिकः स्यादुपांशुरुक्तोऽप्यथ शान्तिपुष्टौ।
मोक्षेषु जापः किल मानसाख्यः संज्ञा त्रिधा पापनुदे तथोक्ता।।१४।।

मन्त्र का जप करते समय जब मुख से निकलने वाली ध्वनि अन्य व्यक्ति द्वारा भी सुनी जा सकने योग्य हो तो यह जप वाचिक कहा जाता है। जब मन्त्र ध्वनि का श्रवण स्वयं के द्वारा ही सम्भव हो तो यह जप उपांशु होता है। परन्तु जब मन्त्र जप करते समय ओष्ठ-दन्त तथा जिह्वा का भी कम्पन (चलना-हिलना) न हो तथा मन्त्राक्षरों का केवल चिन्तन भर ही हो तो यह जप मानस-जप कहा जाता है।

अभिचार कर्मों में वाचिक जप, शान्ति-पुष्टि-कर्म में उपांशु तथा मोक्ष की प्राप्ति हेतु मानसिक जप करना चाहिए। पापों के विनाश के लिए तीनों प्रकार से जप किया जा सकता है।।१४।।

।। कुण्डदिङ्नियमः।।

शान्तिके पौष्टिके चैव होमः स्याद् योग्यसाधनैः।
कार्य्यं प्राग्वदनेनाथ सौम्येन वदनेन वा।।
आकृष्टौ वायुकुण्डे च कौवेरीदिङ्मुखेन तु।
नैर्ऋतीदिङ्मुखस्तस्मिन् कुण्डे विद्वेषणे हुनेत्।।
आग्नेयीदिङ्मुखस्त्वेतत् कुण्डे मारुतकेऽपि वा।
उच्चाटने हुनेन्मन्त्री मारणे याम्यदिङ्मुखः।।
जुहुयाद् याम्यकुण्डे तु मन्त्री तत्साधनैस्ततः।
वज्रलाञ्छितकुण्डे वा ग्रहभूतनिवारणे।।
वायव्यदिङ्मुखो वश्ये कुण्डे योन्याकृती हुनेत्।
वज्रलाञ्छितकुण्डे वा स्तम्भे प्राग्वदनो हुनेत्।।१५।।

शान्ति तथा पौष्टिक कर्म में उचित हवनीय पदार्थों द्वारा पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख बैठकर साधक को होम करना चाहिए। आकर्षण के लिए वायव्य कोणस्थ कुण्ड में उत्तर मुख बैठकर हवन करे। विद्वेषण तथा उच्चाटन कार्य के लिए क्रमशः नैर्ऋत्य एवं आग्नेय मुख बैठकर वायव्य कोणस्थ कुण्ड में ही होम करे। मारण कर्म में दक्षिणस्थ कुण्ड में दक्षिण की ओर ही मुख करके हवन कार्य करना चाहिए। ग्रह-भूतादि के दोषों की शान्ति के लिए षट्कोणाकृति कुण्ड में वायव्य मुख बैठकर तथा वशीकरण के लिए त्रिकोण कुण्ड में हवन करे। स्तम्भन के लिए षट्कोणात्मक कुण्ड में पूर्वमुख बैठकर साधक को होम करना चाहिए। कुण्ड की दिशा स्थिति ग्राम, मण्डप अथवा साध्य के अनुसार रखनी चाहिए।।१५।।

।। शान्त्यादौ द्रव्य-नियमः।।

द्रव्याण्यथ प्रवक्ष्यामि तत्तत्कर्मानुसारतः।

शान्तिके तु पयःसर्पिस्तिलक्षीरद्रुमेण वा॥
अमृताख्या लता चैव पायसं तत्र कीर्तितम्।
पौष्टिके तु प्रवक्ष्यामि होमद्रव्याण्यतः परम्॥
बिल्वपत्रैश्च आज्यैः स्याज्जातीपुष्पैस्तथैव च।
कन्यार्थी जुहुयाल्लाजैः श्रीकामः कमलैस्तथा॥
दध्ना च श्रियमाप्नोति चान्नैश्चान्नं घृतप्लुतैः।
समृद्धौ जुहुयान्मन्त्री महादारिद्र्यशान्तये॥
लक्षहोमाल्लभेच्छान्तिं घृतविल्वतिलैर्भिधिम्।

भिन्न-भिन्न कर्मों के लिए भिन्न आहुति द्रव्यों का विधान है, जिसे अब कहा जा रहा है। शान्ति कर्म में दुग्ध, घृत, तिल, दुग्धवाले वृक्ष की समिधा (पीपल, बरगद आदि) अमृता (गिलोय)नाम की लता तथा खीर से हवन करना कहा गया है। पौष्टिक कर्म के लिए बिल्व-पत्र, घृत तथा जाती-पुष्पों द्वारा हवन करना चाहिए। विवाह हेतु इच्छित कन्या की कामना वाला लाजा से हवन करे।

श्री (लक्ष्मी-ऐश्वर्य) की कामना वाला कमलों से हवन करे। दही से हवन करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति तथा घी सहित अन्न की आहुति से अन्न की प्राप्ति होती है।

महादारिद्र्य के विनाश तथा समृद्धि के लिए घृत, बिल्व तथा तिल के मिश्रण से हवन करे। इस प्रकार लक्ष (एक लाख) होम करने से शान्ति प्राप्त होती है।

आकर्षणे च हवनं प्रियङ्गुविल्वकं फलम्॥
जातीपलाशकुसुमैः सैन्धवैश्चैवमेव च।
राजिकालवणैर्वापि वश्यं वा पौष्टिकोदितैः॥
वश्यार्थी जातिकुसुमैराकृष्टौ करवीरजैः।
कार्पासनिम्बैस्तक्राक्तैः साध्यकेशैरथापि वा॥
उच्चाटने काकपक्षैरथवा मोहने पुनः।
उन्मत्तवीजैर्जुहुयाद्विषरक्तेन मारणम्॥

आकर्षण के लिए प्रियंगु, बिल्व फल, जाती पुष्प, पलाश पुष्प अथवा सैन्धव नमक द्वारा हवन करे। पुष्टि कर्म में सफेद सरसों तथा नमक द्वारा एवं वशीकरण में जाती पुष्प से हवन करे। आकर्षण कर्म में करवीर पुष्प द्वारा तथा उच्चाटन के लिए, जिस व्यक्ति का उच्चाटन करना है उसके बालों द्वारा अथवा कपास तथा नीम के बीजों को मट्ठे में भिगोकर अथवा कौवे के पंखों के द्वारा हवन करना चाहिए। मोहन कर्म के लिए धतूरे के बीजों से हवन करे। मारण कर्म के लिए रक्त मिश्रित विष (कुचला) से हवन कार्य करे।

अजापयस्तथा सर्पिः कर्पासास्थि नृणामपि।
तन्मांसञ्चापि साध्यस्य नखलोमगणैरपि॥

एकीकृत्य हुनेन्मन्त्री शत्रुमारणकाङ्क्षया।
जुहुयात् सार्षपैस्तैलैरथवा शत्रुमारणे॥
रोहीवीजैस्तिलोपेतैरुत्सादे जुहुयाद् यवैः।
तुषकण्टकसंयुक्तैर्वीजैः कार्पासिकैरपि॥
सर्षपैर्लवणोपेतैर्हुनेत् सर्वाभिचारके।

बकरी का दूध, घृत, कपास बीज, मानव अस्थि, माँस तथा साध्य के नाखूनों एवं बालों, इन सभी को मिश्रित कर शत्रु के मारण की कामना से साधक को हवन करना चाहिए। शत्रु के मारण हेतु सरसों के तेल से भी हवन किया जा सकता है। उत्सादन (उच्चाटन) हेतु रोही (रोहीतक-रोहेड़ा-भाव प्रकाश निघण्टु)के बीज तथा तिल के मिश्रण द्वारा हवन करना चाहिए। भूसी काँटे सहित जौ, कपास बीज, सरसों तथा नमक के मिश्रण द्वारा सभी अभिचार कर्मों में हवन कर सकते हैं।

काकोलूकच्छदैः क्रूरैः कारस्करविभीतकैः॥
मरीचैः सर्षपैः सिक्थैरर्कक्षीरैः कटुत्रयैः।
कटुतैलैः स्नुहीक्षीरैः कुर्य्यान्मारणकर्मणि॥
आयुष्कामो घृततिलैर्दूर्वाभिराम्रपर्णकैः।
प्रयोक्तैराम्रपर्णैश्च ज्वरं सद्यो विनाशयेत्॥
गुडूची मृत्युजयने तथा शान्तौ गजाश्वयोः।
गौरैस्तु सर्षपैर्हुत्वा सद्यो रोगं हरेद्गवाम्॥
वृष्टिकामो वैतसीभिः समिद्भिः पत्रकैस्तथा।
हुत्वा पुष्टिमवाप्नोति पुत्रजीवैस्तु पुत्रकम्॥
घृतगुग्गुलुहोमेन वाक्पतित्वं प्रजायते।
जातीविद्रुममल्लीभिः नागपुन्नागसम्भवैः॥
पुष्पैः सरस्वतीसिद्धस्तथा सर्वार्थसाधनम्।
पयसा लवणैर्वापि हुनेवृष्टिनिवारणे॥१६॥

मारण कर्म में कौवे तथा उल्लू के पंखों द्वारा, बाज पक्षी के मांस द्वारा, कुचला, बहेड़ा, कालीमिर्च, सरसो, मोम, मदार का दूध, कटुत्रय (कालीमिर्च, पीपल तथा सोंठ), सरसों का तेल तथा सेंहुड़ (थूहर) के दूध द्वारा हवन किया जाना चाहिए। आयुवृद्धि के लिए घृत, तिल, दूब तथा आम के पत्तों के मिश्रण द्वारा हवन करना चाहिए। आम के पत्तों को घृत में भिगोकर हवन करने से शीघ्र ही ज्वर की शान्ति हो जाती है। मृत्युञ्जय (अकाल मृत्यु के निवारण) के लिए गुडूची से हवन करे। इसके द्वारा हवन करने से हाथी तथा घोड़ों के रोगों की भी शान्ति होती है। सफेद सरसों के हवन से शीघ्र ही गाय के रोगों का हरण हो जाता है। जल वृष्टि की इच्छा हो तो बेतस (बेंत) की समिधा से तथा पुष्टि प्राप्ति के लिए उसके पत्तों द्वारा हवन करे। पुत्र प्राप्ति हेतु पुत्रजीवी के बीजों का हवन करे। घृत-गुग्गुल के हवन से साधक को वाणी (भाषा) पर आधिपत्य अर्थात् विद्वता की प्राप्ति होती है।

सरस्वती सिद्धि (विद्या-प्राप्ति) तथा सर्वार्थ सिद्ध के लिए जाती, मूँगा, मल्लिका, नागपुष्पी तथा नागकेशर के पुष्पों द्वारा हवन करे। खीर अथवा नमक से हवन करने पर वृष्टि (वर्षा) का निवारण होता है।।१६।।

(मन्त्र महोदधि के अनुसार- शान्ति कर्म में गाय के घृत से भीगे दूर्वा द्वारा, वशीकरण में बकरी के घृत तथा अनार की समिधा से, स्तम्भन में भेड़ के घृत युक्त अमलतास की समिधा से, विद्वेषण में धतूरे की समिधा को अलसी के तेल में भिगोकर, उच्चाटन में सरसों के तेल से भीगे आम की समिधा से तथा मारण में सरसों के तेल से भीगे खैर की समिधाओं से हवन करना चाहिए।)

।। वह्नेर्जिह्वा:।। यथा शारदायाम्-

पद्मरागा सुवर्णाख्या तृतीया भद्रलोहिता।
लोहितानन्तरं श्वेता धूमिनी च करालिका।।
राजस्यो रसना वह्नेर्विहिताः काम्यकर्मसु।
विश्वमूर्तिस्फुलिङ्गिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा।।
लोहिताख्या करालाख्या काली तामस्य ईरिता:।
एताः सप्त नियुज्यन्ते क्रूरकर्मसु मन्त्रिभिः।।
स्वस्वनामसमाभाः स्युर्जिह्वाः कनकरेतसः।
हिरण्या गगना रक्ता कृष्णाऽन्या सुप्रभा मता।
बहुरूपाऽतिरक्ता च सात्विक्यो यागकर्मसु।।१७।।

पद्मरागा, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी तथा करालिका ये सात अग्निजिह्वायें राजसी कही जाती हैं। काम्यकर्मों के लिए ये विहित हैं।

विश्वमूर्ति, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, कराला तथा काली ये सात अग्नि जिह्वाएं तामसी हैं। मन्त्रज्ञ पुरुष इनका विनियोग क्रूर अभिचार कर्मों में करते हैं। अपने-अपने नाम के अनुरूप आभा वाली हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, वहुरूपा तथा अतिरक्ता ये सातों अग्नि जिह्वायें सात्विक कही जाती हैं। सात्विक हवन कर्म (शान्ति, पुष्टि कर्म) में इनका विनियोग होता है।।१७।।

।। अन्यत्रापि वह्नेर्जिह्वा:।।

सन्न्यस्या रुद्रभागे द्रुतकनकनिभा कर्षणादौ हिरण्या
वैदूर्य्या पूर्वभागे प्रभवति गगना स्तम्भनादौ रसज्ञा।
रक्ता बालार्कवर्णा हुतवहविदिशि द्वेषणादौ प्रशस्ता
कृष्णा नीलाम्बुजाभा दिशि दनुजपतेर्मारणे सुप्रशस्ता।।
वारुण्यां सुप्रभा सा प्रतिदिशि रसना शान्तिके शोणवर्णा
हेमाभा चातिरक्ता पवनदिशि गतोच्चाटने सम्प्रशस्ता।
मध्ये कुण्डस्य चान्तः प्रभवति बहुरूपा यथार्थाभिधाना
प्रोक्ता जिह्वा विभिन्नाः शिवनिगमपरैः तान्त्रिकैः
कार्य्यसिद्धयै।।१८।।

कुण्ड के ईशान भाग में स्थित तीव्र स्वर्णाभा के समान 'हिरण्या' नाम वाली अग्निजिह्वा आकर्षण कर्म में प्रयुक्त होती है। पूर्वभाग में उत्पन्न नीलम के समान आभावाली 'गगना' नामक जिह्वा स्तम्भन के लिए होती है। बाल सूर्य के समान वर्ण वाली 'रक्ता', जो आग्नेय कोण में स्थित होती है, विद्वेषण के लिए श्रेष्ठ कही जाती है। नीलकमल की आभा के समान निर्ऋत दिशा में स्थित 'कृष्णा' मारण के लिए प्रशस्त है। पश्चिम में स्थित 'सुप्रभा' नामक जिह्वा शान्तिकर्म के लिए उपयुक्त होती है। वायव्य दिशा (कोण) में स्थित रक्तपीत(स्वर्ण) वर्णा 'अतिरक्ता' नाम वाली अग्नि जिह्वा उच्चाटन कर्म के लिए श्रेष्ठ है। अपने नाम के अनुरुप अनेक रुप वाली 'बहुरूपा' कुण्ड के अन्दर मध्य में उत्पन्न होती है। इसमें हवन करना सभी कर्मों के लिए सिद्धिप्रद है। शैवागमो के ज्ञाता तान्त्रिकों द्वारा विभिन्न कार्यों की सिद्धि हेतु अग्नि की भिन्न-भिन्न जिह्वायें कही गयी हैं।।१८।।

।। अग्नेर्नामानि।।

पूर्णाहुत्यां मृडो नाम शान्तिके वरदस्तथा।
पौष्टिके बलदश्चैव क्रोधोऽग्निश्चाभिचारके।।
वश्यार्थे कामदो नाम वरदाने च चूड़कः।
वह्निर्नाम लक्षहोमे कोटिहोमे हुताशनः।।१९।।

भिन्न-भिन्न कर्मों के अनुसार अग्नि के भिन्न-भिन्न नामों का प्रयोग किया जाता है। पूर्णाहुति में अग्नि के मृड नाम का प्रयोग करते हैं। शान्ति कर्म में 'वरद', पौष्टिक कर्म में 'बलद' तथा अभिचार कर्म में 'क्रोध' नाम वाली अग्नि होती है। वशीकरण कर्म में अग्नि का 'कामद', वरदान कर्म में 'चूड़क', लक्ष होम के समय 'वह्नि' तथा कोटि होम में अग्नि के 'हुताशन' नाम का प्रयोग होता है। कर्मानुसार इन नामों द्वारा अग्नि का आवाहन-पूजनादि करके हवन कर्म करना चाहिए।।१९।।

।। होमव्यवस्था।।

द्रव्यासक्तौ घृतं होमे त्वशक्तौ सर्वतो जपेत्।
मूलमन्त्राद्दशांशा स्यादङ्गादीनां जपक्रिया।।
अशक्तावुक्तहोमस्य जपस्तु द्विगुणो मतः।
येषां जपे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः।।
तेषामष्टसहस्राणि संख्योक्ता जपहोमयोः।
स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण कुर्य्याद्होमं बलिं तथा।।
नमोऽन्तेन नमस्कारमर्च्चनञ्च समाचरेत्।
मन्त्रान्ते नाम संयोज्य तर्पयामीति तर्पणम्।
संख्यानुक्तौ जपे होमे चाष्टोत्तरसहस्रकम्।।२०।।

किसी भी मन्त्र के पुरश्चरण के पाँच अङ्ग होते हैं। मन्त्र-जप, हवन, तर्पण, मार्जन तथा ब्राह्मण-भोज। इनमें प्रत्येक अपने से पूर्व का दशांश होता है। जैसे कि जप

का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण आदि। कहीं-कहीं जप का दशांश तर्पण तथा तर्पण का दशांश हवन का भी उल्लेख मिलता है। इनमें मन्त्र-जप के पश्चात् साधक अन्य जो जो भी कर्म करने में अशक्त हो, उसकी संख्या का दुगना मन्त्र जप और करना चाहिए।

यदि साधक कर्मों के अनुसार अनुमोदित द्रव्यों के द्वारा हवन करने में असमर्थ है तो केवल घृत से ही हवन करे। यदि इसमें भी अशक्त है तो हवन की संख्या का दो गुना मन्त्र-जप और करे। मुख्य देवता के मंत्र का जितना जप किया जाता है उसका दशांश अंग देवता के मंत्रों का भी जप करना चाहिए।

हवन तथा बलिकर्म के समय मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करे। प्रणाम तथा अर्चन कर्म के समय मन्त्र के अन्त में 'नमः' का उच्चारण करे। इसी प्रकार तर्पण के समय मन्त्र के अन्त में नाम सहित 'तर्पयामि' शब्द का संयोजन करें। नाम द्वितीयान्त होना चाहिए।

जिस कर्म में मन्त्र के जप तथा हवन की संख्या का निर्देश विद्वानों द्वारा न किया गया हो, वहाँ आठ हजार जप तथा इतना ही हवन अथवा एक हजार आठ की संख्या में हवन करना चाहिए।।२०।।

।। सुक्स्रुवनियमः।।

षट्त्रिंशदङ्गुला स्रुक् स्याच्चतुर्विंशाङ्गुलः स्रुवः।
मुखं कण्ठं तथा वेदीं सप्त चैकाष्टभिः क्रमात्।।
आयामानाहतो दण्डो विंशतिश्च षडङ्गुलः।
वेदरामाङ्गुलैः कुण्डो गर्त्तो हि चतुरङ्गुल।।
खातं वेदाङ्गुलैर्वृत्तमङ्गुलत्रितयं खनेत्।
मेखला द्वयङ्गुला तद्वत् शोभाशेषं विचिन्तयेत्।।
वेदीत्र्यंशेन विस्तारं कुर्य्यात् कुण्डमुखाग्रयोः।
कनिष्ठाग्रमितं रन्ध्रं स्रुचो घृतविनिर्गमे।।
कार्ष्णिकद्वयङ्गुलं खातं पङ्के मृगपदाकृतिः।
द्वाविंशत्यङ्गुलो दण्ड आनाहश्च कृताङ्गुलः।।
दण्डमूलाग्रयोर्गण्डी स्रुवे कङ्कणवद्भवेत्।
सुवर्णरूप्यताम्रैर्वा स्रुक्स्रुवौ दारुजावपि।।
आयसीयौ स्रुकस्रुवौ वा कारस्करमयावपि।
नागेन्द्रलतयोर्विद्यात् क्षुद्रकर्मणि संस्थितौ।।
चन्दनं खदिराश्वत्थ-प्लक्षचूतविकङ्कताः।
चम्पाऽऽमलकसारश्च पलाशाश्चेति दारवः।।२१।।

स्रुक की लम्बाई ३६ अङ्गुल तथा स्रुव २४ अङ्गुल होनी चाहिए। स्रुक में २० अङ्गुल दण्ड का मान तथा मुख, कण्ठ एवं वेदी का मान क्रमशः सात, एक और आठ अङ्गुल होता है। वेदी के छः अङ्गुल में कण्ठ का विस्तार होता है। दण्ड के मूल

तथा अग्रभाग में तीन तथा चार अङ्गुल के क्रम से दो कुम्भ बनाने चाहिए। वेदी के मध्य भाग में एक अङ्गुल कर्णिका बनाकर उसके बाहर चारों ओर चार अङ्गुल मान का गर्त बनाये। चार अङ्गुल मान का खात तथा तीन अङ्गुल मान का वृत्त बनायें। मुख और वेदी के मध्य में दो अङ्गुल प्रमाण की मेखला का निर्माण चारों ओर करना चाहिए। स्रुक् के मुख में घी गिरने के लिए कनिष्ठाङ्गुली प्रमाण का छिद्र बनाना चाहिए।

स्रुव का मान (लम्बाई) चौबीस अङ्गुल होना चाहिए। इसमें दण्ड का मान बाईस अङ्गुल का होता है। इसके शिर का विस्तार चार अङ्गुल का तथा कर्ष प्रमाण (१६माशा) घृत ग्रहण योग्य होना चाहिए। इसमें दो अङ्गुल प्रमाण का खात बनाये जिसमें पङ्क में धंसे मृग के पैर की भांति आकृति होनी चाहिए। दण्ड के मूल तथा अग्रभाग में कङ्कण की भाँति दो गण्डी (कुम्भ) बनाना चाहिए।

स्रुक तथा स्रुव का निर्माण सोना, चाँदी, ताँबा अथवा लकड़ी (उपयुक्त वृक्ष की) द्वारा करना चाहिए। क्षुद्र कर्मों में लोहा, कुचला वृक्ष की लकड़ी, नागपुष्पी लता तथा इन्द्रायण की लता से भी इनका निर्माण किया जा सकता है। इसके निर्माण में काष्ठ का प्रयोग चन्दन, खैर, पीपल, पाकड़, आम, विकङ्कत, चम्पा, आँवला, साल तथा पलाश के वृक्षों का करना चाहिए।।२१।।

(उत्तर तन्त्र के अनुसार- शीशम, श्रीपर्णी, खैर, आम, सफेद तथा लाल चन्दन, पलाश, बरगद, विकङ्कत, शमी, बेल, गूलर, पीपल, देवदारू, नागकेशर, बबूल, अशोक, पुन्नाग, पाकड़ तथा चम्पक की लकड़ी द्वारा स्रुक् तथा स्रुव का निर्माण करना चाहिए। जिन वृक्षों के तनों से क्षीर निकलता है (जैसे कटहल आदि) उनके काष्ठ द्वारा भी इनका निर्माण किया जा सकता है।)

।। होममुद्राः।।

न देवाः प्रतिगृह्णन्ति मुद्राहीनां यथाहुतिम्।
मुद्रयैवेति होतव्यं मुद्राहीनं न भुज्यते।।
मुद्राहीनञ्च यो मोहाद्होममिच्छति मन्दधीः।
यजमानं स चात्मानं पातयेत् तेन निश्चितम्।।

बिना मुद्रा के दी गई योग्य आहुति को भी देवता स्वीकार नहीं करते। इसी भाँति बिना मुद्रा के दिये गये नैवेद्य का भोग भी देवता ग्रहण नहीं करते हैं। इसीलिए हवन के समय आहुति तथा भोग हेतु नैवेद्य, उचित मुद्रा के अनुसार ही देना चाहिए। जो मूर्ख व्यक्ति अज्ञानवश बिना मुद्रा के हवन करता है वह स्वयं के साथ ही अपने यजमान का भी पतन करता है।

तिस्रो मुद्राः स्मृता होमे मृगी हंसी च शूकरी।
शूकरी करसङ्कोची हंसी मुक्तकनिष्ठिका।।
मृगी कनिष्ठा तर्जन्योर्होममुद्रात्रयीरिता।
आभिचारिककार्य्येषु शूकरी परिकीर्त्तिता।।

नमः स्वाहा वषट् वौषट् हुं फड़न्ताश्च जातयः।
शान्तौ वश्ये तथा स्तम्भे विद्वेषोच्चाटमारणे॥२२॥

इति श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीशभट्टाचार्य्यकृतायां षट्कर्मदीपिकायां
कुण्डादिनियमो द्वितीयोद्देशः॥

हवन कर्म में तीन प्रकार की मृगी, हंसी तथा शूकरी मुद्रा कही गयी हैं। कर की संकुचित अवस्था (चारों अङ्गुलियाँ आपस में जुड़ी तथा अङ्गुष्ठ अङ्गुलियों के मूल स्थान पर स्थित) शूकरी मुद्रा होती है। कनिष्ठा मुक्तावस्था (तर्जनी, मध्यमा तथा अनामा परस्पर सटी हुई तथा अङ्गुष्ठ अङ्गुलिमूल पर एवं कनिष्ठा अलग स्थित) में होने पर हंसी मुद्रा होती है। मृगी मुद्रा की अवस्था में तर्जनी तथा कनिष्ठा दोनों मुक्त (अलग) तथा अनामा व मध्यमा परस्पर सटी हुई होती है।

अभिचार कर्मों के लिए शुकरी मुद्रा कही जाती है। शान्ति कर्म में मृगी तथा वशीकरण में हंसी मुद्रा का प्रयोग करना चाहिए।

नमः, स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुं तथा फट् ये छः जातियाँ क्रमशः शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण कर्मों में प्रयुक्त होती है।

॥ श्री कृष्णानन्द विद्यावागीश भट्टाचार्य कृत षट्कर्म दीपिका में कुण्डादि नियम नाम द्वितीयोद्देश की 'अंजलि' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥

अथ तृतीयोद्देशः

(शान्ति कर्म)

।। ऋषय ऊचुः - हरेर्नामत्रयस्य माहात्म्य जिज्ञासा।।

नामत्रयस्य माहात्म्यं श्रोतुकामा वयं प्रभो!।
भगवन्! श्रोतुमिच्छामि वक्तुमर्हस्यशेषतः।।१।।

।। ब्रह्मोवाच।।

अतिगुह्यतरं मन्त्रं वर्षकोटिशतैरपि।
न शक्यं विस्तरं वक्तुं संक्षेपाच्छृणुत द्विजाः!।।२।।

ऋषियों ने ब्रह्मा से कहा- हे प्रभो! हम सभी को परब्रह्मस्वरुप श्री हरि के प्रमुख तीनों नामों (अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द) के माहात्म्य को सुनने की अभिलाषा है। हे भगवन्! आप ही इसके समस्त प्रभाव को कहने में समर्थ हैं।

ब्रह्मा ने कहा - हे ब्राह्मणों! परमात्मा हरि के तीनों नामों से युक्त मन्त्र अत्यन्त गोपनीय है। सैकड़ों करोड़ वर्षों में भी इसके महत्व को विस्तार पूर्वक कहने में मैं अथवा कोई भी समर्थ नहीं है। अतः संक्षेप में ही कहता हूँ, सुनो!।।

।। अच्युतादि नाम मन्त्रस्य ऋषि-छन्दादि पूजनञ्च।।

अच्युतानन्तगोविन्दैश्चतुर्थ्यन्तैस्त्रिभिः पदैः।
नमोऽन्तैर्जपकाले तु मूलमन्त्र इतीरितः।।
अथवाऽपि समस्तैस्तु चतुर्थ्यन्तैकमन्त्रता।
तदृषिः शौनको ज्ञेयः पृथक् पक्षे पराशरः।।
व्यासश्च नारदश्चैव विराट्छन्द उदीरितः।
परं ब्रह्म तथा प्रोक्तं हरिर्वा देवतेत्यपि।।
जपकाले तु पूजायां नमः शब्दं प्रयोजयेत्।
तर्पणे तर्पयामीति द्वितीयान्तं प्रयोजयेत्।।
स्वाहान्तं होमकाले तु चतुर्थ्यन्तं तु योजयेत्।
षडङ्गमन्त्रैरेतैस्तु हृदयादिक्रमेण तु।।

परमात्मा श्री हरि के तीनों नामों अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द को पृथक-पृथक चतुर्थी विभक्ति में करके इसके साथ 'नमः' पद जोड़कर जप करना चाहिए। यह मूल मन्त्र कहा गया है। यथा-अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः।

अथवा तीनों नामों को एक पद करके चतुर्थ्यन्त कर इसके साथ 'नमः' पद जोड़कर, यथा - 'अच्युतानन्तगोविन्दाय नमः' रूप से जप करे।

संयुक्त पदात्मक मंत्र के ऋषि शौनक हैं। पृथक पदात्मक मन्त्र के ऋषि

क्रमशः पराशर, व्यास तथा नारद है। छन्द विराट् नामक है। देवता परब्रह्म अथवा हरि कहे गये हैं। जप तथा पूजन काल में चतुर्थ्यन्त नाम के साथ 'नमः', हवन करते समय 'स्वाहा' तथा तर्पण के समय द्वितीयान्त नाम के साथ 'तर्पयामि' पद का संयोजन करे।

नेत्रान्ताः स्वयमेवैते प्रयोज्या मन्त्रवित्तमैः।
अविदित्वा ऋषिं छन्दो देवताङ्गान्यपि द्विजः॥
केवलं स्वयमवैतज्जप्तारं रक्षति ध्रुवम्।
साङ्गञ्च योजयेन्नित्यं सप्त सप्त च सप्त च॥
सप्तवारं कृते जापे न सिद्ध्यति यदा पुनः।
सप्तवारं सप्तवारं तदा कुर्य्यात् प्रयोगकम्॥३॥

मन्त्रज्ञ साधक इन तीनों नामों की द्विआवृत्ति द्वारा हृदयादि क्रम से षडङ्ग न्यास करे अथवा संयुक्त नाम मंत्र के द्वारा प्रत्येक में संयोजन कर न्यास करे। यथा- अच्युताय नमः हृदयाय नमः, अनन्ताय नमः शिरसे स्वाहा, गोविन्दाय नमः शिखायै वषट् अच्युताय नमः कवचाय हुं, अनन्ताय नमः नेत्राभ्यां वौषट्, गोविन्दाय नमः अस्त्राय फट् अथवा 'अच्युतानन्तगोविन्दाय नमः' इस पूरे पद से सभी न्यास करे।

इस मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवतादि अङ्गों का ज्ञान न होने पर भी यदि केवल तीनों नामों का ही एक साथ जप किया जाय तो भी यह अपने जपकर्ता की निश्चित रुप से रक्षा करता है।

नित्य मंत्र की जप संख्या सात के गुणक (सत्तर, सात सौ, सात हजार आदि) के रूप में होनी चाहिए। नित्य ही सात के गुणक में हवन तथा तर्पण भी करना चाहिए। उचित यह है कि जितनी संख्या में (सप्त गुणक रुप से) जप हो उतना ही हवन तथा तर्पण भी नित्य कर लेना चाहिए। इस प्रकार सात दिनों तक जप करने से भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो अर्थात् इच्छित परिणाम प्राप्त न हो तो पुनः सात-सात दिनों तक यही क्रम करना चाहिए॥३॥

॥ हरेर्ध्यानं जपपूजनञ्च॥

अथ ध्यानं प्रवक्ष्याहिम सर्वपापप्रणाशनम्।
"शंङ्खचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥
सर्वायुधैरुपेतञ्च गरुड़ोपरि संस्थितम्।
शनकादिमुनीन्द्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम्॥
श्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसन्निभम्।
प्रातरुद्यत्सहस्रांशु मण्डलोपरिसंस्थितम्॥
सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव च।
अभयं वरदञ्चैव प्रयच्छन्तं मुदान्वितम्"॥

अब मैं समस्त पापों का विनाश करने वाले श्री हरि के ध्यान स्वरूप को कहता हूँ। भगवान श्री हरि प्रातः काल उदित सूर्य मण्डल के ऊपर अपनी शक्तियों श्री तथा पृथ्वी के साथ गरुड़ पर स्थित हैं। इनकी प्रभा भी उदयादित्य के समान ही

तेजोपूर्ण है। श्री हरि की चार भुजाएं हैं जिनमें वे शंख तथा चक्र (गदा-पदम् भी) धारण किये हुए हैं। सिर पर स्वर्ण मुकुट विराजमान है। शनकादि मुनि तथा सभी देवता उनकी उपासना (स्तुति) कर रहे हैं। समस्त लोकों की नित्य रक्षा के लिए भगवान अनन्त प्रसन्नता पूर्वक अभय तथा वर प्रदान कर रहे हैं।

एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं परं ब्रह्मस्वरूपिणम्।
प्रातर्मध्यन्दिने चैव सायाह्ने च विशेषतः।।
अर्चयेद्देवदेवेशं घृतपुष्पजलादिभिः।
हविषाग्नौ जलैः पुष्पैर्मनसा हृदये हरिम्।।
अर्चयन्तं च यो नित्यं जपेन रविमण्डले।
किञ्चिद्ध्यानार्चनं कृत्वा जपेन्नित्यमतन्द्रितः।।
अशुचिश्चात्मनो वापि मनसा पापमाचरेत्।
शुचिरेव जपेन्नित्यं नामत्रयजपाद्द्विजाः!।।

इस प्रकार परब्रह्मस्वरूप श्री हरि का प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल विशेष रूप से ध्यान कर घृत, पुष्प, जलादि के द्वारा उन देवेश्वर की अर्चना करनी चाहिए। श्री हरि की अर्चना अग्नि में हवन के द्वारा, जल तथा पुष्पों के द्वारा तथा हृदय में मानसिक उपचारों के द्वारा करनी चाहिए। नित्य रवि मण्डल में परमात्मा श्री हरि का ध्यान तथा मानसिक अथवा बाह्य पूजन कर एकाग्रचित्त होकर मन्त्र जप करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन तीनों नामों का जप करने वाला व्यक्ति अशुद्धचित्त वाला अथवा मानसपापकर्ता ही क्यों न हो, शीघ्र ही जप के प्रभाव से पवित्र हो जाता है।

।। प्रयोग विधिः।।

विनियोगान् प्रवक्ष्यामि यथावद्द्विजसत्तमाः!।
नास्मात् परतरा रक्षा रोगार्त्तानां विधीयते।।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा जपसंख्यया।
रविवारे तथाऽष्टम्यां रोगार्त्तान् मूर्ध्नि मार्जयेत्।
नित्यमेव पिवेत् तोयमष्टाविंशतिसंख्यया।
हुनेद् घृतैस्तिलैर्दूर्वा-गुडूचीभिः पृथक् पृथक्।।
लक्षञ्चैव जपेन्मन्त्रं महारोगप्रशान्तये।
श्रीवृक्षाश्वत्थमूले वा रोगिणं संस्पृशन् जपेत्।।
स्पृशन् जप्तवा निरीक्षेत चादित्यं मनसा स्मरन्।
एवं कृतवतः पुंसो रोगशान्तिर्भविष्यति।।

अब मैं इस मन्त्र के विधिवत प्रयोग को कहता (बतलाता) हूँ। रोग से पीड़ित मनुष्यों की रक्षा करने में इससे श्रेष्ठ अन्य कोई भी विधि (उपाय) नहीं है।

अष्टमी तिथि तथा रविवार को रोग से पीड़ित व्यक्ति के सिर पर एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार (रोग की तीव्रता तथा मन्दतानुसार) मन्त्र का जप करते हुए मार्जन करे। अट्ठाईस (२८) बार अभिमंत्रित किये हुए जल का प्रतिदिन रोगार्त व्यक्ति पान करे। घृत, तिल, दूर्वा तथा गिलोय के द्वारा अलग-अलग हवन करे। मन्त्र

का एक लाख जप करने से महारोगों की भी शान्ति हो जाती है।

मन्त्र का जप विल्व अथवा पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर अथवा रोगी का स्पर्श करते हुए करना चाहिए। स्पर्श करते हुए जप करते समय सम्भव हो तो सूर्य का दर्शन भी करता रहे अथवा मानसिक ध्यान करे। रोगी को स्पर्श करते हुए जपने का अर्थ है रोगी के निकट बैठ कर जप करना। इस प्रकार मन्त्र जप, हवन, मार्जनादि करने से अवश्य ही मनुष्य रोग मुक्त हो जायेगा।

कन्यां वा लाजाहोमेन स्त्रियं वा विल्वपत्रकैः।
पुत्रार्थी घृतहोमेन चारोग्यञ्च तिलैर्घृतैः॥
गुडूचीघृतदूर्वाभिस्तिलैर्विल्वैः कुशैः शरैः।
यथाकामी तु जुहुयात् तत्तत्कामस्य सिद्धये॥
ग्रहापस्मारकुष्माण्डाः पिशाचाः प्रेतसंस्थिताः।
लक्षे हुते च दूर्वाभिस्तेषां शान्तिर्भविष्यति॥
रविवारे जले स्थित्वा नाभिमात्रे जपेन्नरः।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु ज्वरशान्तिर्भविष्यति॥
स्पृष्ट्वाऽश्वत्थं जपेद्वर्षं रविमण्डलमध्यगम्।
ध्यायन् कृष्णं लभेत् काममनुरूपं कुटुम्बिनाम्॥

विवाह हेतु कन्या प्राप्ति के लिए लाजा से हवन करना चाहिए। स्त्रियों के वशीकरण के लिए विल्व पत्र से, पुत्र-प्राप्ति हेतु घृत से तथा आरोग्य के लिए घृतमिश्रित तिल से हवन करना चाहिए। अभीष्ट सिद्धि के लिए कामनानुसार गिलोय, घृत, दूर्वा, तिल, बेल, कुश तथा सरकण्डे द्वारा हवन करना चाहिए।

ग्रह दोष, मिरगी, मूर्च्छा रोग, कूष्माण्डा, पिशाच, प्रेतादि के अभिनिवेशादि के निवारण के लिए दूर्वा द्वारा एक लाख हवन करना चाहिए। इससे उपर्युक्त सभी दोषों की शान्ति होगी। रविवार को नाभिमात्र जल में खड़े होकर यदि कोई मनुष्य इस मन्त्र का एक हजार आठ जप करे तो ज्वर की शान्ति होती है।

पीपल वृक्ष को स्पर्श करते हुए (निकट बैठकर) रविमण्डल के मध्य श्री कृष्ण का ध्यान करते हुए एक वर्ष तक जप करने वाला साधक अपनी कामनानुसार कुटुम्ब (पारिवारिक सम्बन्ध) प्राप्त करता है।

अच्युतानन्तगोविन्द-नामोच्चारणभीषिताः।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते।
वेदशास्त्रात् परं नान्यत् न देवः केशवात् परः॥
ज्वरग्रहादिग्रस्तस्तु स्पृष्ट्वा लक्षं जपेज्जले।
असाध्योऽपि भवेत् सुस्थो भस्मना ताड़येद् बुधः॥
मूर्ध्नि चैव ललाटे च न्यसेन्मन्त्रत्रयं हृदि।

आरोग्यं सर्वजन्तूनां यथेच्छं गच्छति स्वयम्।।

'अच्युतानन्तगोविन्द' इन तीन नामों के उच्चारणसे उत्पन्न ध्वनि से भयभीत होकर सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ। सत्य की द्विरुक्ति कथन की दृढ़ता के लिए है। पुनः मैं दोनो भुजाकर उठाकर तीन बार सत्य का प्रयोग (सत्य, सत्य, परमसत्य) करते हुए कहता हूँ कि वेदशास्त्रों से परे भी अन्य कोई देवता श्री केशव (श्री हरि) से श्रेष्ठ (उच्चतर) नहीं है।

ज्वर-ग्रहादि से पीड़ित व्यक्ति का स्पर्श करते हुए, जल में खड़े होकर अथवा पीड़ित व्यक्ति का भस्म द्वारा ताड़न (पीड़ित पर भस्म फेंकना) करते हुए इस मन्त्र का एक लाख जप असाध्य रोग का भी निवारण कर उसे स्वस्थ करने में समर्थ है। इन तीन नाम मन्त्रों का क्रमशः मूर्धा, ललाट तथा हृदय में न्यास करने से समस्त प्राणी निरोग हो जाते हैं तथा इच्छानुसार जहाँ चाहते हैं वहाँ स्वयं चले जाते हैं। अथवा (यथेच्छं गच्छति स्वयं) यह भी अर्थ हो सकता है कि साधक स्वयं जैसी इच्छा करता है वैसा फल प्राप्त कर लेता है।

मोक्षकामो जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम्।
यावज्जीवं करे तस्य स्थिता मुक्तिर्न संशयः।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च विविधास्तथा।
सर्वे भवन्ति वै मुक्ता नामत्रयजपाद् द्विजाः!।।
दूर्वाभवाश्च समिधो गोदुग्धेन समन्विताः।
होतव्याः शान्तिके देवि! शान्तिर्येन भवेत् स्फुटम्।।४।।

मोक्ष की कामना से जो साधक जीवन भर प्रतिदिन इस मन्त्र का एक हजार आठ जप करता है, निश्चित रुप से मुक्ति उसके करतलगत होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य अनेक प्रकार की जाति (चाण्डाल, वर्ण संकरादि) वाले सभी मनुष्य भी इस त्रिनामात्मक मन्त्र के जप द्वारा मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ हैं।

शान्ति कर्म में गोदुग्ध के साथ दूर्वा की समिधा से हवन करने पर निश्चित रूप से समस्त अरिष्टों का शमन होता है।।४।।

।। आथर्वणोक्त ज्वरशान्तिः।।

अस्य मन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिरनुष्टुप् छन्दः कालिका देवता ज्वरस्य सद्यः शान्त्यर्थे विनियोगः। -

"ओं कुवेरन्ते मुखं रौद्रं नन्दिमानन्दिमावहन्।
ज्वरं मृत्युभयं घोरं ज्वरं नाशयते ध्रुवम्।।१।। *
सहस्रमयुतं वापि जपेत् शान्तिर्भवेद् ध्रुवम्।
आम्रपत्रस्य होमेन ज्वरशान्तिर्भवेन्नृणाम्।।२।।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य शान्ते युग्मं तथैव च।

---

* केचित्तु -"ॐ कुवेरन्तु मुखं रात्रं नन्दिकानन्दमावहन्।
ज्वरं मृत्युभयं घोरं ज्वरं नाशयते ज्वरम।।" इति पठन्ति।

सर्वारिष्टनाशिनी तु तदन्ते वह्निवल्लभा॥
"ओं शान्ते शान्ते सर्वारिष्टनाशिनि! स्वाहा"॥३॥
एकलक्षजपेनापि सर्वशान्तिर्भवेद् ध्रुवम्॥४॥

अयुतजपेन सिद्धिः। अस्य मन्त्रस्यायुतजपेन सिद्धिं कृत्वा प्रयोगः कार्य्यः।

मन्त्र स्वरूप - **ॐ कुबेरन्ते मुखं रौद्रं नन्दिमानन्दिमावहन्। ज्वरं मृत्युभयं घोरं ज्वरं नाशयते ध्रुवम्॥१॥**

विनियोग - **ॐ अस्य (ज्वरशान्तिकर कुबेर) मन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः कालिका देवता ज्वरस्य सद्यः शान्त्यर्थे (अथवा सद्यः ज्वरशान्तये) जपे विनियोगः।**

ऋष्यादिन्यास तथा मन्त्र के छः खण्ड करके षडङ्ग न्यास कर एक अथवा दस हजार मन्त्र जप तथा आम के पत्तों द्वारा हवन करने से अवश्य ही मनुष्यों के ज्वर की शान्ति होती है॥२॥

दूसरा मन्त्र - ॐ शान्ते शान्ते सर्वारिष्टनाशिनि स्वाहा॥३॥

इस मन्त्र का एक लाख जप करने से भी सभी प्रकार के ज्वर, रोगों तथा आपदाओं की शान्ति होती है॥४॥

मन्त्र का दस हजार जप करने से वह सिद्ध हो जाता है। अतः पहले दस हजार जप करके मन्त्र-सिद्ध करले फिर उसके द्वारा प्रयोग कर्म करे।

समाहितमना भूत्वा मनसा चार्थचिन्तनात्।
विज्ञेया मानसी भक्तिः शान्ति कर्मणि योजयेत॥५॥

एकाग्रचित्त होकर मन ही मन मन्त्रार्थ का चिन्तन तथा मन्त्र के देवता का मानसिक ध्यान करना 'मानसी भक्ति' कही जाती है। शान्ति कर्म करते समय इसे अवश्य करना चाहिए॥५॥

॥ तन्त्रोक्तज्वरशान्तिः प्रयोगः (तुम्बुर भैरव ध्यानम्)॥

कथयाम्यथ लोकानां हिताय सर्वशान्तिकम्।
विधानं यत्समादृष्टं तन्त्रराजे मयोत्तरे॥
शुद्धस्फटिक सङ्काशं देवदेवं त्रिलोचनम्।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं चन्द्रचूडं जटाधरम्॥
चतुर्भुजं वृषारूढं भैरवं तुम्बुरुं विभुम्।
शूलमालाधरं दक्षे वामे पुस्तं सुधाघटम्॥
सर्वावयवसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम्।
सितवस्त्रपरीधानं नागहारविराजितम्।
मानसे भावयेदेवं सर्वशान्तिकरं शिवम्॥६॥

तन्त्रराज मयोत्तर तन्त्र में कहे गये सर्वशांतिकारक विधान (प्रयोग) को अब मैं समस्त लोकों (मनुष्यों) के कल्याण के लिए कहता हूँ। सब प्रकार की शान्ति प्रदान करने वाले भगवान शिव (तुम्बुरु संज्ञक भैरव स्वरूप) का इस प्रकार मानस

ध्यान करें।

चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित देव-देव तुम्बुरु नामक भैरव (शिव) का स्वरुप शुद्ध स्वच्छ स्फटिक के समान है। सिर पर जटाएं है, मस्तक पर चन्द्रमा विराजमान है। त्रिनेत्रधारी हैं। वृष पर आरुढ़ (बैठे हुए) हैं। अपनी चार भुजाओं में से दो दक्ष भुजामें त्रिशूल तथा माला एवं वाम भुजाओं में पुस्तक तथा अमृत-कलश धारण किये हुए हैं। सफेद वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा गले में नागों का हार सुशोभित है। सर्वाङ्ग यथोचित आभूषणों द्वारा सज्जित है।।६।।

।। तुम्बुरूभैरवमन्त्रप्रयोगश्च।।

अस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि देवानामपि दुर्लभम्।
येन विज्ञानमात्रेण जायन्ते सर्वसिद्धयः।।
आदौ तारं समुद्धृत्य ततः तुम्बुरुभैरव-
पदं दत्त्वा शिवं वीजम् अमुकस्य पदं वदेत्।।
सर्वशान्तिपदं दत्त्वा पदं देयं कुरुद्वयम्।
ईशानं वह्निमारूढं द्वितीयस्वरभूषितम्।।
नादबिन्दुसमायुक्तं वह्निमायामनन्तरम्।
अनेन बलिमादद्यादन्नादिकसमन्वितम्।।

अत्र मन्त्र : - **''ओं तुम्बुरुभैरव! हौं अमुकस्य सर्वशान्तिं कुरु कुरु ह्रां रं ह्रीं।''**

मन्त्रोद्धार मूल में ही स्पष्ट है। यह मन्त्र देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। विज्ञान (प्रयोग विधि आदि के ज्ञान) मात्र से ही समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। तात्पर्य यह है कि सिद्धियों की प्राप्ति सुगम हो जाती है। इसी मंत्र के द्वारा अन्नादि युक्त बलि भी प्रदान करना चाहिए।।७।।

पूजयेत् श्वेतदूर्वाभिर्नानापुष्पैर्विशेषतः।
धूपदीपादिसंयुक्तैः सहस्रं प्रजपेन्मनुम्।।
यस्य नाम्ना भवेत् तस्य सर्वशान्तिरनुत्तमा।
साध्यमौलौ सुधाधारं तस्य मूर्ध्नि प्रवर्षिणम्।।
अहर्निशं स्मरेदेवं शान्तिपुष्टिकरं शिवम्।
होमं वा कारयेदेभिर्दूर्वापुष्पाक्षतादिभिः।।
तिलजीरसमायुक्तैर्द्रव्यैश्च घृतसंयुतैः।
त्रिकोणके ततः कुण्डे वह्निं प्रज्वाल्य होमयेत्।
दशाङ्गकस्य होमेन ततः शान्तिर्भवेदिति।।८।।

श्वेत दूर्वा, अनेकों प्रकार के पुष्पों तथा धूप-दीपादि सहित तुम्बुरु भैरव नाम वाले देवता का पूजन करके एक हजार मन्त्र का जप करे। मन्त्र-जप जिस व्यक्ति के लिए किया जा रहा है, उसके सिर पर अमृत-धार वृष्टि करते हुए शान्ति तथा पुष्टि करने वाले शिव का रात-दिन ध्यान जपकर्ता को करना चाहिए। यह प्रयोग जिसके

नाम से किया जा रहा है उसके लिए सर्वश्रेष्ठ शान्तिप्रद होता है। जप की संख्या का दशांश हवन, त्रिकोण कुण्ड में विधिवत् अग्नि प्रज्ज्वलित कर दूर्वा, पुष्प, अक्षत, तिल, गुग्गुल तथा घृत सभी को मिश्रित करके करना चाहिए। इस प्रकार प्रयोग के पूर्ण होने पर व्यक्ति को निश्चित ही समस्त रोगों अथवा दोषों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।।८।।

।। सञ्जीवनी विद्या।।

अथवापि महादेव्याः सञ्जीवन्याः क्रमादिह।
जपेन कारयेच्छान्तिं सर्वोपद्रवनाशिनीम्।।
ओं नमो भगवति मृतसञ्जीवनि! अमुकस्य शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।।९।।
अनने मनुना मन्त्री भावयित्वा सुचेतसा।
गोक्षीरशशिमिश्राभामर्द्धेन्दुकृतशेखराम्।।
त्रिमुखीं षड्भुजां त्र्यक्षीं नृत्यन्तीं यमपृष्ठगाम्।
जटाजूटसमायुक्तां रक्तवस्त्रपरिच्छदाम्।।
खड्गं त्रिशूलं कर्त्रीञ्च दक्षिणे दिशि वामके।
खेटकं डम चक्रं धारयन्तीं शवासनाम्।।
प्रत्यालीढपदाम्भोजां मुण्डमालावलम्बिनीम्।
काञ्चीमञ्जीरहाराद्यैर्भूषणैः परिभूषिताम्।
अस्याश्च ध्यानमात्रेण तन्नास्ति यन्न साधयेत्।।१०।।

महादेवी के सर्वोपद्रव नाशिनी सञ्जीवनी विद्या का भी विधिवत् ध्यानपूजन सहित जप करने से विभिन्न रोगों तथा आपदाओं से मुक्ति मिलती है। मन्त्र निम्नवत है -

"ॐ नमो भगवति मृत सञ्जीवनि! अमुकस्य शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा"

साधक स्वयं के लिए जप करे तो 'अमुकस्य' के स्थान पर 'मम' का प्रयोग करे।

उपर्युक्त मन्त्र का जप करते समय साधक प्रसन्नचित्त होकर देवता का इस प्रकार से ध्यान करे- भगवती महादेवी मृत सञ्जीवनी का शरीर वर्ण गाय के दूध तथा चन्द्रप्रभा के मिश्रित आभा के समान है। सिर पर अर्द्धचन्द्र सुशोभित है। देवी के तीन मुख तथा छः भुजाएं हैं। प्रत्येक मुख पर तीन-तीन नेत्र हैं तथा वे दक्षिण दिशा की ओर पीठ करके (अथवा शव पर) नृत्य कर रही हैं। सिर पर बड़ी-बड़ी जटाओं का जाल है तथा वे लाल वस्त्र धारण किये हुए हैं। देवी के दक्षिणस्थ तीन हाथों में तलवार, त्रिशूल तथा कर्त्री (कैंची) एवं वामस्थ हाथों में खेटक, डमरु तथा चक्र धारित है। उनका एक चरण कमल शव पर तथा दूसरा आगे को बढ़ा हुआ स्थित है। देवी के गले में लम्बी नरमुण्डों की माला, कमर में करधनी एवं पैरों में नूपुर है। हारादि अनेक आभूषणों से वे विभूषित हैं। ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो देवी के इस ध्यान मात्र से ही सिद्ध न हो सके।।१०।।

मृत्तिकाशिवलिङ्ग पूजाविधिः

।। कालोत्तरे नारदवाक्यम्।।

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां सङ्गो गङ्गाम्भः शम्भुसेवनम्॥११॥

पार्थिव (मिट्टी से निर्मित) शिवलिङ्ग–पूजन–प्रसङ्ग के अन्तर्गत कालोत्तर तन्त्र में नारद का यह वचन है – इस सारहीन क्षणभंगुर नित्य परिर्वतनशील मिथ्या भूत संसार में यदि कुछ सार तत्व (मनुष्य के लिए प्रयोजनीय) है तो वह केवल चार कर्म हैं। पहला नित्य काशी में निवास करना, दूसरा सन्त पुरुषों का सङ्ग करना, तीसरा गंगा जल का स्नान–पान करना और चौथा नित्य भगवान शिव का ध्यान–पूजन, दर्शनादि करना॥११॥

॥ स्कन्दपुराणे लिङ्गार्चन–माहात्म्यम्॥

अग्निहोत्रं त्रिवेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
शिवलिङ्गार्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः॥
छित्त्वा भित्त्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत्।
यजेद्देवं विरूपाक्षं न स पापेन लिप्यते॥
अनेकजन्मसाहस्रं भ्राम्यमाणस्तु योनिषु।
कः समाप्नोति वै मुक्तिं लिङ्गार्चनमृते नरः॥
प्रातरुत्थाय यो लिङ्गं भक्त्या सम्पूजयेत् सकृत्।
कपिलाऽसंख्यदानस्य यत्फलं तदवाप्नुयात्॥

नित्य अग्निहोत्र (हवन) करना, तीनों वेदों का स्वाध्याय करना, अत्यधिक दक्षिणावाले अनेकों यज्ञों को करना, इन सभी कर्मों से उत्पन्न होने वाला पृथक–पृथक अथवा सम्मिलित पुण्य भी नित्य शिवलिङ्गार्चन के द्वारा उत्पन्न पुण्य के करोड़वें अंश के बराबर नहीं है।

इस सम्पूर्ण विश्व को छिन्न–भिन्न (तहस–नहस) कर समस्त प्राणियों की हत्या करने वाला भी यदि विरुपाक्ष भगवान शिव का यजन (पूजार्चन–भक्ति) करता है तो वह भी पापों से लिप्त नहीं होता अर्थात् सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

अनेकों (हजारों) जन्म ग्रहण कर तथा हजारों योनियों में भ्रमण कर कौन है जो बिना शिवलिङ्गार्चन के मुक्ति प्राप्त करने में सफल हो सकता है, अर्थात् बिना शिवलिङ्ग की पूजा अर्चना व भक्ति किये मुक्ति प्राप्त करना असम्भव है।

प्रातः काल उठकर जो व्यक्ति एक बार भी श्रद्धा–भक्ति सहित शिवलिङ्ग का विधिवत् पूजन करता है उसे, असंख्य कपिला गायों के दान का जो फल (पुण्य) होता है, उसकी प्राप्ति होती है।

मध्यं दिनकरे प्राप्ते यो लिङ्ग परिपूजयेत्।
सम्पूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं तदवाप्नुयात्॥
वारुणीमाश्रिते सूर्य्ये शिवं सम्यक् समर्चयेत्।
गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात्॥१२॥
आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।
प्रलये सर्वदेवानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते॥१३॥

सम्पूर्ण पृथिवी दान का जो फल होता है, उसे मध्याह्न काल में विधिवत् श्रद्धा-भक्ति पूर्वक शिवलिङ्ग का पूजन करने वाला मनुष्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार सूर्य के पश्चिम में अस्त होने के बाद प्रदोष काल (सायंकाल) में लिङ्ग पूजन करने वाला एक लाख गायों के दान का पुण्य प्राप्त करता है।।१२।।

आकाश को लिङ्ग कहा जाता है। पृथिवी उसकी पीठिका (आधार) कही जाती है। इसी आकाश (स्वरूप ब्रह्म) में, प्रलय होने पर समस्त देवताओं सहित सम्पूर्ण सृष्टि का लय हो जाता है, इसलिए इसे लिङ्ग कहा जाता है।।१३।।

।। लिङ्गप्रमाणम्।।

यथा शिवतन्त्रे - **मृत्तिकातोलकं ग्राह्यमथवा तोलकद्वयम्।**
त्रिसूत्रस्य प्रमाणेन गठनं कारयेद् बुधः।
स्वाङ्गुष्ठपर्वमानन्तु कृत्वा लिङ्गं प्रपूजयेत्।।
मृदादिलिङ्गगठने प्रमाणं परिकीर्त्तितम्।
फलं मुक्तिमवाप्नोति चान्यथा चेत् तथाऽन्यथा।।१४।।

शिव तन्त्र में कहा गया है कि लिङ्ग के निर्माण के लिए एक तोला अथवा दो तोला मृत्तिका (मिट्टी) ग्रहण करनी चाहिए। बुद्धिमान साधक को त्रिसूत्र-प्रमाणानुसार लिङ्ग का गठन (निर्माण) करना चाहिए। अपने अंगूठे के पर्व के बराबर (मान वाले) शिव लिङ्ग की रचना कर उसका पूजन करे। मृत्तिका द्वारा लिङ्ग निर्माण के लिए यही प्रमाण कहा गया है। इसी विधि से लिङ्ग का निर्माण तथा पूजन करने से साधक मुक्ति रूपी फल को प्राप्त करता है, अन्यथा नहीं।।१४।।

।। कालोत्तरे लिङ्ग-प्रमाणम्।।

लिङ्गे वेद्यां तथा पीठे सूत्रत्रयनिपातनात्।
समानञ्चेद्विजानीयात्त्रिसूत्रीकरणन्त्विदम्।
मारकतस्फाटिकादि पञ्चसूत्रीप्रमाणकम्।।१५।।

कालोत्तर तन्त्रानुसार लिङ्ग, वेदी तथा पीठ पर तीन सूत्रपात करे। फिर इन तीनों सूत्रों का परिमाण देखें। यदि तीनों सूत्रों का परिमाण सम है तो इसे ही त्रिसूत्री करण जानना चाहिए। पन्ना, स्फटिकादि द्वारा निर्मित शिव लिङ्ग पञ्चसूत्री प्रमाण वाला होता है।।१५।।

।। लिङ्गपुराणे प्रमाणम्।।

शिवलिङ्गस्य यन्मानं तन्मानं दक्षसव्ययोः।
योन्यग्रमपि यन्मानं तदधोऽपि तथा भवेत्।।१६।।

लिङ्ग पुराण में वर्णित है कि शिवलिङ्ग का जितना परिमाण (मान) है, उतना ही परिमाण उसके बायें तथा दायें भाग का भी होना चाहिए। इसी प्रकार योनि का जितना परिमाण है उतना ही उसके नीचे के भाग का भी होना चाहिए।।१६।।

।। प्रमाणमन्यत तन्त्रान्तरे।।

लिङ्गस्य यादृग्विस्तारः परिणामोऽपि तादृशः।
लिङ्गस्य द्विगुणा वेदी योनिस्यादर्धसम्मिता।।

सर्वतोऽङ्गुष्ठतो ह्रस्वं न कदाचिदपि क्वचित्।
रत्नादिषु च निर्माणे मानमिच्छावशाद्भवेत्।।१७।।

अन्य तन्त्रानुसार लिङ्ग के परिमाण के अनुरूप ही उसका विस्तार होता है। लिङ्ग के परिमाण का दुगना वेदी का परिमाण होता है तथा वेदी के परिमाण का आधा योनि का परिमाण होना चाहिए। किसी का भी मान (परिमाण) अङ्गुष्ठ परिमाण से कम कभी भी नहीं होना चाहिए। रत्नादि द्वारा लिङ्ग निर्माण के समय लिङ्ग तथा वेदी आदि का परिमाण इच्छानुसार करे।।१७।।

।। प्रमाणान्तरं शिवधर्मे।।

ब्रह्मा पूजयते नित्यं शुभं लिङ्गं शिलामयम्।
तस्य सम्पूजनात्तेन प्राप्तं ब्रह्मत्वमुत्तमम्।।
इन्द्रनीलमयं लिङ्गं विष्णुरर्चयते सदा।
विष्णुत्वं प्राप्तवांस्तेन सोऽभूद् भूतैकशासनः।।
स्फाटिकं निर्मलं लिङ्गं वरुणोऽर्चयते सदा।
तेन तद्वरुणत्वं हि प्राप्तमूर्जबलान्वितम्।।१८।।

शिवधर्म में कहा गया है कि ब्रह्मा प्रतिदिन सुन्दर मङ्गलमय शिला (प्रस्तर) निर्मित शिव लिङ्ग का पूजन करते हैं, जिसके पुण्य स्वरूप उन्हें श्रेष्ठ ब्रह्मत्व पद की प्राप्त हुई। श्री विष्णु सर्वदा इन्द्रनील मणि (पन्ना) द्वारा निर्मित शिव-लिङ्ग का पूजन करते हैं जिसके फलस्वरूप उन्हें विष्णु पद की प्राप्ति हुई और वह समस्त भूतों (जड़ चेतनात्मक सम्पूर्ण सृष्टि) के एकमात्र शासक-पालनकर्ता हुए। स्फटिक निर्मित शिव लिङ्ग का वरुण देवता सदा -सर्वदा पूजन करते हैं। इस पूजन के पुण्य-स्वरूप अपूर्व तेज तथा बल से सम्पन्न होकर उन्होंने वरुण पद (जल-देवत्व पद) प्राप्त किया।।१८।।

।। तथाह लिङ्गपुराणे।।

मणिमुक्ताप्रबालैश्च रत्नैरप्यर्चनं मतम्।
न गृह्णामि विना देवि! विल्वत्रैर्वरानने!।।१९।।

लिङ्ग पुराण में स्वयं भगवान शिव का वचन है कि हे देवि! कोई भी मनुष्य भले ही मणियों, मोतियों, मूँगों तथा विभिन्न प्रकार के रत्नों के अर्पण द्वारा मेरा अर्चन करे परन्तु जब तक मेरी अर्चना में बेल-पत्रों का अर्पण (विल्व पत्रों द्वारा मेरा पूजन) नहीं होता, मैं उस पूजा को स्वीकार नहीं करता अर्थात् मनुष्य को उसकी पूजा का यथोचित फल प्राप्त नहीं होता।।१९।।

।। मन्त्रतन्त्रप्रकाशे।।

लिङ्गद्वयं तथा नार्च्यं गणेशद्वयमेव च।
शक्तिद्वयं तथा सूर्य्यद्वयमेकत्र नार्चयेत्।।
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु शालग्रामशिलाद्वयम्।
एतेषामर्चनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही।।२०।।

'मन्त्र तन्त्र प्रकाश' में कहा गया है कि गृहस्थ पुरुष को अपने घर में एक साथ दो शिवलिङ्ग का पूजन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार दो गणेश मूर्ति, दो शक्ति मूर्ति, दो सूर्य विग्रह, दो द्वारका चक्र अथवा दो शालग्राम का भी एक साथ पूजन नहीं करना चाहिए। मनुष्य इन देवताओं में से चाहे किसी एक क़ा पूजन करे अथवा सबका सम्मिलित पूजन करे, इनके स्वरूपों की संख्या एक-एक ही रखनी चाहिए। इन सभी देवताओं के दो-दो स्वरूपों की एक साथ अर्चना करने से नित्य ही मनुष्य को उद्वेग (मानसिक उत्तेजना, क्षोभ, चिन्ता, शोकादि) की प्राप्ति होती है।।२०।।

।। शिवपूजाविधानम्।।

मृदाहरणसंघट्ट - प्रतिष्ठाह्वानमेव च।
स्नपनं पूजनञ्चैव विसर्जनमिति क्रमात्।।
हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्।
शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इतिक्रमात्।।२१।।

शिव लिङ्ग पूजन हेतु लिङ्ग निर्माण के लिए "ॐ नमो हराय" मन्त्र से मिट्टी का आहरण (ग्रहण) करना चाहिए। "ॐ नमो महेश्वराय" मन्त्र से लिङ्ग का गठन (निर्माण), "ॐ शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भव" इस मन्त्र द्वारा लिङ्ग को वेदी (पीठ) पर स्थापित कर प्राण प्रतिष्ठा तथा "ॐ पिनाक धृक् इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहण" इस मन्त्र द्वारा आवाहन करे। "ॐ नमो पशुपतये" इस मन्त्र द्वारा स्नान, "ॐ नमः शिवाय" इस मन्त्र से पूजन तथा "ॐ नमो महादेवाय (या ॐ महादेव!) क्षमस्व" इस मन्त्र से विसर्जन करना चाहिए।।२१।।

।। अग्निपुराणे।।

बिना भस्मत्रिपुण्ड्रेण बिना रुद्राक्षमालया।
बिना मालूरपत्रेण शिवपूजा वृथा भवेत्।
पूजितोऽपि महारुद्रो न स्यात्तस्य फलप्रदः।।२२।।

अग्नि पुराण में कहा गया है कि बिना भस्म लगाये अथवा भस्म से त्रिपुण्ड्र (मस्तक पर तिलक रूप से) लगाये, बिना रुद्राक्ष माला धारण किये तथा पूजन में बिना बिल्व-पत्र अर्पण किये, विधिवत की गई पूजा भी भगवान शिव को स्वीकार नहीं होती। इस प्रकार का पूजन एक प्रकार से व्यर्थ ही होता है तथा यह फलदायी भी नहीं होता है। यह कथन सकाम उपासक के सम्बन्ध में है, अन्यथा निष्काम भक्त द्वारा श्रद्धा भक्ति सहित अर्पित चुल्लू भर जल भी आशुतोष शिव की प्रसन्नता के लिए पर्याप्त है।।२२।।

।। शैवागमे।।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा कृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्।
शिवपूजाविधौ मन्त्री त्रिपुण्ड्रमपि धारयेत्।।
अग्निहोत्रभवं भस्म शैवमन्त्रभवन्तु वा।

शूद्रस्तु तेन मन्त्रेण भस्मान्यपि च धारयेत्।।
न प्राचीमग्रतः शम्भोर्नोदीचीं शक्तिसंयुताम्।
न प्रतीचीं यतः पश्चादतो दक्षं समाश्रयेत्।।
सर्वो भवश्च रुद्रश्च तथैवोग्रः स्मृतः पुनः।
भीमः पशुपतिश्चैव यजमानस्तथैव च।।
ईशानसूर्य्य इति च महादेवस्तु सोमकः।
मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः शिवसन्निधिकारिकाः।।२३।।

शैवागम में लिखा है कि ऊर्ध्वपुण्ड्र अथवा त्रिपुण्ड्र कोई भी धारण करके ही सन्ध्या करनी चाहिए। परन्तु शिव पूजन के समय साधक को त्रिपुण्ड्र ही धारण करना चाहिए। अग्निहोत्र के यज्ञीय भस्म अथवा शिव मन्त्रों से सम्पादित हवन से प्राप्त अथवा शिव मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित भस्म द्वारा ही त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए। शूद्र भी उसी मन्त्र द्वारा भस्म को धारण करे जिस मन्त्र द्वारा अन्य वर्गों के लोग धारण करते हैं। शिव की पूर्व दिशा में अग्र भाग (सम्मुख) होने के कारण, उत्तर दिशा में शक्ति स्थान होने के कारण तथा पश्चिम की ओर पृष्ठ भाग होने के कारण साधक को इन दिशाओं में नहीं बैठना चाहिए। अतः साधक शिव की दक्षिण दिशा में बैठकर पूजन करे। साधक को शिव की अष्ट मूर्तियों का पहले पूजन करना चाहिए। ये मूर्तियाँ हैं- शर्व (क्षिति-पृथिवी मूर्ति), भव (जल मूर्ति), रुद्र (तेज-अग्नि मूर्ति), उग्र (वायु मूर्ति), भीम (आकाश मूर्ति), पशुपति (यजमान मूर्ति), महादेव (सोम मूर्ति) तथा ईशान (सूर्य मूर्ति)। इन मूर्तियों का पूजन शिव लिङ्ग के पास ही करना चाहिए। इनके पूजन से साधक को शिव सानिध्य की प्राप्ति होती है।।२३।।

।। लिङ्ग पुराणे।।

मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः।
आग्नेय्यन्ताः प्रपूज्याश्च वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत्।।२४।।

लिङ्ग पुराणानुसार इन अष्ट मूर्तियों का पूजन पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर वामावर्त क्रम से आग्नेय पर्यन्त वेदी पर करके लिङ्ग में शिव का पूजन करना चाहिए।।२४।।

।। लिङ्गमुद्रा।।

दक्षाङ्गुष्ठं समुद्गम्य वामाङ्गुष्ठेन वेष्टयेत्।
अङ्गुलीभिर्निपीड्यैव शिवस्याग्रे प्रचालयेत्।
लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी।।२५।।

दाहिने हाथ के अंगूठे को खड़ा कर उसे बायें हाथ के अंगूठे से वेष्टित (घेर) करके शेष अंगुलियों द्वारा पीड़ित करे (आबद्ध कर ले)। इसे लिङ्गमुद्रा कहते हैं। पूजा के समय शिव के सम्मुख इस मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए। यह मुद्रा शिव का सानिध्य प्रदान करने वाली है।।२५।।

।। मुखवाद्यफलम्।।

भूमिदानेन यत् पुण्यं कन्यादानेन यत् फलम्।
मुखवाद्येन तत् पुण्यमुभयं लभते नरः॥
तदेव पुण्यं गीतस्य नृत्यस्य च विशेषतः॥२६॥
सहस्रमर्चयेल्लिङ्गं निरयं स न पश्यति।
शिवदेहमवाप्नोति भुक्त्वा भोगाननुत्तमान्॥
लक्षं सम्पूजयेद् यस्तु शिवत्वं लभते ध्रुवम्।
आयुरारोग्यसम्पत्तियुक्तान् पुत्रानवाप्नुयात्॥
अयत्नेन लभेत् पुत्रान् सर्वोत्कृष्टगुणान्वितान्।
लक्षैर्दशभिरिन्द्रत्वं ब्रह्मत्वं विंशति स्मृतम्।
रुद्रत्वन्तु चतुर्भिस्तु कोट्या व शिवतां व्रजेत्॥२७॥

लिङ्ग पुराण में ही वर्णित है कि भूमिदान करने से जो फल प्राप्त होता है तथा कन्यादान का जो फल है, साधक उन दोनों प्रकार के फलों को शिव के समीप मात्र एक बार मुख वाद्य करके प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार शिव के समीप (मन्दिर में) शिव स्तुतियों का गान तथा नृत्य करने से भी विशेष रूप से उक्त फलों की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति (नित्य) एक हजार शिव लिङ्गों की अर्चना करता है, वह इसके पुण्य स्वरूप कभी नरक का दर्शन (नरक की प्राप्ति) नहीं करता। इसी प्रकार जो साधक अपने जीवन में एक लाख शिव लिङ्गों की अर्चना करता है, वह इस लोक में बिना किसी विशेष प्रयत्न के दीर्घायु, आरोग्य तथा सम्पत्तिशाली एवं सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त पुत्रों को प्राप्त करता है तथा इस लोक में सर्वोत्तम भोगों को भोगकर मृत्योपरान्त शिव स्वरूप होकर शिव लोक में निवास करता है।

इसी प्रकार दश लाख शिवलिङ्गों के विधिवत अर्चन से इन्द्रत्व (इन्द्र पद) बीस लाख लिङ्गों के पूजन से ब्रह्म-पद तथा चार करोड़ शिव लिङ्गों के अर्चन से साधक रुद्रत्व (रुद्र-पद) प्राप्त कर साक्षात् शिव के समान हो जाताा है॥२६,२७॥

॥ लिङ्गस्तवः (भविष्यपुराणोक्त)॥

सर्वज्ञानप्रविज्ञानप्रदायैकमहात्मने।
नमस्ते सर्वदेवेश! सर्वभूतहिते रत!॥
अनन्तभोगसम्पन्न! अनन्तासनसंस्थित!।
अनन्तकान्तिसम्भोग! परमेश! नमोऽस्तु ते॥
अनन्तकान्तिसम्पन्न! अनन्तासनसंस्थित!
परापरपरातीत! उत्पत्तिस्थितिकारक!॥
सर्वार्थसाधनोपाय! विश्वेश्वर! नमोऽस्तु ते।
सर्वार्थनिर्मलाभोग! सर्वव्याधिविनाशन!॥
योगियोगिमहायोगि-योगीश्वर! नमोऽस्तु ते।

कृत्वा लिङ्गप्रतिष्ठाञ्च ध्यात्वा देवं सदाशिवम्।।
पूजयित्वा विधानेन स्तवमेतदुदीरयेत्।
लिङ्गस्तवं महापुण्यं यः शृणोति सदा नरः।।
नोत्पद्यते च संसारे स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम्।
पापकञ्चुकनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम्।।२८।।

हे प्रभो! समस्त प्रकार के सांसारिक तथा पारमार्थिक ज्ञान एवं भेदों-प्रभेदों तथा विशिष्टताओं सहित समस्त विज्ञानों के एक मात्र दाता (संसार में उन्हें प्रकट करने वाले) आप ही हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मस्वरूप (महात्मा) होने के कारण आप सदा उन प्राणियों के कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। हे शिव! आप ही समस्त देवताओ (शरीरस्थ अधि देवताओं) के ईश्वर (अधिनायक अहंकार स्वरुप) हैं, आपको मेरा प्रणाम है।

संसार के अनन्त प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार भोगों को उपलब्ध कराने वाले तथा उन प्राणियों के रूप में स्वयं ही भोग करने वाले होने के कारण आप ''अनन्त भोग सम्पन्न'' हैं अथवा अनन्त (शेष नाग) को शरीर पर धारण करने के कारण अथवा अनन्त (विष्णु) को हृदय में धारण करने के कारण अथवा शेष शायी भगवान नारायण स्वरूप होने के कारण हे शिव! आप अनन्त भोग सम्पन्न हैं।

हे शिव! आपके शरीर को आसन बनाकर शेष (अनंत) तथा हृदय को आसन बनाकर विष्णु (अनन्त) स्थित हैं, अतः आप 'अनन्तासनसंस्थित' हैं। अनन्त प्राणियों के शरीर रूपी आसन में आत्म (जीव) रूप से अथवा चित्त में 'अहं' रूप से स्थित होने के कारण भी आप 'अनन्तासनसंस्थित' हैं अथवा अनन्त सृष्टि में व्यापक भाव से स्थित होने के कारण अथवा अनन्त (आकाश) बीज 'ह' स्वरूप होने के कारण आप 'अनन्तासनसंस्थित' हैं।

सृष्टि का समस्त सौन्दर्य आप से ही उद्भूत है, क्योंकि आप 'सत्यं' तथा 'शिवं' के साथ 'सुन्दरं' भी हैं। समस्त जड़ चेतन पदार्थों में जो तेज-ऊर्जा-बल-विशिष्ट गुण है, सभी आप से ही उत्पन्न हैं। अनन्त आकाश में स्थित सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र सभी स्वयं प्रकाश स्वरुप आपके ही प्रकाश से प्रकाशित हैं। अतः आप 'अनन्त कान्ति सम्भोग' तथा 'अनन्त कान्ति सम्पन्न' है। ऐसे 'अनन्त भोग सम्पन्न', 'अनन्तासन संस्थित', 'अनन्त कान्ति सम्भोग' तथा 'अनन्तकान्ति सम्पन्न' स्वरूप (अभिधा) वाले, समस्त ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-इन्द्रादि ईश्वर नाम से अभिहित ईश्वरों के भी ईश्वर हे शिव! आपको प्रणाम है।

हे शिव! आप पर-अपर (पर ब्रह्म-अपर ब्रह्म, ब्रह्म-जीव स्वरूप, पराप्रकृति-सृष्टि उपादान कारण रूप जड़ अपरा प्रकृति , क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, क्षर-अक्षर आदि आदि) स्वरूप हैं तथा इन सबसे परे भी निर्गुण, निराकार, निर्धर्मक, अरूप, अनाम,

अनीह 'ब्रह्म' वाचक मन-बुद्ध्यादि से अगोचर जो सृष्टि का मूल तत्व है, वह भी आप ही हैं। संसार की उत्पत्ति, स्थिति (पालन तथा संहार) के एक मात्र कर्ता होने के कारण आप विश्वेश्वर हैं। सम्पूर्ण कामनाओं अथवा पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) की सिद्धि हेतु एकमात्र साधन तथा उपाय स्वरूप आप ही हैं। हे प्रभो! आपको मेरा नमस्कार है।

हे शिव! त्रिगुणमयी (सत्, रज तथा तम युक्त) सृष्टि के समस्त पदार्थ रूप होते हुए भी आप इन दोषों से परे शुद्ध स्वरूप हैं। सम्पूर्ण भोगों के एकमात्र भोक्ता होते हुए भी निर्दोष एवं अभोगी हैं अथवा मोक्ष-साधन में सहायक समस्त शुद्ध एवं सात्त्विक पदार्थ तथा भोग (साधक के जीवन निर्वाह के लिए अनिवार्य) स्वरूप हैं। जन्म-मृत्यु (आवागमन-संसार चक्र) रूप भव रोग सहित सभी शारीरिक तथा मानसिक रोगों का विनाश करने वाले आप ही संसार में एक मात्र वैद्य है। हे प्रभो! आप ही समस्त योगियों में विशिष्ट योगी, महायोगी तथा योगीश्वर भी हैं। आपको मेरा प्रणाम है।

लिङ्ग की प्रतिष्ठा करके, हृदय में भगवान सदाशिव का ध्यान कर श्रद्धा-भक्ति सहित विधिवत लिङ्गार्चन करके साधक को इस स्तोत्र द्वारा शिव का स्तवन करना चाहिए। यह 'लिङ्ग-स्तव' महान पुण्य दायक एवं पवित्र करने वाला है। जो व्यक्ति प्रतिदिन इसका श्रवण (स्वर सहित पाठ) करता है उसे संसार में पुन: जन्म नहीं लेना पड़ता। जैसे सर्प सरलता पूर्वक अपने केंचुल का परित्याग कर देता है, उसी प्रकार इस 'लिङ्ग-स्तव' का श्रवण (पाठ) करने वाला व्यक्ति भी अन्य समस्त साधनों से निरपेक्ष रहते हुए बिना किसी विशेष प्रयत्न के सम्पूर्ण पापों (सञ्चित, प्रारब्ध तथा क्रियमाण कर्म बन्धनों) से मुक्त होकर मृत्यूपरान्त शाश्वत परम पद (मोक्ष)) को प्राप्त करता है।।२८।।

।। शैव वर्जनीयानि-यथा शिव-धमोत्तरे।।

हिंसां परकलत्रञ्च निष्ठुरामनृतां गिरम्।
स्तेयं केशवनिन्दाञ्च शिवभक्तो विवर्जयेत्।।

शिव भक्तों के लिए इन कथित आचरणों का सर्वथा त्याग कर देना अति आवश्यक है। मन, वाणी तथा शरीर द्वारा किसी भी प्राणी की हिंसा करना, पर-स्त्री सेवन करना, कटु, कठोर, हृदय को दुख पहुँचाने वाली तथा असत्य वाणी बोलना, पर-सम्पत्ति का हरण (चोरी) तथा अनधिकार उपभोग करना तथा विष्णु (एवं विष्णु भक्तों की) निन्दा करना।

।। शिवलिङ्गपूजाप्रयोगः।।

शुचौ देशे समुपविश्य दर्भपाणिराचान्तः कामनाभेदेन सङ्कल्पं कृत्वा पूजामारभेत्। "ओं हराय नमः" इति मृदा-हरणम्। "ओं महेश्वराय नमः" इति सङ्घटनम्। "ओं शूलपाणे! इह सुप्रतिष्ठितो भव" इति प्राण प्रतिष्ठा। ततो

ध्यायेत्।

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसम्
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृतिं वसानम्
विश्वाद्यं विश्ववीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥२॥

ॐ पिनाकधृक्! इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इत्याद्यावाहनं कृत्वा। ॐ पशुपतये नमः, इति स्नापनम्। ॐ नमः शिवाय इति पाद्यादिभिः पूजयेत्। ततो वामावर्तेन पिण्डिकायां प्राच्याद्याग्नेय्यन्तं ''ॐ सर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः। ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः। ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः। ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः। ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः। ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः। ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः। ॐ ईशानाय सूर्य्यमूर्त्तये नमः''। इति गन्ध पुष्पैः सम्पूजयेत्। ''ॐ महादेव! क्षमस्व'' इति विसर्जयेत्।

शिव-लिङ्ग पूजन के लिए साधक शुद्ध तथा पवित्र स्थान पर, शुद्धासन पर बैठकर, हाथों में कुशा की पवित्री धारण कर पहले आचमन करें। इसके बाद विधि वत् देश-कालादि का स्मरण पूर्वक कामनानुसार शिव-लिङ्ग पूजन के लिए सङ्कल्प करें। तत्पश्चात् -

'ॐ हराय नमः' मन्त्र का उच्चारण करके लिङ्ग निर्माण के लिए मिट्टी का आहरण (पहले से लाकर रखी हुई मिट्टी में से लिङ्ग रचना हेतु आवश्यक मात्रा में से मिट्टी का ग्रहण) करें।

'ॐ महेश्वराय नमः' इस मन्त्र को बोलकर ली गई मिट्टी द्वारा विधिवत उचित मान वाले सुन्दर लिङ्ग का गठन (रचना) करे।

'ॐ शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भव' इस मन्त्र द्वारा लिङ्ग को वेदी पर स्थापित करके उसकी प्राण प्रतिष्ठा करे। इसके बाद शिव का ध्यान करे। यथा-

भगवान सदाशिव (महेश) के शरीर की आभा चाँदी के पर्वत के समान शुभ्र है। इनके मस्तक पर सुन्दर अर्द्धचन्द्र मुकुट की भाँति सुशोभित है। विभिन्न प्रकार के रत्नों से निर्मित आभूषणों को धारण करने के कारण उनकी आभा से समस्त शरीर सुन्दर शोभा से युक्त प्रकाशमान है। इनके एक हाथ में परशु तथा शेष तीन हाथ मृग, वर तथा अभय मुद्रा में स्थित हैं। व्याघ्र चर्म का परिधान धारण किए, प्रसन्न मुख पद्मासन मुद्रा में बैठे हुए सदाशिव के चारों ओर देवताओं के समूह खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। पञ्चमुख तथा प्रत्येक मुख पर सूर्य, सोम तथा अग्नि रुप तीन नेत्रों को धारण करने वाले भगवान शिव ही विश्व सृष्टि के आदि (निमित्त) तथा बीज रूप (उपादान) कारण हैं। शिव पूजन काल में नित्य ही इसी प्रकार शिव का ध्यान करना चाहिए। इसके बाद मानसोपचार पूजन करके विशेषार्घ्य स्थापन पूर्वक पुनः ध्यान करके -

''ॐ पिनाक धृक्! इहागच्छ इहागच्छ, इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व अत्राधिष्ठानं कुरु ह्रां ह्रीं स्थिरो भव मम पूजां गृहाण'' मंत्र का उच्चारण करके पञ्चमुद्राओं के प्रदर्शन द्वारा आवाहन करे।

''ॐ पशुपतये नमः'' इस मन्त्र द्वारा लिङ्ग को स्नान कराये।

''ॐ नमः शिवाय'' इस मन्त्र से पाद्यादि समर्पण द्वारा पूजन करे। यथा-

''ॐ नमः शिवाय पाद्यं समर्पयामि नमः'' आदि आदि।

इसके बाद लिङ्ग के चारों ओर पूर्व से प्रारम्भ कर आग्नेय पर्यन्त वामावर्त क्रम से पीठ पर अष्ट शिव मूर्तियों का गन्धपुष्पादि द्वारा पूजन करे।

ॐ शर्वाय क्षिति मूर्तये नमः - पूर्वे।
ॐ भवाय जलमूर्तये नमः - ईशाने।
ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः - उत्तरे।
ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः - वायव्ये।
ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः - पश्चिमे।
ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः - नैर्ऋत्ये।
ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः - दक्षिणे।
ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः - आग्नेये।

ॐ महादेव! क्षमस्व'' इस मन्त्र से विसर्जन करे।

।। तथाह लैङ्गे (लिङ्ग-पुराणे)।।

एकीकृत्य च लिङ्गानि दशपञ्चशतानि वा।
प्रत्येकमथवा देवि! विल्वपत्रैः प्रपूजयेत्।।

लिङ्ग पुराण के वचनानुसार पाँच, दश अथवा सौ लिङ्गों का एक साथ अथवा प्रत्येक का अलग-अलग बिल्व पत्रों द्वारा पूजन करना चाहिए।

एकं पाशुपतं लिङ्गं मृच्छिलादिविनिर्मितम्।
शालग्रामशिलामेकां गृहस्थश्चैव पूजयेत्।।३।।

गृहस्थ व्यक्ति को अपने घर में मिट्टी, पत्थरादि से निर्मित एक ही शिव लिङ्ग तथा एक ही शालग्राम शिला का पूजन करना चाहिए।।

।। शिव रहस्ये-शिवनिर्माल्य-भोजनम्।।

यथा यथा च स्वादूनि शुभानि सुरभीणि च।
निवेद्य पिष्टपानादि तत्फलानि तथा तथा।
भक्त्या निवेद्य भुञ्जानः फलमक्षयम्नुयात्।।

'शिव-रहस्य' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि जो जो स्वादिष्ट, सुन्दर तथा सुगन्ध युक्त पिष्ट (अन्न, फलादि को पीसकर बनाया गया खाद्य पदार्थ), पान (पिये

जाने वाले पदार्थ जल, दूध, शर्बतादि तरल रुप द्रव्य) तथा फल हैं, उन्हें पहले भक्तिपूर्वक नैवेद्य रुप में शिव को अर्पित करना चाहिए। फिर शिव के निर्माल्य रूप उन पदार्थों को स्वयं खाना चाहिए। इस निर्माल्य भक्षण से भक्त को अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है।।

हारीतोक्त नक्षत्र दोषाज्ज्वर शान्तिः

।। नक्षत्र दोष जन्य ज्वर भोग कालः।।

नक्षत्रैस्तु ज्वरोऽसाध्यः साध्योऽपि स चिकित्सितः
रिष्टिर्हारीतनिर्दिष्टा सा चात्र लिख्यते मया।।
जन्माधाने च निधने प्रत्यरौ च विपद्गते।
यदि व्याधिः समुत्पन्नः क्लेशाय मरणाय वा।।
ज्योतिश्चक्रे धनिष्ठादिनक्षत्राणां विचेष्टितम्।
दशरात्रं धनिष्ठासु ज्वरो भवति देहिनाम्।।
षड्रात्रं वा दशाहं वा भवेत् शतभिषाज्वरः।
तथा भाद्रपदास्वेतत् पूर्वासु मरणं ध्रुवम्।।
उत्तरासु भवेन्मोक्षो दिवसेऽद्र्धचतुर्दशे।
षड्रात्रं पञ्चरात्रं वा रेवत्यां वर्त्तते ज्वरः।।

नक्षत्रों की प्रतिकूलता के कारण जो ज्वर उत्पन्न होते हैं, वे प्रायः असाध्य होते हैं, परन्तु कभी-कभी विशेष चिकित्सा करने पर साध्य भी हो सकते हैं। हारीत मुनि ने विभिन्न नक्षत्रों में उत्पन्न होने वाले ज्वरों के दोषों का जैसा निरुपण किया है वैसा ही यहाँ (मेरे द्वारा) लिखा जा रहा है।

जन्म नक्षत्र, सप्तम नक्षत्र, पञ्चम नक्षत्र तथा तृतीय नक्षत्र में रोग उत्पन्न होने पर वह अति क्लेश दायक अथवा मृत्यु कारक होता है। ज्योतिष शास्त्र में धनिष्ठादि क्रम से नक्षत्रों के दोषों की गणना की गई है। यदि किसी मनुष्य को धनिष्ठा नक्षत्र में ज्वर उत्पन्न हुआ है तो उसका प्रभाव दश रात्रि तक रहेगा। शतभिषा नक्षत्र में ज्वर होने पर वह छः रात्रि अथवा दश दिन तक रहेगा। यदि पूर्वभाद्रपद नक्षत्र में ज्वर (रोग) उत्पन्न हुआ है तो निश्चित ही उस रोगी की मृत्यु होगी। यदि उत्तरा भाद्रपद में ज्वर की उत्पत्ति हुई है तो एक सप्ताह में उससे मुक्ति (छुटकारा) मिलेगी। रेवती नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर पाँच अथवा छः रात्रियों तक रहता है।

अश्विन्यामपि षड्रात्रत् सुखं सम्पद्यते ध्रुवम्।
भरण्याञ्च यमस्तिष्ठेत् मरणं पञ्मेऽहनि।।
कृत्तिकायां गृहीतस्य सप्तरात्रं भवेज्ज्वरः।
न मुञ्चेद् यदि सप्ताहादेकविंशतिमे सुखम्।।
रोहिण्यामष्टरात्रेण सुखमेकादशेन वा।
मृगशीर्षे ज्वरोऽप्येतन्नवरात्रमथापि वा।।
आर्द्रायामुपसृष्टस्य पञ्चाहान्मृत्युमादिशेत्।

ऊर्ध्वं यद्यपि वर्त्तेत त्रिपक्षान्मृत्युमादिशेत्॥

अश्विनी नक्षत्र में ज्वर होने पर रोगी छः रात्रियों के पश्चात् सुखी (ज्वर के शान्त होने पर) होता है। भरणी नक्षत्र का देवता यम होने के कारण इस नक्षत्र में ज्वर उत्पन्न होने पर रोगी की पाँचवे दिन अवश्य ही मृत्यु हो जाती है। कृतिका में ज्वर होने पर सात रात्रियों में इससे मुक्ति मिल जाती है परन्तु ऐसा न होने पर इक्कीसवें दिन इस ज्वर से मुक्त होकर रोगी सुखी होता है। रोहिणी नक्षत्र में ज्वरोत्पत्ति होने पर आठ या ग्यारह रात्रि के पश्चात् तथा मृगशिरा में ज्वर होने पर नव अथवा ग्यारह रात्रियों के बाद इसकी शान्ति होने पर रोगी सुख-लाभ करता है। आर्द्रा नक्षत्र में ज्वर होने पर पांच दिनों में रोगी की मृत्यु हो जाती है, परन्तु यदि रोगी जीवित बच जाता है तो तीन पक्ष (पैंतालिस दिन) बाद अवश्य ही मृत्यु हो जाती है।

पुनर्वसूपसृष्टेन ज्वरेण परिपीड़ितम्।
त्रयोदशाहतो मुञ्चेत् सप्तविंशेऽथवाऽहनि॥
पुष्ये त्रिरात्रं ज्वरितं सप्ताहान्नातिवर्त्तते।
आश्लेषायां भवेन्मृत्युर्दीर्घकालक्रमादपि॥
मघायां द्वादशाहेन मृत्युर्भवति देहिनाम्।
ऊर्ध्वं ततो मघायान्तु पुनरेव सुखी नरः॥

पुनर्वसु नक्षत्र में ज्वरोत्पत्ति होने पर तेरह या सत्ताईस दिनों के बाद ही रोगी को उससे मुक्ति मिलती है। पुष्य में ज्वर होने पर उसकी स्थिति तीन अथवा सात रात्रियों के बाद नहीं रहती। आश्लेषा नक्षत्र में ज्वर होने पर दीर्घकाल तक कष्ट भोगने के बाद रोगी की मृत्यु हो जाती है। मघा नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर के कारण रोगी की बारह दिनों में मृत्यु निश्चित है। यदि भाग्यवश रोगी जीवित बच जाय तो पुनः मघा नक्षत्र आने पर ही ज्वर से मुक्त होकर वह सुख प्राप्त करता है।

पूर्वासु चोपसृष्टस्य फल्गुनीषु भवेद् यमः।
उत्तरासु तथाष्टाहं नवरात्रमथापि वा॥
एकविंशतिरात्राहा ज्वरशान्तिं समृच्छति।
हस्तेषु सप्तमे मोक्षश्चित्रायामष्टमेऽह्नि च॥
ऊर्ध्वं वियुज्यमानोऽसौ मुञ्चेच्चित्रागमे पुनः।
स्वातीयोगे दशाहेन मुञ्चेत् पक्षत्रयेण वा॥
विशाखासु भवेन्मृत्युरेकविंशतिमेऽहनि।
ज्वरस्तु दिवसानष्टावनुराधासु वर्त्तते॥
अत ऊर्ध्वं न मुक्तस्य नापि तस्य चिकित्सितम्।
ज्येष्ठायां पञ्चमे मृत्युरूर्ध्वं वा द्वादशे सुखम्॥
मूले समुपसृष्टस्य दशरात्रं भवेज्ज्वरः।
अत ऊर्ध्वं न मुक्तस्य नापि तस्य चिकित्सितम्॥

पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र में ज्वरोत्पत्ति होने पर रोगी की मृत्यु निश्चित है। उत्तरा

फाल्गुनी में ज्वर होने पर आठ दिन, नवरात्रि अथवा इक्कीस दिनों में उसकी शान्ति होती है। हस्त नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर सात दिनों तक तथा चित्रा का ज्वर आठ दिनों तक रहता है। यदि इसके बाद भी ज्वर शान्ति न हो तो पुनः चित्रा के आने पर ही रोगी को इससे मुक्ति लाभ होता है। स्वाती नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर दश दिन अथवा तीन पक्ष वाद ही रोगी को स्वयं से मुक्त करता है। विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर के कारण इक्कीसवें दिन रोगी की मृत्यु हो जाती है। अनुराधा नक्षत्र का ज्वर सामान्यतः आठ दिनों तक रहता है, यदि ज्वर इससे आगे भी रहे तो इसकी कोई चिकित्सा नहीं है तथा रोगी इसके कारण मृत्यु को ही प्राप्त करता है। ज्येष्ठा नक्षत्र में ज्वर होने पर सामान्यतः पाँचवें दिन रोगी की मृत्यु हो जाती है, परन्तु इससे आगे भी ज्वर रहने पर उसे बारहवें दिन इस ज्वर से मुक्ति मिल जाती है। मूल नक्षत्र में ज्वरोत्पत्ति होने पर इसकी स्थिति दश रात्रियों तक रहती है, यदि इसके आगे भी ज्वर रहे तो न ही उसकी कोई चिकित्सा है और न ही रोगी को इससे छुटकारा मिलता है अर्थात् उसकी मृत्यु निश्चित है।

आषाढायान्तु पूर्वायां नवरात्रात् प्रमुच्यते।
अत ऊर्ध्वं न मुक्तस्य नापि तस्य चिकित्सितम्॥
उत्तरासु आषाढासु मासमेकं हि क्लिश्यते।
अष्टौ वा नव मासान् वा ततोऽस्य सुखमादिशेत्॥
श्रवणे त्वष्टरात्रं वा क्लश्यते ज्वरपीड़ितः।
एतद् भगवता प्रोक्तं नक्षत्राणां विचेष्टितम्।
य एनं वेत्ति तत्त्वेन स राजार्हो भिषग्वरः॥१॥

पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर नव रात्रियों के पश्चात् रोगी को मुक्त कर देता है। यदि इसके बाद भी ज्वर रहे तो इसकी कोई चिकित्सा (इलाज)नहीं है। उत्तराषाढ़ का ज्वर सामान्यतः एक मास तक रोगी को कष्ट देता है। इसके बाद भी ज्वर रहने पर आठवें व नवें माह में ही इससे मुक्ति मिलती है और रोगी सुख लाभ करता है। श्रवण नक्षत्र का ज्वर रोगी को आठ रात्रियों तक कष्ट देकर फिर उसे मुक्त कर देता है। इस प्रकार भगवान (हारीत ऋषि) के द्वारा नक्षत्रों में उत्पन्न ज्वर (रोगों) के विषय में विचार किया गया है जो इसे भली-भाँति जानकर रोगी की (रोग को साध्य अथवा असाध्य जानकर) चिकित्सा करता है वही श्रेष्ठ चिकित्सक तथा वैद्य-राज कहलाने के योग्य है॥१॥

॥ हारीतोक्तज्वरशान्तिविधानम् ॥

हारीते ज्वरशान्त्यर्थे विधानं लिख्यतेऽधुना।
''अग्निर्मूर्द्धेति'' वह्न्यार्क्षे दधि वै जुहुयादसौ॥
''हिरण्यगर्भः'' रोहिण्यां सर्ववीजमयं हविः।
सर्पिर्मासं मृगे ''सोम राजानम्'' इति होमयेत्

अब हारीत मुनि द्वारा कहे गये ज्वर शान्ति कारक विधान को लिखा जाता है।

कृतिका नक्षत्र में ज्वर उत्पन्न होने पर उसकी शान्ति के लिए दधि द्वारा हवन करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है :- **''ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्याऽअयम् अपरेतांसि जिन्वति स्वाहा।''**

रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर की शान्ति के लिए सर्वबीज द्वारा हवन करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है – **''ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम स्वाहा''।**

मृगशिरा नक्षत्रोत्पन्न ज्वर-शान्ति के लिए घृत युक्त मांस द्वारा हवन करे। मन्त्र- **''ॐ सोमं राजानमवसेग्निमन्वारभामहे आदित्यान् विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणञ्च बृहस्पतिं स्वाहा।''**

''ॐ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहेमतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम्''।(शु०य० मन्त्र १६/४८) इति आर्द्रासु मधु जुहुयात्। ''ॐ महीमूषु मातरम्'' इति पुनर्वसौ तण्डुलान्। मंत्रस्तु – ''ॐ महीमूषु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम। तुविक्षत्राम जरन्तीं मुरुचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्'' (शु०य० मन्त्र २१/५)। ''ॐ वृहस्पते अति यदर्य्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि वृहस्पतये त्वा। एष ते योनिर्वृहस्पतये त्वा'' (शु०य० मन्त्र २६/३)। इति पुष्ये घृतपायसम्।

आर्द्रा नक्षत्र के ज्वर में शान्ति हेतु मधु से हवन करे।

मन्त्र – **''ॐ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् स्वाहा।''**

पुनर्वसु नक्षत्रोत्पन्न ज्वर की शान्ति के लिए चावलों से हवन करे।

मन्त्र – **''ॐ महीमूषु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम। तुविक्षत्राम जरन्तीं मुरुचीं सुशर्मणामदितिं सुप्रणीतिम् स्वाहा।।''**

पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर की शान्ति के लिए घृतयुक्त खीर से हवन करना चाहिए।

मन्त्र – **''ॐ वृहस्पतये अति यदर्य्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि वृहस्पतये त्वा। एषते योनिर्वृहस्पतये त्वा स्वाहा।''**

''ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरीक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः'' (शु०य०मन्त्र १३/६)। इति आश्लेषासु सर्वोषिधिम्। ''ॐ इदं पितृभ्यः'' इति मघासु शालितण्डुलान्।

''ॐ इदं पितृभ्यो नमोऽस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु।''

(शु०य० मन्त्र

१९/६८)

आश्लेपा नक्षत्रोत्पन्न ज्वर-शान्ति के लिए सर्वौषधि से हवन करे।

मन्त्र - "**ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः स्वाहा।**"

मघा नक्षत्र के ज्वर में शालि के चावल से हवन करे।

मन्त्र - "**ॐ इदं पितृभ्यो नमोऽस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु स्वाहा।**"

"ॐ प्रातर्जितम्" इति पूर्वफल्गुनीषु कङ्कुं हुनेत्।

"ॐ प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्योधर्त्ता। आध्रश्चिद्यं। मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह" (शु० य० मन्त्र ३४/३५)। "ॐ पुरो यमस्य स्वाहा" इति "तत्सवितुर्वरेण्यम्" (शु० य० मन्त्र ३/३५ - २२/९) इति च घृताहुतिम् उत्तरफल्गुनीषु जुहुयात्। तत्सवितुरिति हस्ते दधि। "ॐ द्यावा पृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभीते अजरे भूरिरेतसा" इति चित्रासु मधुपायसम्।

पूर्व फाल्गुनी नक्षत्रोत्पन्न-ज्वर शान्ति के लिए "**ॐ प्रातर्जित**" इत्यादि(मूल के अनुसार) मन्त्र द्वारा कङ्कु (काकुनि दाना) से हवन करें।

उत्तर-फाल्गुनी - ज्वर शान्ति के लिए "**ॐ पुरो यमस्य स्वाहा**" मन्त्र द्वारा घृताहुति प्रदान कर हवन करें।

हस्त नक्षत्रीय ज्वर शान्ति के लिए "**तत्सवितुर्वरेण्यं**" इत्यादि (ब्रह्म-गायत्री मंत्र) के द्वारा दधि से हवन करें।

चित्रा नक्षत्र के ज्वर में शान्ति हेतु मधु तथा खीर से हवन करें, मन्त्र "**ॐ द्यावा पृथिवी**" इत्यादि (मूल के अनुसार)।

"ॐ वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम्। शिवो नियुद्भिः शिवाभिः" (शु०य० मन्त्र २७/३१) इति स्वातीषु घृताक्तान् तिलान्।

"ॐ इन्द्राग्नी आगतं सुतं गीर्भीर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता उपयागृहीतोसीन्द्राग्निभ्यां त्वा। एष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा" (शु० य० मन्त्र ७/३१) इति विशाखास्य नवौदनम्। "आं महिभूपाम्" इति अनुराधासु लसुनम्। "ॐ फल्गुनाम्ने" इति ज्येष्ठे कलायम्।

"ॐ अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धयारयिम्" (शु० य० मन्त्र ३/१६ - १२/५२) इति मूलेषु मूलकम्।

"ॐ इदमापः प्रवहतावद्यञ्च मलञ्च यत्। यच्चाभिदुद्रोहा नृतं यच्च शेपे अभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु" (शु० य० मन्त्र ६/१७)। इति पूर्वाषाढ़ासु शालिम् "ॐ विश्वेभ्यो मारुत" इति उत्तरासु रजतम्, तदभावे कुन्द पुष्पम्। "ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढ़मस्य पांसुरे स्वाहा" (शु० य० मन्त्र ५/१५) इति श्रवणे सर्व रक्तम्।

''ॐ वायुरग्निर्वसु:श्रवा: अक्षतानद्यमुत्तमम्। रयिम्नासनो बोधिसुधीहवं सुरस्यानो अक्षायतमस्मात्'' इति धनिष्ठासु वटशुङ्गम्।

स्वाती नक्षत्र में **''ॐ वायुरग्रेगा''** इत्यादि मूल के अनुसार मन्त्र द्वारा घृतयुक्त तिल से हवन करें।

विशाखा नक्षत्रोत्पन्न ज्वर-शान्ति के लिए नये चावल से बने ताजे भात द्वारा हवन करें। मन्त्र मूल के अनुसार - **''ॐ इन्द्राग्नी......योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा स्वाहा।''**

अनुराधा नक्षत्र में होने वाले ज्वर की शान्ति के लिए **''ॐ आं महिभूपाम् स्वाहा''** इस मंत्र से 'लहसुन' द्वारा हवन करें।

ज्येष्ठा नक्षत्रीय ज्वर-शान्ति के लिए **''ॐ फल्गुनाम्ने स्वाहा''** इस मन्त्र द्वारा 'मटर' से हवन करें।

मूल नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर की शान्ति के लिए 'मूली' द्वारा हवन करें। मन्त्र मूल के अनुसार -**''ॐ अयं......वर्धयारयिम स्वाहा''**॥

''ॐ इदमाप: ....मुञ्चतु स्वाहा''॥ इस मन्त्र (मूल के अनुसार) द्वारा 'शालि' नामक धान या चावल से हवन करने पर पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रोत्पन्न ज्वर का शमन होता है।

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर (रोग) की शान्ति के लिए रजत (रक्त) से हवन करें। इसके अभाव में 'कुन्द-पुष्प' से हवन करें। मन्त्र -**''ॐ विश्वेभ्यो मारुत स्वाहा''** (मूल के अनुसार)।

श्रवण नक्षत्र-दोष जनित ज्वर के शमन हेतु **''ॐ इदं ....पांसुरे स्वाहा''** (मूल में उल्लिखित) मन्त्र द्वारा 'लाख' से हवन करें।

धनिष्ठा नक्षत्र के ज्वर की शान्ति के लिए 'वट शुङ्ग' से हवन करें। मन्त्र मूल के अनुसार - **''ॐ वायु.............अक्षायतमस्मात स्वाहा''**॥

''ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भि:। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशं समान आयु: प्रमोषी:'' (शु०य० मन्त्र १८/४९ - २१/२) इति शतभिषायां जलपुष्पाणि।

''ॐ उत्तराहिव्रध्न:'' इति पूर्वभाद्रपदे शाल्योदनम्।

''ॐ अहिरिव भोगै: पर्य्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमान:। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परिपातुविश्वत:'' (शु० य० मन्त्र २९/५१) इति उत्तराभाद्रपदे शाल्योदनम्।

''ॐ शस्तो तारश्च इह ष्ठासि'' इति रेवत्यां फलान्यक्षतानि। उभा पिबतमश्विनोभा न: शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरुतिभि:'' (शु० य० मन्त्र ३४/२८) इति अश्विन्यां क्षीरवृक्ष समित्। ''ॐ मासं यम:'' इति भरण्यां तण्डुलान् जुहुयात्।

शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न होने वाले ज्वर की शान्ति के लिए 'जलीय पुष्पों' द्वारा हवन करें। मन्त्र (मूल में ही उल्लिखित) - **''ॐ तत्वा..........आयु: प्रमोषी:**

स्वाहा’’॥

पूर्व भाद्रपद-जनित-ज्वर-शमन हेतु शालि नामक धान के चावल द्वारा बने भात से हवन करें। मन्त्र-‘‘**ॐ उत्तराहि व्रघ्नः स्वाहा**’’॥

उत्तरा भाद्रपदीय ज्वर-शमन के लिए भी ‘शाल्योदन’ से ही हवन करें। मन्त्र-‘‘**ॐ अहिरिव.....पीरपातुविश्वतः स्वाहा**’’॥(मूलोल्लिखित)

रेवती नक्षत्रोत्पन्न ज्वर की चिकित्सा के लिए के फलों तथा अक्षतों द्वारा हवन करें। मन्त्र-‘‘**ॐ शस्तो तारश्च इह ष्ठासि स्वाहा**’’॥

अश्विनी नक्षत्रीय ज्वर के लिए ‘क्षीर वृक्ष’ (गूलर, पीपल, बरगदादि)की समिधा से हवन करें। मन्त्र - ‘‘**ॐ उभापिबत..................अविद्रियाभिरूतिभिः स्वाहा**’’॥ (मूल के अनुसार)

भरणी नक्षत्र में उत्पन्न होने वाले ज्वर की शान्ति के लिए चावलों से हवन करें। मन्त्र-‘‘**ॐ मासं यमः स्वाहा**’’॥

॥ हारीतोक्तज्वरहरणबलिमन्त्रः॥

‘‘ॐ ह्रीं क्लीं ठः ठः भो भो ज्वर! शृणु शृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाह्निकं द्व्याह्निकं त्र्याह्निकं चातुराह्निकं साप्ताह्निकं मासिकं आर्द्धमासिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं मौहूर्तिकं नैमेषिकं अट अट भट भट हुं फट् अमुकस्य ज्वरं हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा’’॥

ज्वरामयगृहीतस्य मुष्टिभिर्नवभिः कृतः।
तण्डुलैर्वर्णभेदेन कुर्य्यात् पुत्तलकं शुभम्॥
तं हरिद्रावलिप्ताङ्गं चतुःपीतध्वजान्वितम्।
हरिद्रारसपूर्णाभिः पुटकाभिश्चतसृभिः॥
मण्डितं गन्धपुष्पाद्यैरवतार्य्य विसर्जयेत्।
एतद्दिनत्रयं कुर्य्यात् ज्वररोगोपशान्तये॥२॥

ज्वर शान्ति हेतु नक्षत्रानुसार हवन-कर्म का निरूपण करने के बाद अब हारीतोक्त ज्वरहरण बलि विधान का वर्णन किया जाता है।

ज्वर पीड़ित व्यक्ति अपनी मुट्ठी के अनुसार नौ मुट्ठी चावल लेकर बलिपिंड के लिए पकाये। पीड़ित व्यक्ति के अपने ही वर्ण के व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत चावल के चूर्ण द्वारा ज्वर की एक काल्पनिक प्रतिमूर्ति (पुतली) बनाये। इस पुतली के समस्त अङ्गो में हल्दी का लेपन कर इसके चारो ओर चार पीला ध्वज रोपित करें। इसके बाद पुतली के चारो ओर चार पुट-पात्र (पत्ते के दोने) हल्दी के रस से पूर्ण स्थापित करे। तदुपरान्त गन्धपुष्पादि द्वारा इस पुतली का पूजन कर बलि समर्पित करके विसर्जन कर दे।

बलि-प्रदान मन्त्र - ‘‘**ॐ ह्रीं क्लीं ठः ठः भो भो ज्वर! शृणु शृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाह्निकं द्व्याह्निकं त्र्याह्निकं चातुराह्निकं साप्ताह्निकं मासिकं आर्द्धमासिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं मौहूर्तिकं नैमेषिकं अट अट भट भट हुं फट्**

अमुकस्य ज्वरं हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा।''

तीन दिनों तक इस प्रयोग को करने से ज्वर रोग की शान्ति हो जाती है।

॥ पुत्तलकविसर्जनम्॥

''ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य अमुकस्य उत्पन्नज्वरक्षयाय तन्नक्षत्राय एष रचितपुत्तलकबलिर्नमः'' इत्युत्सृज्य निमज्जयित्वा उत्तरस्यां दिशि पुत्तलकविसर्जनं कर्त्तव्यम्॥३॥

पूर्वोक्त बलि-प्रदान-मन्त्र पढ़ने के बाद बलि देने वाला व्यक्ति **''ॐ अद्येत्यादि** (मास तिथि नक्षत्रादि का स्मरण करते हुए) **अमुक गोत्रस्य अमुकस्य ज्वर क्षयाय तन्नक्षत्राय एष रचित पुत्तलकबलिर्नमः।** बोलकर पुतली के आगे बलि छोड़ दे। इसके बाद स्नान करके उत्तर दिशा में घर से कुछ दूर पुतली का विसर्जन कर दे।

॥ अन्य विधिः॥

अत्र पुत्तलकं पूर्वोक्ततुल्यमिति। एतत्कृत्वा आचमनं नक्षत्राय दद्यात्। ज्वरहृदयं मार्जयिष्यामि। '' भो भो ज्वर शृणु शृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाह्निकं द्व्याह्निकं त्र्याह्निकं चातुराह्निकं साप्ताह्निकं मासिकं आर्द्धमासिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं मौहूर्त्तिकं नैमेषिकं अट अट भट भट हुं फट् वज्रपाणिराजा ॐ शिरो मुञ्च कण्ठं मुञ्च बाहुं मुञ्च उदरं मुञ्च कटिंमुञ्च ऊरुं मुञ्च भूम्यां गच्छ शृणु शृणु अमुकस्य ज्वरं हन हन हुं फट्''। एतदलक्तरसेन पत्रिकायां लिखित्वा अन्त्यजाय बलि दान पूर्वकं शिरसि बन्धनीयम्॥४॥

इस विधि में पहले पूर्ववत् पुत्तल का निर्माण, पूजनादि करके बलि प्रदान करने के पश्चात् नक्षत्र के लिए आचमन भी प्रदान करना चाहिए। इसके बाद बलि प्रदान कर्ता रोगी के हृदय पर हाथ रखकर **''ज्वर हृदयं मार्जयिष्यामि''** बोलकर निम्न मंत्र पढ़ते हुए उसके शरीर का मार्जन करे।

मन्त्र - **''भो भो ज्वर शृणु शृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाह्निकं द्व्याह्निकं त्र्याह्निकं चातुराह्निकं साप्ताहिकं मासिंक आर्द्धमासिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं मौहूर्तिकं नैमेषिकं अट अट भट भट हुँ फट् वज्रपाणि राजा ॐ शिरोमुञ्च कण्ठं मुञ्च बाहुं मुञ्च उदरं मुञ्च कटिं मुञ्च ऊरुं मुञ्च भूम्यां गच्छ शृणु शृणु अमुकस्य ज्वरं हन हन हुँ फट्।''**

इस मन्त्र को भोज पत्र पर आलता (अथवा लाख-रस) द्वारा लिखकर, अन्त्यज जाति के व्यक्ति को बलि प्रदान करके, लिखित मन्त्र को किसी तावीज अथवा कपड़े की गुटिका में रखकर रोगी के मस्तक अथवा शिखा पर बाँध देना चाहिए।

॥ गर्गोक्तज्वरहरणवलिः॥

अश्विन्यां दाशरात्रेणज्वरितः कल्यतां व्रजेत।
तदाश्विन्यै इमं दद्यात् पत्युर्जीवनहेतवे॥

तत्र हस्तप्रस्थं गृहीततण्डुलकृतपिष्टकरचितं तुरगं स्थूल पात्रे चतुर्भिः पुरुषैर्गृहीतं प्रत्येकं कपर्दकैकक्रीतैर्गन्धपुष्प धूप दीपैर्वेष्टयित्वा पताकाभिरलङ्कृत्यं

वास्तुप्रदेशे सन्ध्यायां ज्वर-हरणवलिं दद्यात्। एवं सकलनक्षत्रे। एतेन सुस्थो भवति मानवः॥५॥

॥ गर्गोक्तज्वरहरणवलिमन्त्रः॥

''ॐ ह्रीं क्लीं ठः ठः भो भो ज्वर! शृणु शृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाह्निकं द्व्याह्निकं त्र्याह्निकं चातुर्थिकं साप्ताह्निकं मासिकं आर्द्धमासिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं मौहूर्त्तिकं नैमेषिकं अट अट भट भट अमुकस्य ज्वरं हर हर हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा''।

गर्ग प्रोक्तो मन्त्र एषः सर्वज्वरहरः स्मृतः॥६॥

गर्ग ऋषि द्वारा कथित ज्वर हरण बलि विधान निम्न प्रकार से है।

अश्विनी नक्षत्र में ज्वरोत्पत्ति होने पर रोगी दशरात्रियों के बाद स्वास्थ्य लाभ करता है। अतः दश रात्रियों के मध्य ही बलि प्रदान करना चाहिए। ज्वर पीड़ित व्यक्ति की मुट्ठी अथवा अञ्जुलि के परिमाण के बराबर चावल लेकर उसके चूर्ण द्वारा एक अश्व (घोड़ा) की रचना करे। इस अश्व को किसी बड़े पात्र में रखकर चारों ओर से चार व्यक्ति पकड़ लें। फिर प्रत्येक व्यक्ति एक-एक कौड़ी (मुद्रा) द्वारा खरीदे गये गन्ध-पुष्प-धूप-दीप द्वारा उसकी अर्चना कर चारों ओर से ध्वजों द्वारा उसे अलङ्कृत करे। सन्ध्याकाल में वास्तु प्रदेश (नैर्ऋत्य दिशा) में ज्वर हरण बलि प्रदान करे। समस्त नक्षत्रों में उत्पन्न ज्वर शान्ति के लिए इसी प्रकार प्रयोग करे। इस बलिदान क्रिया से रोगी शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ करता है।

बलि मन्त्र इस प्रकार है – **''ॐ ह्रीं क्लीं ठः ठः भो भो ज्वर शृणु शृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाह्निकं, द्व्याह्निकं त्र्याह्निकं चातुर्थिकं साप्ताहिकं मासिकं आर्द्धमासिकं, वार्षिकं, द्वैवार्षिकं मौहूर्तिकं नैमेषिकं अट अट भट भट अमुकस्य ज्वरं हर हर हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा।''**

गर्गप्रोक्त यह मन्त्र समस्त प्रकार के ज्वरों का हरण करने वाला कहा गया है॥६॥

॥ ज्वरहरणबलिमन्त्रस्तु प्रकारान्तरेण॥

''ॐ नमश्चण्डवज्रपाणये महासुषेणाधिपतये ॐ ज्वर! शृणु शृणु छर्द छर्द शिरो मुञ्च मुञ्च हृदयं मुञ्च मुञ्च उदरं मुञ्च मुञ्च कटिं मुञ्च मुञ्च ऊरुं मुञ्च मुञ्च हस्तौ मुञ्च मुञ्च गात्राणि मुञ्च मुञ्च ॐ हुं हुं हुं फट् अमुकस्य सर्वज्वरं नाशय स्वाहा''। इति कुमारीकल्पितसूत्रेण संवेष्ट्य पत्रिकां लेखयित्वा ज्वरिणः शिरसि बन्धयेत्॥७॥

ज्वरहरण बलि हेतु अन्य मन्त्र – **''ॐ नमश्चण्ड वज्रपाणये महासुषेणाधिपतये ॐ ज्वर! शृणु शृणु छर्द छर्द शिरो मुञ्च मुञ्च हृदयं मुञ्च मुञ्च उदरं मुञ्च मुञ्च कटिं मुञ्च मुञ्च ऊरुं मुञ्च मुञ्च हस्तौ मुञ्च मुञ्च गात्राणि मुञ्च मुञ्च ॐ हुं हुं हुं फट् अमुकस्य सर्व ज्वरं नाशय स्वाहा।''**

पूर्व प्रयोग में कथित अश्व निर्माण पूजन आदि करके नैर्ऋत्य दिशा में

उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर बलि प्रदान करे। फिर इसी मन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर, किसी (ब्राह्मण) कुमारी कन्या द्वारा निर्मित धागे को इस भोज पत्र पर लपेट कर रोगी के सिर पर बाँध दे। इससे रोगी शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ करेगा।।७।।

वाराही मायातन्त्रयोश्चण्डी पाठ फलम्

।। श्री शिव उवाच।।

चण्डीपाठफलं देवि! शृणुष्व गदतो मम।
एकावृत्त्यादिपाठानां यथावत् कथयामि ते।।
संकल्प्य पूर्वं सम्पूज्य न्यस्याङ्गैः च मनुं सकृत्
पाठाद्वलिप्रदानाद्धि सिद्धिमाप्नोति मानवः।।
उपसर्गोपशान्त्यर्थं त्रिरावृत्तं पठेन्नरः।
ग्रहोपशान्तौ कर्त्तव्यं पञ्चावृत्त वरानने!।।
महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तमुदीरयेत्।
नवावृत्ताद् भवेच्छान्तिर्वाजपेयफलं लभेत्।।
राजवश्याय भूत्यै च रुद्रावृत्तमुदीरिम्।
अर्कावृत्तेः काम्यसिद्धिर्वैरिहानिश्च जायते।।

वाराही तन्त्र तथा मायातन्त्र में चण्डी पाठ-क्रम तथा उसके फल सम्वन्धित वर्णन के प्रसङ्ग में भगवान शिव कहते हैं - हे देवि! अब मेरे द्वारा कहे जाने वाले चण्डीपाठ के फल को सुनो। एक, दो, तीन आदि आवृत्तियों के क्रम से होने वाले फल को मैं विधिवत कहता हूँ।

सर्वप्रथम चण्डीपाठ का सङ्कल्प करके चण्डी का पूजन करे। फिर षडङ्ग न्यासादि करके चण्डी के नवार्ण मन्त्र का जप करे। इसके बाद पाठ करके बलि प्रदान करे। इस प्रकार सभी क्रियाओं के विधिवत् सम्पादन करने से मनुष्य की सभी कामनाओं की सिद्धि होती है।

विभिन्न प्रकार के रोगों अथवा विपत्तियों की शान्ति के लिए चण्डी पाठ की तीन आवृत्ति करनी चाहिए। ग्रहों की शान्ति के लिए पञ्चावृत्ति तथा किसी विशेष कारणवश अत्यधिक भय की स्थिति में चण्डी-पाठ की सात आवृत्तियाँ करनी चाहिए। चण्डी पाठ की नौ आवृत्तियाँ करने से सभी प्रकार की शान्ति तथा वाजपेय यज्ञ के समान फल की प्राप्ति होती है। राजा को वशीकृत करने तथा ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए पाठ की ग्यारह आवृत्ति करनी चाहिए। चण्डी-पाठ की बारह आवृत्तियाँ करने से सभी कामनाओं की सिद्धि तथा साधक के शत्रुओं का विनाश भी हो जाता है।

मन्वावृत्तादिपूर्वस्य तथा स्त्रीवश्यतां नयेत्।
सौख्यं पञ्चदशावृत्ताच्छ्रियमाप्नोति मानवः।।
कलावृत्तात् पुत्रपौत्रधनधान्यागमं विदुः।
राज्ञां भीतिविमोक्षाय वैरस्योच्चाटनाय च।।
कुर्य्यात् सप्तदशावृत्तं तथाऽष्टादशकं प्रिये!

महाव्रणविमोक्षाय विंशावृत्तं पठेन्नरः॥
पञ्चविंशावर्त्तनात्तु भवेद्बन्धविमोक्षणम्।
सङ्कटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये तथा॥

तेरह तथा चौदह आवृत्तियाँ करने पर क्रमशः स्त्रीवशीकरण तथा पारिवारिक सुख की प्राप्ति होती है। चण्डी पाठ की पन्द्रह आवृत्तियों से लक्ष्मी प्राप्ति तथा सोलह आवृत्तियों के पाठ से पुत्र-पौत्र धन-धान्य की प्राप्ति सहित मनुष्य आगमों का विद्वान भी हो जाता है। राज-भय से मुक्ति के लिए तथा शत्रुओं के उच्चाटन के लिए क्रमशः सत्तरह तथा अठारह आवृत्ति चण्डी पाठ की करनी चाहिए। शरीर में अत्यन्त कष्टकारी महाव्रण (फोड़ा तथा घाव) होने पर उससे मुक्ति के लिए चण्डी पाठ की बीस आवृत्तियाँ करनी चाहिए। पच्चीस आवृत्तियों के द्वारा व्यक्ति को बन्धन (कारागार) से मुक्ति प्राप्त होती है।

जातिध्वंसे कुलोच्छेदे आयुषोनाश आगते।
वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ पुरनाशे प्रजाक्षये॥
तथैव त्रिविधोत्पाते महोत्पातोपपातके।
कुर्य्याद् यत्नाच्छतावृत्तं ततः सम्पद्यते शुभम्॥
नश्यन्ति विपदस्तस्य अन्ते याति परां गतिम्।
श्रियो वृद्धिः शतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथाऽपरे॥
मनसा चिन्तितं देवि! सिध्येदष्टोत्तराच्छतात्।
शताश्वमेधयज्ञानां फलमाप्नोति सुव्रते!॥
सहस्रावर्त्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा।
भुक्त्वा मनोरथं कामान् नरो मोक्षमवाप्नुयात्॥
यथाश्वमेधः क्रतुराड् देवानाञ्च यथा हरिः।
स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशती स्तवः॥
अथवा बहुनोक्तेन किमेतेन वरानने!।
चण्डयाः शतावृत्तिपाठात् सर्वाः सिध्यन्त सिद्धयः॥

किसी बड़े संङ्कट के समय दुःसाध्य रोग की स्थिति में, जाति ध्वंस, कुलविनाश, आयुनाश, शत्रु-वृद्धि, रोग वृद्धि, पुरनाश, प्रजाहानि, त्रिविध (आधि भौतिक, आधि दैविक तथा आध्यात्मिक अथवा वायु, अग्नि तथा जल सम्बन्धित) उत्पात होने पर, महापाप तथा उपपातक होने की स्थिति में चण्डी-पाठ की सौ आवृत्तियाँ यथा विधि करने (या करवाने) से शान्ति-सुख की प्राप्ति होती है।

शतावृत्ति चण्डी पाठ से मनुष्य की सारी विपत्तियों का क्षय हो जाता है तथा मृत्यूपरान्त उसे परमगति (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। अष्टोत्तरशतावृत्ति के द्वारा मनुष्य के जीवन में श्री वृद्धि तथा राज्य वृद्धि (राजा की भाँति धन-सम्पत्ति भोग

की प्राप्ति) के साथ ही उसकी समस्त कामनाओं की सिद्धि भी होती है। हे सुव्रते! इस पाठ के द्वारा मनुष्य को सौ अश्वमेघ यज्ञों के बराबर फल की प्राप्ति होती है। चण्डी पाठ की एक हजार (आठ) आवृत्तियाँ करने वाले मनुष्य का लक्ष्मी स्वयं आकर वरण करती है तथा उसके गृह (कुल) में स्थिर होकर निवास करती है। मनुष्य इस जीवन में सभी वाञ्छित भोगों को भोग कर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। जिस प्रकार अश्वमेघ यज्ञ सभी यज्ञों में राजा के समान है, भगवान विष्णु समस्त देवताओं में श्रेष्ठ देवेश्वर हैं उसी प्रकार श्री दुर्गासप्तशती स्तोत्र सम्पूर्ण देव-स्तोत्रों में सर्वश्रेष्ठ है। हे वरानने! इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ, बस इतना जान लो कि इस चण्डी पाठ (श्री दुर्गा सप्तशती पाठ) की सौ (एक सौ आठ)आवृत्तियों के द्वारा सम्पूर्ण सिद्धियों की सिद्धि हो जाती है अर्थात् मनुष्य सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

।। चण्डी-पाठे कलस-स्थापनम्।।

संस्कृत्य भूमिं संस्थाप्य कलसं तीर्थवारिणा।
पूरयित्वा स्वर्णकुम्भं क्षिपेदष्टमृदस्तथा।।
धर्मकामः क्षिपेद् भस्म धनकामस्तु मौक्तिकम्।
श्रीकामः श्रीफलं न्यस्य कामात्मा रोचनं न्यसेत्।।
मोक्षकामो न्यसेद्वज्रं जयकामोऽपराजिताम्।
उच्चाटनार्थं व्याघ्रीञ्च वश्यार्थं शिखिमूलकम्।।
मारणाय मरीचञ्च कितवं मोहनाय च।
आकर्षणार्थं पावन्तीं प्रक्षिपेत् कलसोदरे।।

चण्डी-पाठ के पूर्व पूजनादि क्रिया के सम्पादन हेतु पहले भूमि का विधि वत संशोधन करके एक कलस स्थापित करे। फिर इस कुम्भ को तीर्थ के जल से भरकर उसमें स्वर्ण तथा आठ प्रकार की मिट्टी डालें। इसके बाद चण्डी पाठ के फलस्वरूप धर्म की कामना वाला मनुष्य कुम्भ में भस्म डाले। धन की कामना वाला मोती, ऐश्वर्य का इच्छुक श्रीफल (बेल), भोगों की कामना वाला गोरोचन (या कुंकुम), मोक्ष कामी हीरा, शत्रु पर जय का अभिलाषी अपराजिता, उच्चाटन के लिए कण्टकारी, वशीकरण के लिए अपामार्ग की जड़, मारण के लिए मरिच, मोहन के लिए धतूरा तथा आकर्षण के लिए पिउली को कुम्भ में डाले।

जपेन्मन्त्रं महेशानि! शृणुष्व गदतो मम्।
क्षिप्तञ्च कलसे हस्तं तमादाय जपेन्मनुम्।।
नकुलीशंस्तथा वामकर्णमर्द्धेन्दुशेखरम्।
द्विर्वाग्भवं समुच्चार्य्य मायावीजं ततो वदेत्।।
चामुण्डायै पदं पश्चाद्विठान्तो मनुरीरितः।

जपित्वा दशलक्षन्तु स्नायात्तेनैव वारिणा।।

हे महेशानि! कामनानुसार जिस पदार्थ को कलश में डालना है उसे साधक हाथ में लेकर मन्त्र का जप (उच्चारण) करके उसमें डाले। उस जपने वाले मन्त्र को मैं कहता हूँ, सुनो!

नकुलीश (ह) को वाम कर्ण (ऊ) तथा अर्द्धेन्दु (चन्द्र बिन्दु) से सिर पर युक्त करके (हूँ रूप से बोलकर) इसके बाद दो बार ऐं (ऐं ऐं), मायाबीज (ह्रीं), 'चामुण्डायै' तथा अन्त में दो ठ (स्वाहा) का उच्चारण करे। इस प्रकार मन्त्र निष्पन्न होगा -

''हूँ ऐं ऐं ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा।''

इस मन्त्र का दस लाख जप करके हाथ में लिए पदार्थ को कलश में डालकर उस कलश के जल से साधक स्नान करे। इसके बाद कामनानुसार विभिन्न हवनीय पदार्थों द्वारा साधक को हवन करना चाहिए।

विमर्श - उपर्युक्त प्रथम श्लोक की द्वितीय पंक्ति के तीन अर्थ आभासित होते हैं। प्रथम- कलश में डालने वाले पदार्थ को हाथ में लेकर 'हूँ ऐं ऐं ह्रीं चामुडायै स्वाहा' बोलकर उसे कलश में डाल दें, फिर मन्त्र का दश लाख जप करके उस कलश के जल से स्नान करें। द्वितीय - पदार्थ को हाथ में लेकर दश लाख जप करें फिर उसे कलश में डालें। तृतीय - कलश में अभीष्ट पदार्थ को ड़ालकर, कलश को ही हाथ में लेकर दश लाख जप करें, फिर उसके जल से स्नान करें। द्वितीय तथा तृतीय स्थितियों में दश लाख जप करना असम्भव है। अत: मेरे विचार से साधक को कामनानुसार द्रव्य को एक बार मन्त्रोच्चारण कलश में डाल देना चाहिए। तदुपरान्त कलश का स्पर्श करते हुए जितने समय (दिनों) में सम्भव हो जप पूरा करके उस जल से स्नान करना चाहिए। उचित यह होगा कि जिस दिन से पाठ प्रारम्भ करना हो उसी दिन कलश स्थापित कर उपयुक्त द्रव्य डालकर साधक पहले पाठ करे। फिर कलश को स्पर्श करते हुए एक निश्चित संख्या में जप करे। इस प्रकार कामनानुसार यथोचित पाठों की संख्या तथा मन्त्र का दश लाख जप पूर्ण होने पर उस कलश के जल से स्नान करें। इसके बाद हवन कर्म करें। दूसरी विचारणीय बात यह है कि उपर्युक्त दश लाख की जप-संख्या शतावृत्ति अथवा सहस्रावृत्ति पाठ के लिए कही गयी हो सकती है। अत: जहाँ आवृत्तियों की संख्या पाँच, दश, बीस या पच्चीस तक हैं वहाँ जप की संख्या एक लाख तक रख लेना मेरे दृष्टिकोण से अनुचित न होगा। वैसे यदि साधक सामर्थ्यवान है तो आवश्यकतानुसार अनेक ब्राह्मणों का जप कार्य हेतु वरण करके निर्देशित संख्या में मन्त्र-जप पूर्ण करवा सकता है।

।। कामना भेदेन हवनीय द्रव्याणि।।

हुनेत् सर्पिः प्रलिप्तांश्च तिलधान्याब्जतण्डुलान्।
धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै मोक्षाय पायसं हुनेत्।।
मारणे मोहने चैव तथोच्चाटनकर्मषु।
हुनेन्मांसं त्रिमध्वक्तं मोहने मधुपायसम्।।

स्तम्भने मातुलफलं वश्ये तु श्वेतसर्षपैः।
धर्मार्थकाममोक्षार्थी पूर्वाशाभिमुखं हुनेत्॥
एवं शतावृत्तफलं मयोक्तं ते विधानतः।

धर्म, अर्थ तथा काम का अभिलाषी घृत युक्त तिल, धान्य (जौ), कमल तथा चावल के मिश्रण द्वारा हवन करे तथा मोक्षार्थी घृत युक्त खीर द्वारा हवन करे।

मारण, मोहन तथा उच्चाटन की कामना से कर्म करने वाला त्रिमधुयुक्त माँस से तथा केवल आकर्षण (मोहन) के लिए मधुयुक्त खीर से हवन करे। स्तम्भन के लिए धतूरे के फल से तथा वशीकरण हेतु सफेद सरसों से हवन करना चाहिए। पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्मार्थकाममोक्ष) के लिए साधक को पूर्व दिशा की ओर मुख करके हवन करना चाहिए।

हे देवि! इस प्रकार मैंने क्रमानुसार विधि सहित शत आवृत्तियों तक चण्डीपाठ करने से प्राप्त होने वाले फलों का वर्णन किया है।

।। चण्डी-पाठ विधिः।।

आधारे स्थापयित्वा च पुस्तकं वाचयेत् स्फुटम्॥
हस्तसंस्थापनादेव हरत्यर्द्धफलं यतः।
यावन्न पूर्य्यतेऽध्यायः तावन्न विरमेत् पठन्।
अनुक्रमं पठेद् देवि! शिरःकम्पादिकं त्यजेत्॥
प्रमादतोऽध्यायमध्ये विरमेत्तु यदि प्रिये!।
पुनरध्यायमावृत्त्य पठेत् सर्वस्तवे विधिः॥
नातःपरतरं स्तोत्रं किञ्चिदस्ति वरानने!।
भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं पावनानाञ्च पावनम्॥८॥

पुस्तक को किसी आधार (आसन) पर रखकर ही स्पष्ट उच्चारण सहित पाठ करना चाहिए। पुस्तक को हाथ में लेकर पाठ करने से आधे फल की ही प्राप्ति होती है। जब तक पाठ (अध्याय) पूर्ण न हो जाय बीच में पाठ रोककर विराम (विश्राम) नहीं करना चाहिए। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पाठ एक ही क्रम से तथा शिर, शरीरादि को बिना कम्पित किये (हिलाये) करना चाहिए। प्रमाद (अथवा किसी अन्य कारण) वश अध्याय के मध्य में विराम (रुकावट) होने पर फिर से उस अध्याय का पाठारम्भ करना चाहिए। हे प्रिये! ये उपर्युक्त नियम सभी प्रकार के स्तोत्र-पाठों के सम्बन्ध में विधि-मान्य है।

हे वरानने! इस चण्डी-स्तोत्र से बढ़कर (श्रेष्ठ) अन्य कोई भी स्तोत्र-पाठ नहीं है। यह साधक को भुक्ति तथा मुक्ति दोनों को ही प्रदान करने वाला है। यह चण्डी पाठ महान पुण्य दायक तथा सभी पवित्र (पापों का हरण करने वाले) स्तोत्रों से भी परम पवित्र (पाप-हरण के साथ ही मोक्ष प्रदायक भी)है।।८।।

।। दक्षिणात्यसम्प्रदायमते चण्डीपाठक्रमः।।

वेदादिवाग्भवञ्चैव मायाकामस्तथैव च।

पृथ्वी शिवं वामनेत्रं नादबिन्दुविभूषितम्।।
मायाकामो नमः पश्चान्मूलमन्त्र इति स्मृतः।
लक्षं जपेन्मूलमन्त्रं सर्वकामार्थसिद्धये।।
एतन्मन्त्रं आदौ लक्षं जप्त्वा चण्डीपाठः कार्य्यः।
''ओं ऐं ह्रीं क्लीं ह्लीं ह्रीं क्लीं नमः।''

वेदादि (ॐ), वाग्भव (ऐं), माया (ह्रीं) तथा काम (क्लीं)। पृथ्वी 'ल' शिव 'ह' वाम नेत्र 'ई' तथा नाद बिन्दु 'अनुस्वार' इन सबसे निष्पन्न बीज 'ह्लीं'। इसके वाद माया, काम तथा नमः का संयोजन कर उद्धरित मंत्र - **''ॐ ऐं ह्रीं क्लीं ह्लीं ह्रीं क्लीं नमः।''** (पाठान्तर मन्त्र) - **''ऐं ह्रीं क्लीं ह्लाँ क्लीं ह्रीं ऐं नमः।''**

दक्षिणात्य सम्प्रदायानुसार इस नवार्ण मूल-मन्त्र का पहले एक लाख जप करे फिर चण्डी पाठ करे।

।। चण्डी-पाठ-क्रम-भेद।।

सृष्टिस्थितिसंहार भेदा भवन्ति। सृष्टिक्रमस्तु। - ''सावर्णिः सूर्य्यतनयः'' इत्यादि।
''सूर्य्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः''।
इत्यन्तं शान्तिकर्मणि ज्ञेयम्।

।। स्थितिक्रमस्तु।।

''ऋषिरूवाच - पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः''
इत्यादि शक्रादिस्तवसमाप्तिपर्य्यन्तं स्थितिकर्मणि ज्ञेयम्।

।। संहारक्रमस्तु।।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।
सूर्य्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः।।

इति श्लोकः संहारक्रमेण ''सावर्णिः सूर्य्यतनयः'' इत्यन्तं पठनीयः। एवं संहारक्रमः स्त्रीवित्तपुत्रक्षेत्रापहारकर्मणि बोध्यम्।।९।।

चण्डी पाठ के तीन क्रम कहे गये हैं - 'सृष्टि-क्रम', 'स्थिति क्रम' तथा 'संहार क्रम'। 'सृष्टि-क्रम' में पाठ **''सावर्णिः सूर्य तनयः''** से आरम्भ कर **''सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः''**। तक करना चाहिए। यह पाठ-क्रम शान्ति कर्म के लिए कहा गया है।

'स्थिति-क्रम' में **''ऋषिरुवाच - पुराशुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः''** से आरम्भ करके **''शक्रादि स्तव''** समाप्ति पर्यन्त पाठ करना चाहिए।

'संहार-क्रम' में **''एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः। सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः।।''** (अ०१३, श्लोक २९) से आरम्भ करके **''सावर्णिः सूर्यतनयः''** (अ०१, श्लोक १) पर्यन्त (विलोम)पाठ करना चाहिए। स्त्री, पुरुष, धन, क्षेत्रादि के विनाश के लिए इस क्रम से पाठ करना चाहिए।।९।।

।। वाराही तन्त्रे।।

आदिमारभ्य प्रजपेत् सृष्टिक्रम इहोच्यते।

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामारभ्य प्रजपेत् सुधीः।।
आद्याच्छक्रादिपर्य्यन्तं स्थितिक्रम उदाहृतः।
शेषमारभ्य आद्यन्तं संहारोऽयं क्रमो भवेत्।।
स्थिति पाठः सर्वकामे मुक्तिकामे च संहृतिः।
स्त्रीकामे पुत्रकामे च सृष्टिक्रम उदाहृतः।।
शतमादौ शतञ्चान्ते जपेन्मन्त्रं नवाक्षरम्।
चण्डीसप्तशतीमध्ये सम्पुटोऽयमुदाहृतः।
सकामे सम्पुटो जाप्यो निष्कामे सम्पुटं विना।।१०।।

वाराही तन्त्रानुसार श्री सप्तशती का पाठ क्रम पूर्ववत् ही है। अर्थात् सृष्टि-क्रम में आदि (सावर्णि सूर्य तनयः) से प्रारम्भ कर अन्त (सावर्णिर्भविता मनुः) तक क्रमानुसार प्रत्येक अध्याय का पाठ करना चाहिए।

स्थिति क्रम में चण्डीपाठ 'पुरा शुम्भ निशुम्भाभ्यां' (पांचवे अध्याय) से प्रारम्भ कर तेरहवें अध्याय की समाप्ति तक तथा पुनः प्रथम अध्याय से प्रारम्भ कर चौथे अध्याय (शक्रादिस्तव) की समाप्ति तक करना चाहिए।

संहार क्रम में पाठ सप्तशती के अन्तिम श्लोक से प्रारम्भ होकर प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक तक विलोम क्रम से करना चाहिए।

सांसारिक भोगों की कामना के लिए 'स्थिति-क्रम' पाठ, मुक्ति के लिए 'संहार-क्रम' पाठ तथा स्त्री पुत्र की कामना के लिए 'सृष्टि क्रम' से पाठ करने का विधान है।

पाठ के पहले तथा पश्चात् में नवाक्षर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए। इस प्रकार दोनों बार के मन्त्र जपों के मध्य चण्डी पाठ करना सम्पुट पाठ कहा जाता है। सकाम पाठ सम्पुट सहित तथा निष्काम पाठ (मुक्ति हेतु) बिना सम्पुट के करना चाहिए।

।। चण्डी-ध्यानम्।।

या चण्डी मधुकैटभप्रदलनी या माहिषोन्मूलिनी।
या धूम्रेक्षणचण्डमुण्डमथनी या रक्तबीजाशिनी।।
शक्तिः शुम्भनिशुम्भदैत्यदमनी या सिद्धिलक्ष्मीः परा।
सा देवी नवकोटिमूर्तिसहिता माम्पातु विश्वेश्वरी।।११।।

जो भगवती चण्डी (दुर्गा) मधु-कैटभ नाम वाले दैत्यों का दलन करने वाली, महिष नामक असुर का मूलोच्छेद करने वाली, सम्पूर्ण सैन्य बल सहित धूम्राक्ष, चण्ड तथा मुण्ड नामक दानवों का संहार करने वाली, रक्तबीज नामक असुर का विनाश करने वाली, शक्ति स्वरूपा, शुम्भनिशुम्भ का वध करने वाली, सिद्ध लक्ष्मी (महालक्ष्मी) नाम वाली तथा आदि शक्ति स्वरूपा है, वह देवी (विश्व-सृष्टि-स्थित-संहार करने वाली) विश्वेश्वरी अपने नवकोटि (करोड़ अथवा नव प्रकार की) मूर्तियों (स्वरूपों)सहित मेरी रक्षा करे।।११।।

।। चण्डीपाठे विनियोग:।।

''अस्य श्री सप्तशतीमहास्तोत्रस्य मेधातिथिऋषिर्गायत्र्यानुष्टुब् वृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती देवता: स्तवकं ऐं ह्रीं क्लीं बीजानि क्ष्रौं शक्ति: अमुककामना सिद्धये विनियोग:''। इत्यादिक्रमेण पठनीयम्।।१२।।

चण्डीपाठ से पूर्व साधक को उपर्युक्त रूप से विनियोग पढ़कर ऋषि-छन्दादि न्यास करके ध्यान मानसोपचार पूजनादि करना चाहिए। इससे पूर्व नवार्ण मंत्र का एक सौ आठ वार जप अवश्य कर लेना चाहिए।।१२।।

।। त्र्यम्बक-विधानम् ।।

।। त्रयम्बक मन्त्रस्य ऋषि छन्दादि वर्ण-पद न्यासा:।।

**अथात्र त्र्यम्बकं मन्त्रमभिधास्याम्यनुष्टुभा।
यं भजन्तं नरं काल: स्वयं वीक्षितुमक्षम:।।
वशिष्ठोऽस्य ऋषि: प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
देवतास्य समुद्दिष्टा त्र्यम्बक: पार्वतीपति:।।
विभक्तैर्मन्त्रवर्णै: स्यात् षडङ्गानां प्रकल्पना।
हृदयं त्रिभिराख्यातं चतुर्भि: शिर ईरितम्।।
शिखाष्टाभि: समुद्दिष्टा नवभि: कवचं मतम्।
पञ्चभिर्नेत्रमाख्यातमस्त्रं त्रिभिरुदाहृतम्।।
पूर्वपश्चिमयाम्येन्दुवक्त्रेषु तदनन्तरम्।
उरो गलास्येषु पुनर्नाभिहृत्पृष्ठकुक्षिषु।।
लिङ्गपायूरुमूलान्तर्जानुयुग्मं तत: परम्।
तद्हृत्तयुग्मस्तनयो: पार्श्वयो: पादयो: पुन:।।
पाण्योर्नासिकयो: शीर्षे मन्त्रवर्णान् न्यसेत् क्रमात्।
पदान्येकादश न्यसेत् शिरो भ्रूयुगलाक्षिषु।।
वक्त्रे गण्डयुगे भूयो हृदये जठरे पुन:।
गुह्योरुजानुपादेषु न्यासमेवं समाचरेत्।।१३।।**

अब अनुष्टुप् छन्द वाले त्रयम्बक मन्त्र के प्रयोग विधि का वर्णन किया जाता है। इस मन्त्र की साधना करने वाले साधक को स्वयं काल भी देखने में समर्थ नहीं है अर्थात् इसका साधक मृत्युञ्जय-स्वरूप हो जाता है।

इस मन्त्र के ऋषि वशिष्ठ, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता पार्वती पति त्र्यम्बक शिव कहे गये हैं। मन्त्र के वर्णो को तीन, चार, आठ, नौ, पाँच तथा तीन की संख्या में विभाजित करके साधक को षडङ्ग (हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र) न्यास करना चाहिए। इसके बाद साधक शरीर के भिन्न अङ्गों में वर्ण न्यास तथा पद न्यास करे।। १३।।

।। त्र्यम्बकप्रयोग:।।

शनैश्चरदिने अन्यदिने वा अश्वत्थवृक्षं स्पृष्ट्वा जपेत्।

तथाच -शनैश्चरदिनेऽश्वत्थमूलं स्पृष्ट्वा तु संजपेत्।
साक्षान्मृत्यो र्विमुच्येत काश्चान्याः क्षुद्रिकाः क्रियाः।।

शनिवार अथवा अन्य किसी भी दिन पीपल वृक्ष के समीप बैठकर उसका स्पर्श करते हुए इस 'त्र्यम्बक' मन्त्र का जप करना चाहिए। जो व्यक्ति शनिवार को पीपल-वृक्ष का स्पर्श करता हुआ इस मन्त्र जप करता है वह साक्षात् मृत्यु के मुख से भी मुक्त हो जाता है। छोटे-मोटे शारीरिक रोगों अथवा सङ्कटों से मुक्त होना तो सामान्य बात है।

तत्रादौ स्वास्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्य्यात्। यथा अद्येत्यादि अत्राश्वत्थमूले अमुकगोत्रस्य श्री अमुकदेवशर्मणो झटित्युत्पन्नरोगप्रशमनपूर्वक दीर्घजीवित्वकामोऽहम्।

''ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योमुक्षीयमामृतात्''।।

(शु० य० ऋक् ३/६०)

इति मन्त्रस्य इयत्संख्यकजपं करिष्ये। इति सङ्कल्प्याश्वत्थमूले आसने शिवलिङ्गं यथाविधि स्थापयित्वा भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा अर्घ्यपात्रं संस्थाप्य कृताञ्जलिन्यसेत्।

विनियोगः - **''त्र्यम्बकमन्त्रस्य वशिष्ठऋषिरनुष्टुप्छन्दस्त्र्यम्बको देवता अमुकस्योत्पन्नरोगप्रशमने विनियोगः।**

ऋष्यादिन्यास - **शिरसि वशिष्ठ ऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः। हृदि त्र्यम्बकाय देवतायै नमः''।**

कराङ्गन्यासौ- **''त्र्यम्बकं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। यजामहे तर्जनीभ्यां स्वाहा। सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं मध्माभ्यां वषट्। उर्वारुकमिव बन्धनात् अनामिकाभ्यां हुं। मृत्योर्मुक्षीय कनिष्ठाभ्यां वौषट्। मामृतात् करतल पृष्ठाभ्यां फट्।**

षडङ्ग न्यासः - **त्र्यम्बकं हृदयाय नमः। यजामहे शिरसे स्वाहा। सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनं शिखायै वषट्। उर्वारुकमिव बन्धनात् कवचाय हुं। मृत्योर्मुक्षीय नेत्रत्रयाय वौषट्। मामृतात् अस्त्राय फट्''। फडित्यूर्ध्वोर्ध्वतालत्रयं दत्त्वा छोटिकाभिर्दशदिशो बध्नीयात्।**

मन्त्रवर्णन्यासः - **त्र्यं पूर्वमुखे। म्बं पश्चिम मुखे। कं याम्यमुखे। यं उत्तरमुखे। जां वक्षसि। मं गले। हें ऊर्ध्वमुखे। सुं नाभौ। गं हृदि। न्धिं पृष्ठे। पुं कुक्षौ। ष्टिं लिङ्गे। वं पायौ। र्द्धं दक्षोरुमूले। नं वामोरुमूले। उं दक्षोरुप्रान्ते। र्वा वामोरुप्रान्ते। रुं दक्षजानुनि। कं वामजानुनि। मिं दक्षगुल्फे। वं वामगुल्फे। बं दक्षस्तने। न्धं वामस्तने। नां दक्षिणपार्श्वे। मृं वामपार्श्वे। त्यों दक्षपादे। र्मुं वामपादे। क्षीं दक्षहस्ते। यं वामहस्ते। मां दक्षिणनासायाम्। मृं वामनासायाम्। तां शीर्षे। त्र्यम्बकं शिरसि। यजामहे भ्रूयुगले। सुगन्धिं अक्षियुगले। पुष्टिं वक्त्रे। वर्द्धनं गण्डयुगले। उर्वारुक हृदये। मिव जठरे। बन्धनात् गुह्ये। मृत्यो उरुद्वये। र्मुक्षीय जानुद्वये।**

मामृतात् पादयोः''। इति विन्यस्य ध्यायेत्।।

इस मंत्र का प्रयोग (जप) कर्ता पहले ब्राह्मणों द्वारा स्वास्तिवाचन कराये फिर यथाविधि संकल्प करे – **ॐ अद्येत्यादि अत्राश्वस्थ मूले अमुक गोत्रस्य श्री अमुक (नाम) शर्मणो (वर्मणो, गुप्तस्य दासस्य वा) झटित्युत्पन्नरोगप्रशमनपूर्वक (तस्य) दीर्घजीवित्व कामोऽहम् (अमुक गोत्रोत्पन्नो अमुक शर्माऽहं)– ''ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।'' इति मंत्रस्य इयत संख्यक जपं करिष्यामि।**

(जव कर्म का फल अन्य के लिए हो तो कर्ता को 'करिष्यामि' तथा कर्म का फल स्वयं के लिए होने पर 'करिष्ये' का प्रयोग करना चाहिए।)

सङ्कल्प के पश्चात् साधक (जपकर्ता) पीपल के वृक्ष के समीप अधोभाग में उचित आसन पर यथाविधि शिव लिङ्ग स्थापित कर, स्वयं भी भूशुद्ध्यादि पूर्वक आसन पर बैठकर भूत शुद्धि, प्राणायामादि करके विनियोग करे।

विनियोग – **ॐ अस्य त्र्यम्बक मन्त्रस्य वशिष्ठ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः त्र्यम्बको देवता अमुकस्य (मम) रोग प्रशमने दीर्घायुश्च प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यासः

वशिष्ठ ऋषये नमः – शिरसि। **अनुष्टुप् छन्दसे नमः** – मुखे।
त्र्यम्बकाय देवतायै नमः – हृदि। **विनियोगाय नमः** – सर्वाङ्गे (अञ्जलौ वा)

	कर–न्यासः	षडङ्ग–न्यासः
त्र्यम्बकं	**अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।**	**हृदयाय नमः।**
यजामहे	**तर्जनीभ्यां स्वाहा।**	**शिरसे स्वाहा।**
सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं	**मध्यमाभ्यां वषट्।**	**शिखायै वषट्।**
उर्वारुकमिव बन्धनात्	**अनामिकाभ्यां हुं।**	**कवचाय हुम्।**
मृत्योर्मुक्षीय	**कनिष्ठाभ्यां वौषट्।**	**नेत्रत्रयाय वौषट्।**
मामृतात्	**करतलकर पृष्ठाभ्यां फट्।**	**अस्त्राय फट्।**

अस्त्राय फट् बोलकर ऊपर–ऊपर तीन ताल (हथेली द्वारा) बजाकर चुटकी बजाते हुए दशो दिशाओं में दिग् बन्धन करे।

मन्त्र वर्ण न्यासः

त्र्यं पूर्व मुखे। **म्बं** पश्चिम मुखे। **कं** दक्षिण मुखे। **यं** उत्तर मुखे।
जां वक्षसि। **मं** गले। **हें** ऊर्ध्व मुखे। **सुं** नाभौ।
गं हृदि। **न्धिं** पृष्ठे। **पुं** कुक्षौ। **ष्टिं** लिङ्गे।
वं पायौ। **र्द्धं** दक्षोरुमूले। **नं** वामोरुमूले। **उं** दक्षोरुप्रान्ते।
र्वा वामोरुप्रान्ते। **रुं** दक्ष जानुनि। **कं** वामजानुनि। **मिं** दक्षगुल्फे।
वं वामगुल्फे। **बं** दक्षस्तने। **न्धं** वामस्तने। **नां** दक्षिण पार्श्वे।
मृं वामपार्श्वे। **त्यों** दक्षपादे। **र्मु** वाम पादे। **क्षीं** दक्ष हस्ते।
यं वाम हस्ते। **मां** दक्षिण नासायां। **मृं** वामनासायां। **तां** शीर्षे।

पद न्यासः

त्र्यम्बकं शिरसि। **यजामहे** भ्रूयुगले। **सुगन्धिं** अक्षियुगले। **पुष्टि** वक्त्रे।
वर्द्धनं गण्डयुगले। **उर्वारुक** हृदये। **मिव** जठरे। **बन्धनात्** गुह्ये।
मृत्यो उरुद्वये। **र्मुक्षीय** जानुद्वये। **मामृतात्** पादयोः।

इस प्रकार सभी न्यास करके देवता का ध्यान करे।

।। देवता (त्र्यम्बक शिव) ध्यानम्)।।

हस्ताभ्यां कलसद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे।।

भगवान शिव (त्र्यम्बक) श्वेत कमल के आसन पर विराजमान हैं। उनके सिर पर द्वितीया का चन्द्र मुकुट रूप से सुशोभित है। वे त्रिनेत्रधारी हैं। कैलाश पर निवास करना उन्हें प्रिय है अथवा जो कैलास के स्वामी हैं। इन भगवान शिव के आठ हाथ हैं। दो दो हाथों से दो कलशों को ऊपर उठाये हुए उसके अमृत रूपी जल से अपने शिर का अभिषेक कर रहे हैं। एक हाथ मृग मुद्रा में तथा एक में अक्ष माला लिये हुए हैं। शेष दो हाथों में अमृत कलश पकड़े हुए अपनी गोद में रखे हैं।

।। शिव लिङ्ग पूजनम्।।

एवं ध्यात्वा शिवलिङ्गं संस्थाप्यावाह्य षोडशोपचारैराराध्य अङ्गानि पूजयेत्।- "ॐ अर्कमूर्त्तये नमः, एवं इन्दुमूर्त्तये, वसुधामूर्त्तये, तोयमूर्त्तये, वह्निमूर्त्तये, वायुमूर्त्तये, आकाशमूर्त्तये, यजमानमूर्त्तये। एवं रमायै राकायै प्रभायै ज्योत्सनायै पूर्णायै उमायै पूषायै स्वधायै विश्वायै विद्यायै सितायै श्रद्धायै सारायै सन्ध्यायै शिवायै निशायै आर्य्यायै प्रज्ञायै मेधायै कान्त्यै काल्यै धृत्यै मत्यै उमायै पावन्यै पद्मायै शान्तायै मेधायै जयायै अमलायै" सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्।

एवं - "ॐ इन्द्राय वज्रहस्ताय नमः। ॐ अग्नये शक्तिहस्ताय नमः। ॐ यमाय दण्डहस्ताय नमः। ॐ निर्ऋतये खड्गहस्ताय नमः। ॐ वरुणाय पाशहस्ताय नमः। ॐ वायवे ध्वजहस्ताय नमः। ॐ सोमाय गदाहस्ताय नमः। ॐ ईशानाय शूलहस्ताय नमः। (ऊर्ध्वे) ॐ ब्रह्मणे पद्महस्ताय नमः। (अधः) ॐ अनन्ताय चक्रहस्ताय नमः"। एवं पूजयित्वा समापयेत्।।

इस प्रकार शिव का ध्यान करके, शिव लिङ्ग की स्थापना कर (अथवा पूर्व स्थापित लिङ्ग में) आवाहन करके उनका षोडशोपचार पूजन करे। इसके बाद लिङ्ग के चारों ओर शिवाष्ट मूर्तियों का वामावर्त क्रम (पूर्वादि) से पूजन करे। यथा –

ॐ शर्वाय वसुधा मूर्तये नमः। ॐ भवाय तोय मूर्त्तये नमः।
ॐ रुद्राय वह्नि मूर्त्तये नमः। ॐ उग्राय वायु मूर्त्तये नमः।
ॐ भीमाय आकाश मूर्त्तये नमः। ॐ पशुपतये यजमान मूर्त्तये नमः।

ॐ महादेवाय इन्दु मूर्तये नमः। ॐ ईशानाय अर्क मूर्तये नमः।

इसके बाद शक्तियों का पूजन करे। यथा –

ॐ रमायै नमः। ॐ राकायै नमः। ॐ प्रभायै नमः। ॐ ज्योत्सनायै नमः। ॐ पूर्णायै नमः। ॐ उमायै नमः। ॐ पूषायै नमः। ॐ स्वधायै नमः।

ॐ विश्वायै नमः। ॐ विद्यायै नमः। ॐ सितायै नमः। ॐ श्रद्धायै नमः। ॐ सारायै नमः। ॐ सन्ध्यायै नमः। ॐ शिवायै नमः। ॐ निशायै नमः। ॐ आर्यायै नमः। ॐ प्रज्ञायै नमः। ॐ मेधायै नमः। ॐ कान्त्यै नमः। ॐ काल्यै नमः। ॐ धृत्यै नमः। ॐ मत्यै नमः। ॐ उमायै नमः। ॐ पावन्यै नमः। ॐ पद्मायै नमः। ॐ शान्तायै नमः। ॐ मेधायै नमः। ॐ जयायै नमः। ॐ अमलायै नमः।

इसके बाद पूर्वादि क्रम से पीठ के चारों ओर लोकपालों का अर्चन करे।

ॐ इन्द्राय वज्रहस्ताय नमः। ॐ अग्नये शक्ति हस्ताय नमः। ॐ यमाय दण्ड हस्ताय नमः। ॐ निर्ऋत्ये खड्ग हस्ताय नमः। ॐ वरुणाय पाश हस्ताय नमः। ॐ वायवे ध्वज हस्ताय नमः। ॐ सोमाय गदा हस्ताय नमः। ॐ ईशानाय शूल हस्ताय नमः। ॐ ब्रह्मणे पद्म हस्ताय नमः (ईशान-पूर्व मध्य)। **ॐ अनन्ताय चक्र हस्ताय नमः** (निर्ऋति-पश्चिम मध्य)।

इस प्रकार समस्त पूजन सम्पन्न करे।

एवं कृते प्रयोगार्हो जायतेऽसौ महामनुः।

इस प्रकार शिव लिङ्ग का विधिवत पूजन करके साधक (जपकर्ता) इस महामन्त्र के प्रयोग का अधिकारी हो जाता है।

ततः स्तुत्वा वामहस्तेन अश्वत्थमूलं संस्पृश्य ''ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्'' इति गायत्रीं यथाशक्ति जप्त्वा ऋष्यादिकं स्मृत्वा यथाऽभिलषितं मूल-मन्त्रं सहस्रं अयुतं लक्षं वा जपेत्। ततोऽर्घ्यजलेन ''ॐ गुह्याति'' इत्यादिना जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणमेत्। ततो विसृज्य दक्षिणां दत्त्वा शान्त्याशीर्वादञ्च कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्।

समस्त पूजन क्रिया करने के अनन्तर पुनः शिव का ध्यान करके रुद्र गायत्री **''ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेव धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।''** का एक सौ आठ बार जप, पीपल के मूल को स्पर्श करते हुए करे। इसके बाद फिर से ऋष्यादि न्यास करके सङ्कल्पानुसार मूल मन्त्र का एक हजार, दश हजार अथवा एक लाख की संख्या में जप करें। मन्त्र जप पूर्ण होने पर **''ॐ गुह्याति गुह्य''** इत्यादि द्वारा जप का समर्पण, दाहिने हाथ में (पूर्व स्थापित) अर्घ्य जल तथा अक्षत लेकर, देवता के दाहिने हाथ में करे। इसके बाद देवता की स्तुति प्रणाम करके उसका विसर्जन कर दे। यजमान ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन पूर्वक आशीर्वाद ग्रहण कर उन्हें दक्षिणा प्रदान करे। जपकर्ता ब्राह्मण (ब्राह्मणों) सहित अन्य ब्राह्मणों को भी, यजमान भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे।

।। जप-फल-श्रुति।।

शनैश्चरदिनेऽश्वत्थमूलं संस्पृश्य संजपेत्।
साक्षान्मृत्योर्विमुच्येत किं पुनस्त्वपमृत्युत:?।।
स्नात्वा सहस्रं प्रजपेदादित्याभिमुखो मनुम्।
आधिव्याधिविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात्।।
प्रत्यहं जुहुयान्मन्त्री दूर्वया अयुतावधि।
आमयान्निखिलान् जित्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात्।।
वटवृक्षस्य समिधो जुहुयादयुतावधि।
धनधान्यसमृद्धः स्यादचिरेणैव साधकः।।१४।।

जो व्यक्ति शनिवार को पीपल मूल का स्पर्श करते हुए इस त्र्यम्बक मन्त्र का जप करता है वह साक्षात् मृत्यु से भी मुक्त हो जाता है, फिर अपमृत्यु (अकाल मृत्यु) से बचना तो सामान्य बात है।

जो व्यक्ति नित्य स्नान करके सूर्य की ओर मुख करके उसेदेखतेहुए (अथवा पूर्व की ओर मुख करके) इस मन्त्र का एक हजार जप करता है, वह समस्त शारीरिक व मानसिक रोगों से मुक्त होकर दीर्घ आयु प्राप्त करता है।

इस मंत्र से प्रतिदिन दूर्वा खण्डों द्वारा दश हजार आहुतियों के प्रदान से हवन करने वाला व्यक्ति समस्त रोगों (तथा मानसिक व्यथाओं एवं दोषों) पर विजय प्राप्त कर दीर्घजीवी होता है।

बरगद की समिधा द्वारा प्रतिदिन दश हजार आहुति पूर्वक हवन करने वाला साधक शीघ्र ही धन-धान्य सम्पन्न हो जाता है।।१४।।

मृतसञ्जीवनी विधानम्

।। मन्त्रोद्धार:।।

आदौ प्रासादबीजं तदनुमृतिहरं तारकं व्याहृतीश्च
प्रोच्चार्य्य त्र्यम्बकं यो जपति च सततं सम्पुटं चानुलोमम्।
सिध्येयुः तस्य सम्यक् स्वहृदयनिहिताः कामनाः शुद्धसत्त्वाः
देहं सन्त्यज्यसिद्धः हरिहरसहितं स्थाणुलोकं प्रयाति।।

मन्त्रस्तु –**''हौं ओं जुं सः ओं भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे। सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् हौं ओं जुं सः''**

पहले प्रासाद बीज 'हौं' फिर मृत्यु निवारक 'ओं जूं स:', 'ॐ' तथा व्याहतियों 'भू: भुव: स्व' के पश्चात् त्र्यम्बक मन्त्र पुन: अनुलोम रुप से चारों बीजों ''हौं ॐ जूं स:'' का समायोजन कर सम्पुटित रुप से इस मन्त्र का जो नित्य जप करता है उसकी सभी हृदयस्थ कामनायें अवश्य ही पूर्ण होती है। निरन्तर साधना के फलस्वरूप उस साधक का अन्त: करण शुद्ध हो जाने पर शरीर त्याग के पश्चात् वह शिव तथा विष्णु के अचल लोक 'परम धाम' को प्राप्त करता है।

मन्त्र – **"हौं ॐ जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् हौं ॐ जूं सः।।"**

।। मृतसञ्जीवन्याः अन्य स्वरूपम्।।

वेदादिभूरादिपदत्रयञ्च मध्ये जपेन्मृत्युहरं त्रियम्बम्।
जपेत् फलार्थी विधिवत्प्रजप्य प्रासादमृत्युञ्जयसम्पुटेन।।

मन्त्रस्तु - **"ओं भूर्भुवः स्वः ओं जुं सः त्रयम्बकमित्यादि हौं ओं जुं सः"।।१५।।**

उपर्युक्त मन्त्र के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार से भी त्र्यम्बक मन्त्र को सम्पुटित करके जप किया जा सकता है। इस विधि में पहले वेदादि 'ॐ' फिर व्याहृति पुनः मृत्युहर मन्त्र "ॐ जूं सः" इसके बाद त्र्यम्बक मन्त्र का उच्चारण कर इसे प्रासाद बीज 'हौं' तथा मृत्युञ्जय (मृत्यु हर) मन्त्र से सम्पुटित कर दें।।१५।।

मन्त्र – **"ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ जूं सः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् हौं ॐ जूं सः।"**

।। शुक्रोपासितमृतसञ्जीवनी विद्या।।

गायत्री प्रथमं पादं त्र्यम्बकपादैकम्। गायत्री द्वितीयपादं त्र्यम्बकद्वितीयं पादम्। गायत्री तृतीयपादं त्र्यम्बकशेषपादम्।

मन्त्रो यथा – **"ओं तत्सवितुर्वरेण्यं त्र्यम्बकं यजामहे भर्गो देवस्य धीमहि सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनं धियो यो नः प्रचोदयात् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्"।।१६।।**

ब्रह्म गायत्री के तीनों पादों से गुम्फित त्र्यम्बक मन्त्र, जिसे मृत सञ्जीवनी विद्या (मन्त्र) भी कहते हैं, शुक्राचार्य द्वारा सर्वप्रथम उपासित है। पूर्व कथित दोनों मन्त्रों के स्थान पर इस मन्त्र का भी प्रयोग सर्वव्याधि हरण, अपमृत्यु निवारण तथा अभीष्ट सिद्धि हेतु किया जाता है। मन्त्र का स्वरुप मूल में स्पष्ट है।।१६।।

।। अन्यप्रकारमृतसञ्जीवनीविद्या।।

"ओं जुं[1] सः मां जीवय पालय"।

तथाच कल्पसूत्रे – **प्रणवकाष्टमं सदक्षश्रुतिबिन्दुभृगु षोडशस्वरमापदाज्जीवय पालयेति दशार्णो मृत्योरपि मृत्युरेषा विद्या।**

।। त्र्यम्बक–ध्यानम्।।

"स्वच्छं स्वच्छारविन्दस्थितमुभयकरे संस्थितौ पूर्णकुम्भौ
द्वाभ्यामेणाक्षमाले निजकरकमले द्वौ घटौ नित्यपूर्णौ।
द्वाभ्यां तौ च श्रवन्तौ शिरसि शशिकला चामृतैः प्लावयन्तम्
देहं देवो दधानो विदिशतु विशदां कल्पकालं श्रियं नः"।।

एवं ध्यात्वा कल्पितमूर्त्तावावाह्य "ॐ त्र्यम्बकाय महारुद्राय नमः"। इत्यनेनोपचारैः पूजयेत्।।१७।।

कल्प सूत्र में एक अन्य प्रकार का मृत सञ्जीवनी मन्त्र वर्णित है। पहले

---

[1] मन्त्रों में 'जुं' तथा 'जूं' दोनों रुप प्राप्त होते हैं।

प्रणव ‘ॐ’ फिर आठवाँ व्यञ्जन ‘ज्’ से इसे दक्ष श्रुति ‘उ’ तथा बिन्दु युक्त करें (जुं) इसके बाद भृगु ‘स्’ को सोलहवें स्वर विसर्ग से युक्त (सः) करके ‘माम्’, ‘जीवय’ तथा ‘पालय’ पदों का समायोजन करने पर निम्न रूप से दशाक्षर मन्त्र प्राप्त होता है–

‘‘ॐ जुं सः मां जीवय पालय।’’

यह विद्या मृत्यु (काल) को भी मारने में समर्थ है। इसका विधिवत् नित्य जप करने वाला साधक मृत्यु को भी जीतकर शुक्राचार्य की भाँति अमर भी हो सकता है।

मन्त्र जप से पहले देवता त्र्यम्बक (शिव) का ध्यान इस प्रकार करे -

भगवान शिव की अङ्ग कान्ति शुभ्र (स्फटिक के समान) हैं। वे श्वेत कमल के आसन पर विराजमान है। इनके आठ हाथ है। दो हाथों से मृग मुद्रा तथा अक्षमाला धारण किये हैं। दो हाथों में अमृत से भरा हुआ कलश लिये अपनी गोद में रखे हुए हैं तथा शेष दो दो हाथों से जल से भरे हुए दो कुम्भों (कलशों) द्वारा स्वयं का अभिषेक कर रहे हैं। सिर पर स्थित अर्द्धचन्द्र से झरती हुई अमृत की बूँदों से सारा शरीर आप्लावित है। ऐसे भगवान शिव हम सब (भक्तों) को अनन्त कल्पों तक ऐश्वर्य प्रदान करने की कृपा करें।

इस प्रकार शिव का ध्यान करके स्वनिर्मित शिवलिङ्ग अथवा मूर्ति में शिव का आवाहन, स्थापनादि करके ‘‘ॐ त्र्यम्बकाय महारुद्राय नमः’’ इस मन्त्र द्वारा षोडशोपचार (अथवा सामर्थ्य एवं उपलब्ध द्रव्य के अनुसार) पूजन करे। पहले से स्थापित एवं प्राण प्रतिष्ठित लिङ्ग अथवा मूर्ति के पूजन में आवाहन की आवश्यकता नहीं है।

।। मृत्युञ्जय प्रयोगः।।

तत्र प्रथमं स्वस्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्य्यात्। यथा - अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्मणो जीववच्छरीराविरोधेन झटिति उत्पन्नरोगोपशमनकामनया त्र्यक्षरमृत्युञ्जयमन्त्रलक्षत्रयजपमहं करिष्यामि’’। ततो भूतापसारणासनादिशोधनं भूतशुद्धिप्राणायामं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्य्यात्। ‘‘शिरसि कहोलऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः हृदि मृत्युञ्जयाय देवतायै नमः’’। ततः कराङ्गन्यासौ। ‘‘सां अंगुष्ठाभ्यां नमः’’ इत्यादि। एवं ‘‘सां हृदयाय नमः’’ इत्यादि।

समस्त शारीरिक व्याधियों के शीघ्र शमन के लिए साधक (ब्राह्मण) को मृत्युञ्जय मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए पहले संकल्प करे। यथा–

‘‘ॐ अद्येत्यादि अमुक गोत्रस्य श्री अमुक (नाम) शर्मणो (वर्मणो, गुप्तस्य दासस्य वा) जीववच्छरीराविरोधेन झटिति उत्पन्नरोगोपशमनकामनया त्र्यक्षर मृत्युञ्जय मन्त्रस्य लक्ष त्रय जपं अमुक गोत्रस्य अमुक शर्माऽहं करिष्यामि।’’

इसके बाद भूतापसारण, भू-शुद्धि, आसन शोधन, भूत शुद्धि प्राणायामादि विधिवत् करके जपकर्ता, विनियोग पढ़कर विभिन्न न्यासों को करे। यथा -

विनियोग - **ॐ अस्य त्र्यक्षरमृत्युञ्जय मन्त्रस्य कहोल ऋषि, (देवी) गायत्री छन्दः मृत्युञ्जयो रुद्र (सदाशिव) देवता, जुं बीजं, सः शक्तिः ॐ कीलकं मम (यजमानस्य**

वा) सर्व शारीरिक रोग शमनार्थे (सर्वारिष्टाल्पमृत्युनाशार्थे वा) जपे विनियोगः।
ऋष्यादि न्यासः - **कहोल ऋषये नमः - शिरसि। (देवी) गायत्री छन्दसे नमः - मुखे। श्री मृत्युञ्जय देवतायै नमः - हृदि। जुं बीजाय नमः - गुह्ये। सः शक्तये नमः - पादयोः। ॐ कीलकाय नमः - सर्वाङ्गे।**

इसके पश्चात् ''सां सीं सूं इत्यादि'' से कर-षडङ्ग न्यास करे।

।। मृत्युञ्जय रुद्र (सदाशिव)ध्यानम्।।

''चन्द्रर्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तः स्थितम्
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम्।
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलम्
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये''।।

एवं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसपूजां कृत्वा विशेषार्घ्य स्थापनं शैवोक्तपीठपूजान्तं विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाह्य यथाशक्त्युपचारैः सम्पूज्य आवरणदेवताः पूजयेत्। ''सां हृदयाय नमः'' इत्यादि षडङ्गं सम्पूज्य इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत्। ततो जपेत्। मन्त्रस्तु- ''ॐ जुं सः''। अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ततस्तद्दशांशक्रमेण होमादिकं कुर्य्यात्।

न्यास करने के पश्चात् भगवान शिव (मृत्युञ्जय) का इस प्रकार ध्यान करें-

भगवान शिव के शरीर की आभा चन्द्रमा के समान शुभ्र है। शरीर पर हार कुण्डलादि आभूषण धारण किये हुए हैं। मस्तक पर चन्द्र, अग्नि और सूर्य स्वरूप तीन नेत्र हैं। वे प्रसन्नमुख हैं तथा अपने चार हाथों में क्रमशः अभय मुद्रा, पाश, मृगमुद्रा तथा अक्ष माला धारण किये हुए हैं। सारा शरीर करोड़ों चन्द्रमाओं से स्रवित अमृत द्वारा भीगा हुआ है। दो पुटित कमलों के मध्य में बैठे हुए वे अपने सौंदर्य से सारे विश्व को मोहित कर रहे हैं। ऐसे स्वरूप वाले पशुपति (समस्त जीवों के स्वामी) भगवान मृत्युञ्जय का ध्यान करना चाहिए। (स्वयं ध्यान करते समय साधक 'भावये' के स्थान पर 'भावयामि' का प्रयोग करे।)

इस प्रकार ध्यान करके साधक अपने सिर पर पुष्प रखकर (भावना यह करे कि यह पुष्प हृदय में स्थित देवता को अर्पित किया जा रहा है) मानसोपचार पूजन करके विशेषार्घ्य की स्थापना करे। इसके बाद शैवोक्त पीठ पूजन कर पुनः ध्यान तथा आवाहन करके यथाशक्ति उपलब्ध उपचारों द्वारा शिवलिङ्ग (मूर्ति) का पूजन करके आवरण देवताओं (अष्ट शिव मूर्तियों) का पूजन करे। **'सां हृदयाय नमः'** इत्यादि षडङ्ग मंत्रों से लिंङ्ग (अथवा यन्त्र) का षडङ्ग पूजन करके पूर्वादि क्रम से इन्द्रादि लोकपालों का उनके आयुधों वज्रादि सहित पूजन करे। इसके बाद मन्त्र - **''ॐ जुं सः''** का जप करे।

इस मन्त्र का पुरश्चरण एक लाख (तीन लाख) जप द्वारा सम्पन्न होता है। जप के पश्चात् दशांश क्रम से होम तर्पणादि क्रियायें करनी चाहिए।

''गुणलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं विशालधीः।

जुहुयादमृताखण्डैः शुद्धदुग्धाज्यमिश्रितैः''॥१८॥

बुद्धिमान साधक को मन्त्र का तीन लाख जप करके उसका दशांश तीस हजार हवन करना चाहिए। हवन कार्य गुडुची, शुद्ध दुग्ध तथा घृत के मिश्रण द्वारा करना चाहिए॥१८॥

॥ शूलरोग प्रतिकारः॥

''ओमद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य श्रीअमुक देवशर्मणः शूलरोगप्रतिकारकामनया 'ॐ मीढुष्टम' इत्यादि ''पिनाकं विभ्रदागहि'' इत्यन्तं मन्त्रं ''सहस्रम् अयुतं लक्षं वा जपमहं करिष्यामि'' इति सङ्कल्पय शिवलिङ्गे त्र्यम्बकविधाने सम्पूज्य इमं मन्त्रं जपेत्। - ''ॐ मीढुष्टमः शिवतमः शिवोनः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृतिं वसान आचर पिनाकं विभ्रदागहि'' (शु०य०मन्त्र १६/५१)। इति जप्त्वा दक्षिणां कुर्य्यात्॥१९॥

शूल रोग (शारीरिक पीड़ा) के निवारण के लिए साधक उपर्युक्त (मूल में लिखित) प्रकार से (ॐ अद्येत्यादि......करिष्यामि) सङ्कल्प करके निम्न मन्त्र का जप करे। जप से पूर्व त्र्यम्बक विधान में उल्लिखित विधि से शिव लिङ्ग का विधिवत पूजन करना चाहिए।

मन्त्र - **''ॐ मीढुष्टमः शिवतमः शिवोनः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधान्निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकं विभ्रदागहि॥'' (शु०य०मन्त्र १६/५१)**

मन्त्र जप के पश्चात् यजमान ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करे। यदि व्यक्ति स्वयं अपने लिए जप कर रहा हो तो भी श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान सहित भोजन करायें॥१९॥

॥ गर्भजनन (सुख प्रसव) उपायः॥

''ॐ मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्य्येण रश्मयः। मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि मारीच मारीच स्वाहा''। अनेन मन्त्रेण जलमष्टवारमभिमन्त्रय गर्भिण्यै देयम्। तदा सुख प्रसवो भवत। मन्त्रान्तरम्- ''ॐ मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि लम्बोदर मुञ्च मुञ्च स्वाहा''। एवं जपनात् सुप्रसवो भवति॥२०॥

प्रसवकाल होने पर भी यदि किसी गर्भिणी स्त्री को अत्यधिक पीड़ा हो रही हो तथा प्रसव में विलम्ब हो रहा हो तो निम्न मन्त्रों के जप तथा उससे आठ बार अभिमन्त्रित जल का पान गर्भिणी स्त्री को कराने से शीघ्र ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

१. मन्त्र - **''ॐ मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः। मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एहि एहि मारीच मारीच स्वाहा।''**

२. मन्त्र - **''ॐ मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि लम्बोदर मुञ्च मुञ्च स्वाहा॥''**

(प्रथम मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित जल पिलाये अथवा दूसरे मन्त्र का केवल जप करे, मूल में इस प्रकार का विधान है।)

॥ निगडभञ्जनम्॥

"ॐ नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम्। यमेन त्वं यम्यासं विदानोत्तमेनाकेऽअधिरोहयैनम्" (शु०य० मन्त्र १२/६३)। अस्य निगड़भञ्जन मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्निर्ऋतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दो बन्धनादिव्यसनपरिहारार्थे विनियोगः। निगड़बन्धनोपरुद्धो व्यसनपतितो वा अयुतजपेन व्यसनान्मुच्यते, निगड़ादिस्खलनञ्च भवति।

बेड़ी-जञ्जीर आदि के अथवा बुरी आदतों (जुआ, शराब आदि) के बन्धन से मुक्ति पाने के लिए इस मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिए। पहले मूल के अनुसार (अस्य निगड से प्रारम्भ करके विनियोगः तक) बोलकर मन्त्र का विनियोग करे। इसके पश्चात् मन्त्र (मूल में उल्लिखित ॐ नमः से लेकर रौहयैनम् तक) जप करे।

"ॐ उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।
धनं सनिष्यन्ती नामात्मानं तव पूरुष" (शु०य० मन्त्र १२/८२)।
बन्धनस्थो जपेदयुतं तदा मुक्तो भवति॥२१॥

अथान्यप्रकारनिगड़भञ्जनम्। "ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य झटिति निगड़भञ्जनकामनया 'ॐ ह्रीं निगड़भञ्जनि महामाये! ईं एतन्मन्त्रमद्यारभ्य निशायामष्टोत्तरसहस्रजपमहं करिष्यामि" इति सङ्कल्प्य प्रत्यहं निशायां एतन्मन्त्रं जपेत्ततो निगड़भञ्जनं भवति॥२२॥

'ॐ उच्छुष्मा" इत्यादि (मूल में लिखित मन्त्र) का भी दश हजार जप करने से बन्धन से मुक्ति प्राप्ति होती है।।२१।।

अब एक अन्य प्रकार के निगडभञ्जक मन्त्र प्रयोग का वर्णन किया जाता है। साधक पहले "ॐ अद्येत्यादि " (मूल में लिखित) रूप से सङ्कल्प करे। इसके पश्चात् प्रतिदिन रात में मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करे। इससे भी बन्धन मुक्ति होती है। मन्त्र का जप कार्य सिद्धि होने तक करना चाहिए। मन्त्र - "ॐ ह्रीं निगडभञ्जनि महामाये ईं"।।२२।।

॥ वृष्टिकरणम्॥

ॐ पुष्करावर्त्तकैर्मेघैः प्लावयन्तं वसुन्धराम्।
विद्युद्गर्जितसन्नद्धतोयात्मानं नमाम्यहम्॥
यस्य केशेषु जीमूतो नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः॥

इति ध्यात्वा आवाह्य वरुणमुपचारैः पूजयित्वा मूलमन्त्रं जपेत्। प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टप्छन्दो वरुणो देवता एतद्राज्यमभिव्याप्य सुवृष्टयर्थं जपे विनियोगः। मन्त्रस्तु - वं गुरुमुखाज्ज्ञेयः।

नाभिमात्रजले स्थित्वा जपेन्मन्त्रं प्रसन्नधीः।
जपेत् वसुसहस्रञ्च त्रिदिनं व्याप्य यत्नतः॥
अथवा- **षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं तदा वृष्टिर्भवेद् ध्रुवम्॥२३॥**

किसी राज्य, क्षेत्र आदि में यदि समय से वर्षा न हो रही हो तथा सूखे की

स्थिति हो तो इस 'वृष्टि कारक' प्रयोग को करना चाहिए। पहले साधक विनियोग करे, यथा-

ॐ अस्य वरुण बीज मन्त्रस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः वरुणो देवता एतद्राज्यमभिव्याप्य सुवृष्ट्यर्थ जपे विनियोगः। इसके पश्चात् ऋष्यादि न्यास करके ॐ पुष्करावर्त्तकैः से प्रारम्भ कर तस्मै तोयात्मने नमः (मूल में लिखित रुप से) तक पढ़कर वरुण देवता का ध्यान करे। यथा- पुष्करावर्त्तक मेघों के द्वारा पृथ्वी को जल से भिगो देने वाले, विद्युत तथ गर्जना से युक्त जल के आत्मस्वरूप उन वरुण देवता को मैं प्रणाम करता हूँ जिनके केशों में बादल, सर्वाङ्गों तथा सन्धियों में नदियाँ तथा उदर में चारों समुद्र स्थित हैं। तत्पश्चात् मानसिक आवाहन पूजन करके किसी तालाब अथवा नदी में नाभि के बराबर जल में खड़े होकर मन्त्र का आठ हजार जप तीन दिनों में पूरा करे। अथवा एक ही दिन में छः हजार जप पूरा करे तो अवश्य ही वर्षा होती है।

मन्त्र - 'वं' (अथवा वं वरुणाय नमः)। मन्त्र को पहले गुरुमुख से ग्रहण करना चाहिए।।२३।।

।। शीर्षादिरोगनिवारणम् -आथर्वणोक्तमन्त्राः।।

शीर्षामयं शीर्षशक्तिं कर्णशूलं तृतीयकम्।
सर्वशीर्षाण्यन्तरे तं वहिर्निर्मन्त्रयामहे।।१।।
कुर्पाण्यन्ते कङ्कुशेभ्यः शक्तिवश्यं विलोहितम्।
सर्वशीर्षाण्यन्तरे तं वहिर्निमन्त्रयामहे।।२।।
यातं प्रमदबन्धञ्च कृणोति पुरुषश्च यः।
सर्वशीर्षाण्यन्तरे तं वहिर्निर्मन्त्रयामहे।।३।।
यस्य होतोः प्रच्यवते यक्ष्मा नासात आस्यतः।
सर्वशीर्षाण्यन्तरे तं वहिर्निर्मन्त्रयामहे।।४।।
शीर्षरोगमङ्गरोगं विश्वाङ्गानं विसर्पकम्।
सर्वशीर्षाण्यन्तरे तं वहिर्निर्मन्त्रयामहे।।५।।
यस्य भीमप्रतीकाशं तद्द्वपयन्ति पूरुषाः।
तलं शीतकवातञ्च वहिर्निर्मन्त्रयामहे।।६।।
जातकेऽनुपसर्गीभूतेऽत्रेति गवीनिके।
वेलासमन्तरङ्गेभ्यो वहिर्निर्मन्त्रयामहे।।७।।
यदि कामातुरः कामं हृदयार्थतयोपरि।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो वहिर्निर्मन्त्रयामहे।।८।।
आसो बलासो भवतु सूत्रे भवतु चामयम्।
यक्ष्मादीनां हि सर्वेषां सहन्तु च निशे विषम्।।९।।

इत्याथवर्णोक्तसर्वरोगप्रतीकारः।

इति श्रीकृष्णविद्यावागीशभट्टाचार्य्यकृतायां षट्कर्मदीपिकायां
नानाप्रकारशान्तिनियमतृतीयोद्देशः।

अथर्ववेदोक्त उपर्युक्त नौ मन्त्र श्लोकों का जप करने से शिरोरोग सहित सभी शारीरिक रोगों का भी शमन हो जाता है।

।।श्री कृष्णानन्द विद्यावागीश भट्टाचार्य कृत षट्कर्म दीपिका में नाना प्रकार के शान्तिनियम नामक तृतीयोद्देश की 'अंजलि' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ चतुर्थोद्देशः

वशीकरणम्

।। वशीकरण कज्जल प्रयोग विधिः।।

अथ वक्ष्यामि मन्त्राभ्यां वशीकरणमुत्तमम्।
येन विज्ञानमात्रेण वशीकुर्य्यान्नरं स्त्रियम्।।
कृताञ्जलिः शिखशिखा विभीता गिरिकर्णिका।
चाण्डालीसहिताः पिष्ट्वा पट्टे क्षीरपरिप्लुता।।
तेन संलिप्य पङ्केन पट्टवस्त्रस्य वर्त्तिकाम्।
कारयित्वाब्जसूत्रेण पूर्णगर्भां सुरक्षिताम्।।
एकवर्णागवीदुग्धकृताज्यदीपपूरितम्।
कज्जलं ऋजुके कार्य्यं कज्जलं नरसङ्कुले।।
सम्पूज्य भैरव देवं चतुर्दश्यां निशागमे।
कज्जलं पातितं ग्राह्यं तेन वश्यं जगद्भवेत्।।
नरञ्च वनिताञ्चैव यमिच्छति नरोत्तमम्।
अतःपरतरं वश्यं न भूतं न भविष्यति।।
भाषितं भैरवे तन्त्रे गोपनीयं प्रयत्नतः।
क्रूरे च चुम्बके दुष्टे निन्दके चपलेष्वपि।
अस्य वश्यप्रभावं हि वर्णितुं न च शक्यते।।
देवदेवेन देवेभ्यो वशीकरणमुत्तमम्।
एतद् योगप्रभावेण ब्रह्माद्या मुनयः सुराः।।१।।

अब मन्त्रों (एवं प्रयोगों) द्वारा वशीकरण विधि का वर्णन किया जा रहा है। इस प्रयोग विधि के ज्ञान मात्र से ही साधक स्त्री तथा पुरुषों का सम्यक रुप से वशीकरण करने योग्य हो जाता है।

इस प्रयोग के लिए साधक लाजवन्ती, अपामार्ग की जटा, बहेड़ा, अपराजिता तथा चाण्डाली (लता विशेष) इन सबको दूध में भली भाँति एक साथ मिलाकर पीस कर चटनी की भाँति बना ले। इस पिसे हुए पदार्थ को एक कपड़े के टुकड़े पर लेपन करके उसके द्वारा बत्ती बनाये। इस बत्ती के ऊपर कमल नाल के मध्य में होने वाले सूत्र (रेशे) को लपेट दे। इसके बाद एक रंग वाली गाय के दूध से निर्मित घी के द्वारा इस बत्ती से दीप प्रज्ज्वलित करे। इस दीपक की शिखा पर कोई मृत्-पात्र अथवा नर-कपाल उल्टा रखकर काजल तैयार करें। चतुर्दशी की रात में भैरव की पूजा करने के बाद ही काजल बनाना चाहिए। इस काजल के प्रयोग द्वारा साधक सारे संसार को वशीकृत कर सकता है। वह जिस भी स्त्री अथवा पुरुष की इच्छा करता है, वह उसके वशीभूत हो जाता है। इस वशीकरण कारक प्रयोग से श्रेष्ठ अन्य कोई प्रयोग न तो पहले कभी था और न ही भविष्य में कभी होगा। भैरव तन्त्र में

स्वयं भगवान शिव ने इस प्रयोग को कहा है। इसका ज्ञान यत्लपूर्वक गुप्त ही रखना चाहिए। क्रूर, कामुक, दुष्ट, निन्दक तथा चञ्चल स्वभाव वाले व्यक्तियों के निकट इसका वर्णन नहीं करना चाहिए। इस सर्वोत्तम वशीकरण प्रयोग के प्रभाव का वर्णन करने में देवता भी असमर्थ हैं। देवाधिदेव महादेव द्वारा कथित इस प्रयोग द्वारा सभी मुनियों देवताओं तथा ब्रह्मादि को भी वशीकृत किया जा सकता है॥१॥

॥ मोहिनी मन्त्र प्रयोग विधिः॥

अन्यां वक्ष्ये महाविद्यां मोहिनीं वश्यकारिणीम्।
यस्याः प्रभावमात्रेण वशीकुर्य्याज्जनं नरः॥
तारं प्रथममुद्धृत्य मायाबीजमनन्तरम्।
मोहिनीपदमादाय शेषे पावकवल्लभाम्॥
ज्ञात्वा मन्त्रमिमं मन्त्री मन्त्रं पठति सिद्धिदम्।
अनेन मन्त्रराजेन संस्पृश्य जापितं यदा॥
दीयते च जलं पुष्पं दुकूलमुत्तमं फलम्।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पाणौ येषां प्रदीयते।
ते सर्वे वशमायान्ति नात्र कार्य्या विचारणा॥२॥

वशीकरण हेतु एक अन्य प्रयोग मोहिनी महाविद्या मन्त्र-प्रयोग है। इसके प्रभाव से साधक समस्त मनुष्यों को वशीभूत कर सकता है। इस मन्त्रोद्धार के लिए पहले तार (ॐ) लिखें फिर माया बीज 'ह्रीं', पद 'मोहिनी' तथा पावक वल्लभा (स्वाहा) का योग कर मन्त्र **"ॐ ह्रीं मोहिनी स्वाहा"** निष्पन्न करे। इस मन्त्र को गुरु द्वारा जानकर (उपदेश द्वारा ग्रहण कर) जपने से यह सिद्ध हो जाता है। हाथ में जल, पुष्प, वस्त्र अथवा फलादि लेकर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके उसे अभिमन्त्रित करके, साधक जिस किसी भी व्यक्ति को उसे (जलादि) देता है, वह व्यक्ति साधक के वशीभूत हो जाता है॥२॥

॥ चिटि मन्त्र प्रयोग विधिः॥

तारं चिटिद्वयं पश्चाच्चाण्डालीं तदनन्तरम्।
महापदाभ्यां तां ब्रूयादमुकं मे ततः परम्॥
वशमानय ठद्वन्द्वं चिटिमन्त्र उदाहृतः।
सप्तभिर्दिवसैर्भूपान् वशयेद्विधिनाऽमुना॥

वशीकरण के लिए एक दूसरे मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है -

पहले 'ॐ' फिर दो बार चिटि (चिटि चिटि) तत्पश्चात् 'चाण्डाली', तदन्तर 'महाचाण्डाली' इसके बाद 'अमुकं मे वशमानय स्वाहा' लिखकर मन्त्रोद्धार करे।

मन्त्र - "ॐ चिटि चिटि चाण्डाली महाचाण्डाली अमुकं मे वशमानय स्वाहा।"

इस 'चिटि मन्त्र' का सात दिनों तक आगे कही गई विधि के अनुसार प्रयोग करने से राजा भी वश में हो जाता है।

विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनामविगर्भितम्।
निक्षिप्य क्षीरसंमिश्रे जले तत् क्वाथयेन्निशि।

वश्यो भवति साध्यस्तु नात्र कार्य्या विचारणा॥३॥
तालपत्रे लिखित्वेनं भद्रकालीगृहे खनेत्।
वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगोऽयमुदाहृतः॥४॥
मूर्घ्निभाले कामकलां जपतो बिन्दुधारणात्।
योनिमुद्राप्रयोगेण करोति वशगं जगत्॥५॥
रेफहुङ्कारयोर्मध्ये सर्वलोकं ततःपरम्।
वशमानय ठद्वन्द्वं जपन् सम्पूज्य साधकः॥६॥

इस 'चिटि मन्त्र' में 'अमुकं' के स्थान पर साध्य नाम की योजना कर, इसे ताल पत्र पर लिखे। फिर जल मिश्रित दूध में इस ताल-पत्र को डालकर रात में उबाले (पकाये)। इस प्रयोग से निःसन्देह साध्य का वशीकरण हो जाता है॥३॥

इस चिटि मन्त्र को तालपत्र पर लिखकर भद्रकाली के मन्दिर में गाड़ देने से समस्त प्राणियों का वशीकरण होता है॥४॥

इस मन्त्र के पूर्व 'क्लीं' का योग करके ब्रह्मचर्य पूर्वक योनिमुद्रा का प्रदर्शन करते हुए जप करने से साधक समस्त विश्व को अपने वश में कर लेता है॥५॥

वशीकरण कर्म के अधिदेवता का पूजन करके **"रं सर्वलोक वशमानय स्वाहा हुं"** इस मन्त्र के जप करने से इच्छित व्यक्ति साधक के वशीभूत हो जाता है॥६॥

॥ राजमुखि-मन्त्र॥

राजमुखि पदाद्राजाभिमुखि वश्यपूर्विके!
ततश्च भुवनेशानी-श्रीकामान् देवि देवि! च।
तदन्ते च महादेवि! पदं पदमतः परम्॥
देवाधिदेवि! सर्वस्य मुखं वश्यं कुरु द्विठः।
प्रणवादिरयं मन्त्रः श्रीवश्यसम्पदावहः॥

"ओं राजमुखि राजाभिमुखि वश्यमुखि! ह्रीं श्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि! सर्वजनस्य मुखं वश्यं कुरु ठः ठः"।

उपर्युक्त श्लोकों द्वारा उद्धार करने पर मन्त्र का शुद्ध रूप निम्नवत होगा।
मन्त्र - "ॐ राजमुखि राजाभिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा।"

यह मन्त्र लक्ष्मी को भी वश में करने वाला तथा साधक को सम्पत्ति प्रदान करने वाला है।

॥ ब्रह्म श्री मन्त्र-प्रयोगः॥

मायाहृदोरथान्ते च ब्रह्म श्रीराजिते ततः।
प्रोक्त्वा राजाञ्चितेऽर्णान् वै जये च विजये तथा।
गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि वै ततः॥
ततः परं प्रयोक्तव्यं सर्वलोकवशङ्करि!।
ततः प्रयोजयेत्सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि!॥

वीप्सया योजनीयानि सुदुर्घोराक्षराणि वै।
मायाद्विठान्तकः प्रोक्त एकषष्ट्यर्णको मनुः॥

मन्त्रो यथा – ''ह्रीं नमो ब्रह्म श्रीराजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवन वशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि! सुदुर्घोरा सुदुर्घोरा ह्रीं स्वाहा।'' अयुतं प्रजपेत्।

मन्त्रोद्धार मूल में ही दिया हुआ है। इस मन्त्र का जप दश हजार की संख्या में साधक को करना चाहिए। (प्रपञ्चसार में सुदुर्घोरा के स्थान पर 'सुदुघे वा' का प्रयोग है)।

जुहुयाद्घृतसंपृक्तैः पायसभागैर्दशांशकैर्विहितैः।
आराधयेत्तदङ्गैः दिशोऽधिपैर्मातृभिश्च निशितमनाः।
तिलतण्डुलकैर्लोणैः स्वादुयुतैः सत् फलैश्च मधुरतरैः॥
आज्यैररुणकुवलयैः त्रिदिनं हवनं वशङ्करीं विद्याम्।
नित्यं सूर्य्यगतां तां देवीं प्रतिपद्य तन्मुखो जपति॥
अष्टोत्तरशतसंख्यां सर्वमकस्माद्वशीकरोत्यचिरात्।
वार्णादर्वाङ्मन्त्री यथानिगदितं प्रयोजयेत विधिम्॥
साध्याह्व कर्मयुक्तं प्रजपेद्वा मन्त्रकं सुहवनविधौ।
वाञ्छितसिद्धिविधाता गिरिवरकन्ये! तदा मन्त्रः॥
ऋषिरस्त्यस्या योनिः प्रावृट्छन्दोऽस्ति देवता गौरी।
स चतुर्दशभिः दशभिः अष्टाभिः सादरं ततोऽष्टाभिः॥
दशभिश्चैकादशभिः क्रमशः संयोजितैः सुमन्त्रिवरैः।
मन्त्राक्षरैश्च शुचिभिः सुषड़ङ्गविधिः समुच्यते क्रमशः॥

इस ब्रह्म श्री मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द प्रावृट् (निवृत्), देवता गौरी, बीज 'ह्रीं' तथा शक्ति 'स्वाहा' है। मन्त्र-वर्णों चौदह, दश, आठ, आठ, दश तथा ग्यारह की संख्या में विभाजित करके षडङ्ग न्यास करना चाहिए।

बुद्धिमान साधक पहले मन्त्र का दश हजार जप करे तत्पश्चात् भुवनेश्वरी-पूजन-शक्तिपीठ की रचना कर उसकी कर्णिका में बीज 'ह्रीं' के प्रथमावरण में देवता का षडङ्ग पूजन, द्वितीयावरण में अष्ट मातृकाओं का तथा तृतीयावरण में आयुधों सहित दिक्पालों (इन्द्रादि) का पूजन करे। इसके बाद घृतयुक्तखीर द्वारा मन्त्रोच्चारण सहित एक हजार बार हवन करे।

त्रिमधु से सिक्त तिल, चावल, नमक, स्वादिष्ट मीठे फल, घृत तथा लाल कमल से तीन दिनों तक एक-एक हजार की संख्या में हवन करने से यह विद्या शीघ्र ही साध्य को वश में करने वाली है। प्रतिदिन प्रातः काल सूर्यबिम्ब में देवी का ध्यान करते हुए तथा उसी ओर मुख किये हुए इस मंत्र का एक सौ आठ बार जप करने वाला साधक शीघ्र ही सभी प्राणियों को वशीभूत कर लेता है। मन्त्र में उल्लिखित अन्तिम वशंकरि के 'व' अक्षर से पहले कर्म विभक्ति (द्वितीया विभक्ति) युक्त साध्य का नाम जोड़कर यथा – ''ह्रीं नमो ब्रह्मश्री राजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि अमुकं वशंकरि सुदुधे वा सुदुधे वा ह्रीं स्वाहा'' इस रूप में

मन्त्र का जप तथा इसी से हवन करने पर, यह मन्त्र शीघ्र ही साधक को अभीष्ट सिद्धि प्रदान करता है।

विनियोग: - **ॐ अस्य ब्रह्म श्री मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषि:, प्रावृट् (निवृत) छन्द:, श्री गौरी देवता, 'ह्रीं' बीजं, 'स्वाहा' शक्ति: सर्वजन वशीकरणे विनियोग:।**

ऋष्यादि न्यास

ॐ ब्रह्म ऋषये नम: - शिरसि। **प्रावृट् (निवृत)छन्दसे नम:** - मुखे।
श्री गौरी देवतायै नम: - हृदि। **ह्रीं बीजाय नम:** -गुह्ये।
स्वाहा शक्त्ये नम: - पादयो:। **विनियोगाय नम:** - सर्वाङ्गे।

कर-न्यास

पडङ्ग-न्यास

ह्रीं नमो ब्रह्म श्री रजिते राज़पूजिते	**अङ्गुष्ठाभ्यां नम:**	**हृदयाय नम:।**
जये विजये गौरि गान्धारि	**तर्जनीभ्यां स्वाहा**	**शिरसे स्वाहा।**
त्रिभुवन वशङ्करि	**मध्यमाभ्यां वषट्**	**शिखायै वषट्।**
सर्वलोक वशङ्करि	**अनामिकाभ्यां हुम्**	**कवचाय हुम्।**
सर्वस्त्री पुरुष वशङ्करि	**कनिष्ठाभ्यां वौषट्**	**नेत्रत्रयाय वौषट्।**
सुदुर्घोरा सुदुर्घोरा ह्रीं स्वाहा	**करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्**	**अस्त्राय फट्।**

।। गौरी (पार्वती) ध्यानम्।।

अमलशशिविराजन्मौलिराबद्धपाशां-
कुशरुचिरकराब्जा बन्धुजीवारुणाङ्गी।
अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणा शोणवर्णा-
ऽंशुककुसुमयुता स्यात् सम्पदे पार्वती व:

जिनके शिर पर निर्मल अर्ध चन्द्र सुशोभित हैं, सुन्दर कमल के समान हाथों में पाश तथा अंकुश है, जिनके शरीर की आभा बन्धुजीवी (जपा) पुष्पों के समान लाल हैं। (अथवा जीवों के बन्धु सूर्य के समान अरुणहै), जो देव-समूहों द्वारा नित्य वन्दनीय हैं, जो तीन नेत्र वाली तथा लाल रंग के वस्त्र (रेशमी) एवं पुष्पों की माला पहने हुए हैं, वे भगवती पार्वती (गौरी) हम लोगों को सम्पत्ति प्रदान करें।।७।।

।। मदन-मंत्र-प्रयोग:।।

मद मद पदमादौ मादयेति द्विवारम्
तदनु च पठनीयं ह्रींपदं तत्र पश्चात्।
वशय पदयुता स्यात् नामरूपादिसंज्ञा
भवति मदनमन्त्र: स्वाहया संयुतोऽयम्।।
कनकरचितमूर्त्ति: कुण्डलाकृष्टचापो
युवतिहृदयमध्ये निश्चलारोपिताक्ष:।
इति मनसि मनोजं चिन्तयन् यो जपस्थो
वशयति स समस्तं भूतलं मन्त्रसिद्ध:।।

शतशतपरिजापात् स्यादयं सिद्धिदाता
दशशतकुसुमांनां लोहितानाञ्च दानात्।
इह तु सकलकार्य्यं वामहस्तेन कुर्य्यात्
उपदिशति समस्तं ज्योतिरीशः समन्तात्॥

''मद मद मादय मादय ह्लीं वशय अमुकं स्वाहा''॥८॥

मूल में ही उद्धृत श्लोकानुसार मन्त्र इस प्रकार है -

''ॐ मद मद मादय मादय ह्लीं वशय अमुकं स्वाहा।''

मन्त्र जपते समय साधक 'अमुकं' के स्थान पर जिस व्यक्ति को वश में करना है उसके नाम का प्रयोग करे तथा उस व्यक्ति के स्वरूप का मानसिक ध्यान भी करता रहे। मन्त्र जप से पहले कामदेव का इस प्रकार ध्यान करे -

कामदेव का सम्पूर्ण शरीर जैसे स्वर्ण द्वारा रचित है, वे अपने दाहिने कान तक धनुष को खींच कर पकड़े हुए हैं। कामदेव की निश्चल दृष्टि युवतियों के हृदय स्थल पर स्थित है। इस प्रकार मन में कामदेव का ध्यान करके साधक मन्त्र का दश हजार जप करे तथा जप के पश्चात् एक हजार लाल पुष्पों द्वारा हवन करे। इस प्रयोग में सभी कार्य (जप होमादि) बांये हाथ से ही करना चाहिए। इस प्रकार साधक को मन्त्र सिद्ध हो जाता है तथा वह इस पृथिवी पर स्थित समस्त प्राणियों को वशीभूत करने में समर्थ हो जाता है। इस मन्त्र के प्रभाव से, भगवान भुवन भास्कर चारों ओर दिशाओं उपदिशाओं में समस्त विश्व को जहाँ तक प्रकाशित करते हैं, वहाँ तक के समस्त प्राणी साधक के वश में हो जाते हैं॥८॥

॥ चामुण्डा-महामोहन (वशीकरण) मन्त्र प्रयोगः॥

चामुण्डे प्रथमं जयेति कथितं सम्बोधने मोहय
ज्ञातव्यं वशमानयेत्यपि पदं साध्यं द्वितीयान्वितम्।
स्वाहान्तं प्रणवादिरेष कथितैस्तत्त्वैर्महामोहनः
सन्मन्त्रः कविराजसेवितपदो नास्माद्द्वितीयोत्तरः॥

॥ चामुण्डा-ध्यानम्॥

दंष्ट्राकोटिविशङ्कटा सुवदना सान्द्ररन्धकारे स्थिता
खट्वाङ्गासिनिगूढ़दक्षिणकरा वामेन पाशं शिरः।
श्यामा पिङ्गलमूर्द्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृता
चामुण्डा शववाहिनी जपविधौ ध्येया सदा साधकैः॥
ध्यात्वा तां मुक्तकेशीं हरिहरविधिभिः स्वर्चितां विश्ववन्द्याम्
पश्चादस्या विभूतीरतुलितविभवाः चिन्तयन्मन्त्रमुख्यम्।
लक्षं जपत्वा दशांशं शुकतरुकुसुमैर्वह्निमध्ये च होमः
साध्वेवं पूजिताम्बा स्ववहितविधिना सर्वसिद्धिं ददाति॥

अथ मन्त्र- **''ॐ चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानय अमुकं स्वाहा''॥**

मन्त्र मूल में ही स्पष्ट है यथा - **''ॐ चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानय अमुकं स्वाहा।''**

मन्त्र जपते समय द्वितीयान्त साध्य नाम का प्रयोग (अमुकं के स्थान पर) करें।

शुक्राचार्य द्वारा सेवित यह मन्त्र विद्वानों द्वारा महामोहन कारक (वश्यकारक) कहा गया है। इससे श्रेष्ठ अन्य कोई दूसरा मन्त्र नहीं है। साधक को मन्त्र जप से पहले चामुण्डा का ध्यान करना चाहिए। ध्यान का स्वरुप इस प्रकार है-

भगवती चामुण्डा अपने विशाल दाढ़ों के कारण करोड़ों असुरों को भयभीत करने वाली हैं परन्तु अपने भक्तों के लिए सुन्दर मुख वाली हैं। सघन अन्धकार में स्थित इनका वर्ण (श्याम) काला है, सिर पर पिङ्गल (अग्नि) वर्ण की बड़ी-बड़ी जटायें हैं, शरीर पर व्याघ्राम्बर धारण की हुई है। इनके दक्षिण हाथ में खट्वाङ तथा तलवार एवं बायें हाथ में पाश और नरमुण्ड है। भगवती चामुण्डा शव पर स्थित हैं तथा इनके सिर के बाल खुले हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव द्वारा पूजिता, विश्ववन्दनीया भगवती का इस प्रकार ध्यान करके इनकी विभूतियों तथा अतुलनीय वैभव (प्रकाश) का चिन्तन करते हुए मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए। जप का दशांश (दश हजार) हवन शिरीष-पुष्पों से करे। इस प्रकार पूजित (मन्त्र जप से पूर्व तथा ध्यान के पश्चात् साधक को भगवती का यथोपलब्ध उपचारों द्वारा अथवा मानसोपचार द्वारा अवश्य पूजन करना चाहिए) होने पर अम्बा चामुण्डा साधक को समस्त सिद्धियाँ प्रदान कर देती है।।९।।

।। अन्य मन्त्र-प्रयोग:।।

''ॐ नमः कामाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वालय प्रज्वालय सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा''।

एतन्मन्त्रजपादेव वशी भवति मानव:।।१०।।

''ॐ नमो भगवति सूचिचाण्डालिनि! नमः स्वाहा''। एतन्मन्त्रेण मधूच्छिष्टस्य पुत्तलिकां कृताञ्जलिं कृतयुग्मपादाम् अङ्गप्रत्यङ्गसहितां कृत्वा तत्र साध्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा एतन्मन्त्रं जपन् अङ्गारेषु पुत्तलिकां प्रतापयेत्। ततः साध्यो वश्यो भवति।।११।।

इति श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीशभट्टाचार्य्यकृतायां षट्कर्मदीपिकायां वश्यकर्म चतुर्थोद्देश:।।

''ॐ नमः कामाय सर्वजनप्रियाय मर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वालय प्रज्वालय सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा।''

इस उपर्युक्त मन्त्र का केवल जप करने से ही मनुष्यों का वशीकरण हो जाता है।।१०।।

''ॐ नमो भगवति सूचिचाण्डालिनि नमः स्वाहा।'' इस मन्त्र का जप करते हुए साध्य व्यक्ति की सर्वांग सुन्दर पुतली मोम से बनायें। पुतली में शरीर के सभी अंग-आँख, नाक, होठ, उदर, जांघ, पैर आदि बनाये जायें। पुतली के दोनों हाथ प्रणाम (नमस्कार) करने की मुद्रा में बनाये जायें। जब पुतली बन जाये उसमें साध्य व्यक्ति की प्राण प्रतिष्ठा करें। तत्पश्चात् इस पुतली को उक्त मन्त्र का जप करते हुए हल्की आंच पर तपायें। इस पुतली को जितना तपाया जायेगा, साध्य व्यक्ति के हृदय में उतनी ही व्याकुलता बढ़ती जायेगी, और साध्य व्यक्ति साधक के वशीभूत हो जायेगा।।११।।

।।श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीशभट्टाचार्य कृत षट्कर्मदीपिका में वश्यकर्म नामक चतुर्थोद्देश की 'अंजलि' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ पञ्चमोद्देशः

स्तम्भनम्

(स्तम्भन विषये जिज्ञासा)

।। श्रीदेव्युवाच।।

प्रभो! त्वं भैरवश्रेष्ठः सर्वमन्त्रार्थजीवकः।
नानारहस्यसारञ्च त्वत्प्रसादाच्छृणोम्यहम्।।
दिव्यतन्त्रं महातन्त्रं पूर्वपश्चिमसंज्ञकम्।
दक्षिणोत्तरमूर्धञ्च उपायाः कथिताः प्रभो!।।
वश्याकर्षणदिव्यञ्च मारणोच्चाटनादिकम्।
विद्वेषं मोहनं चान्यं ज्ञातव्यं सर्वसंज्ञया।
इदानीं स्तम्भनं देव! कथयस्व प्रसादतः।
कथयस्व सुरश्रेष्ठ! यद्यहं तव वल्लभा।।१।।

श्री देवी ने कहा - हे प्रभो! आप सभी भैरवों में श्रेष्ठ हैं। समस्त मंत्रों की सृष्टि तथा उसके अनुसार सिद्धि प्रदान (कामनाओं की पूर्ति) करने वाले भी आप ही हैं। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तथा ऊर्ध्व आम्नाओं के महान एवं दिव्य तन्त्र शास्त्रों में निरूपित विभिन्न प्रकार के प्रयोगों तथा विषयों से सम्बन्धित अनेकों रहस्यों को आपकी कृपा से, आप के द्वारा कहे जाने पर मैंने श्रवण किया। वश्य, आकर्षण, मारण, उच्चाटन, विद्वेषण, मोहन तथा अनेकों प्रकार के कामना पूरक प्रयोगों के विषय में पहले ही आपके द्वारा विस्तारपूर्वक वर्णन किये जाने पर मैंने इन सबको भली-भाँति अवगत कर लिया है। हे देव! सुरश्रेष्ठ! यदि मैं सत्य ही आपकी प्रिया हूँ अर्थात् आप मुझसे प्रेम करते हैं तो अब कृपा करके 'स्तम्भन' कर्म के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन करें।।१।।

।। श्री भैरव उवाच।।

साधु साधु त्वया प्राज्ञे! सर्वमन्त्रार्थसाधिके!।
न कस्यचिन्मयाख्यातं शृणु सुन्दरि! यत्नतः।।
गुह्याद् गुह्यतरं देवि! स्नेहात्ते प्रकटीकृतम्।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शृणु चैकाग्रमानसा।
विद्या या परमा गुप्ता महास्तम्भनरूपिणी।।२।।

श्री भैरव ने कहा - हे प्रकृष्ट बुद्धिवाली प्रिये। तुम्हे अनेकशः धन्यवाद है, क्योंकि संसार (साधकों) के हित की कामना से तुमने यह प्रश्न किया है। वास्तव में सभी मन्त्रों की सिद्धि द्वारा प्राप्त होने वाले अर्थों (कामनाओं) की पूर्ति करने वाली तुम ही हो। तुमसे पहले किसी ने न इस विषय में मुझसे पूछा और न ही मैंने किसी के सम्मुख इस विषय को प्रकट किया। इस अत्यन्त गोपनीय विषय को तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण प्रकाशित कर रहा हूँ। महास्तम्भनकारिणी जो परम गुप्त विद्या है, उसका मैं भली भाँति विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ। एकाग्रचित्त होकर सुनो।।२।।

।। श्री बगलामुखी षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्रोद्धारः।।

ओङ्कारं पूर्वमुच्चार्य्य स्थिरमायामथोच्चरेत्।
सम्बोधनपदं चोक्त्वा ततः श्री बगलामुखि!।।
तदग्रे सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम्।
स्तम्भयेति पदं पश्चात् कीलयेति पदद्वयम्।।
बुद्धिं विनाशय पश्चात् स्थिरमायां पुनर्लिखेत्।
लिखेच्च पुनरोङ्कारं स्वाहेति पदमुत्तमम्।।
षट्त्रिंशदक्षरा विद्या देवानामपि दुर्लभा।
वह्निहीनेन्द्रयुङ्माया स्थिरमाया प्रकीर्तिता।।
गजस्य च रथानाञ्च दुष्टानां शीघ्रचेतसाम्।
स्तम्भिताञ्च महावाचां वृहस्पतिमुखोद्गताम्।।

सर्वप्रथम 'ॐ' का उच्चारण करके स्थिरमाया 'ह्लीं' फिर सम्बोधन रूप से 'श्री बगलामुखि' इसके बाद 'सर्वदुष्टानां' 'वाचं मुखं', 'स्तम्भय' दो बार कीलय 'कीलय-कीलय' पुनः 'बुद्धिं विनाशय' बोलकर 'ह्लीं ॐ स्वाहा' बोलें। इस प्रकार छत्तीस अक्षरों वाले मन्त्र का उद्धार करें।

मन्त्र - ॐ ह्लीं श्री बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय कीलय-कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा।।

माया 'ह्रीं' को अग्नि 'रं' से रहित तथा इन्द्र 'ल' से युक्त करने पर प्राप्त स्वरूप 'ह्लीं' को स्थिर माया कहते हैं।

[**विमर्श** - बगलामुखी का षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्र जो सामान्यतः प्रचलित है इस प्रकार है - "ॐ ह्ल्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्ल्रीं ॐ स्वाहा।"

इस मन्त्र के ऋषि नारायण, छन्द त्रिष्टुप तथा देवता त्रैलोक्य स्तम्भन कारिणी श्री बगलामुखी हैं। बीज 'ह्लीं' तथा शक्ति 'स्वाहा' है।

सांख्यायन तन्त्रानुसार मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप, बीज 'लं' शक्ति 'ह्रीं' तथा कीलक 'रं' हैं।

जयद्रथ यामलानुसार - "पूर्वोक्त मायाबीजे तु व्योमरेफान्तरालके। भूबीजं योजयेदेषा स्थिरमाया प्रकीर्तिता।।" इस प्रकार स्थिरमाया बीज 'ह्ल्रीं' होगा। सांख्यायन तन्त्र में भी यही मान्य है।]

यह मन्त्र हाथियों, रथों तथा दुष्टों के चित्त का, यहाँ तक कि वृहस्पति के मुख से निकलने वाली वाणी का भी शीघ्र ही स्तम्भन कर देता है।

महापर्वतवृक्षाणां सरितां सागरस्य च।
स्तम्भयेत्तानि दिव्यानि मानुषेषु च का कथा?।।
त्रैलोक्यमोहिनी विद्या तस्याश्च बगलामुखी।
शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि विविधं कामनागतम्।
न्यासं ध्यानं जपं होमं मन्त्रमेव पृथक् पृथक्।।३।।

विशाल पर्वतों, नदियों, समुद्र, देवताओं अथवा वायु, अग्नि, जलादि दिव्य प्राकृतिक पदार्थों का भी स्तम्भन इस मन्त्र द्वारा किया जा सकता है, फिर सामान्य मनुष्यों का स्तम्भन करना कौन सी बड़ी बात है।

इस त्रैलोक्य मोहिनी बगलामुखी विद्या के न्यास-ध्यान एवं विविध कामनाओं के अनुसार इसके जप-होमादि के विषय में पृथक-पृथक मैं वर्णन करता हूँ। हे देवि! ध्यानपूर्वक सुनो!।।३।।

।। कर-षडङ्ग-वर्ण न्यासाः।।

अङ्गन्यासं प्रवक्ष्यामि कराङ्गविधिपूर्वकम्।
ओं स्थिरमायाञ्च हृदये मूर्ध्नि श्रीबगलामुखि।।
शिखायां सर्वदुष्टानां वाचं मुखञ्च स्तम्भय।
कवचे कीलयद्वन्दं नेत्रे बुद्धिं विनाशय।।
ह्लीं ओं स्वाहा तथा चास्त्रे षडङ्गविधिरीरितः।
युग्मकालेषु सप्तर्त्तुदशार्णैश्च मनूद्भवैः।।
करशाखासु तलयोः कराङ्गन्यासमाचरेत्।
नारायण ऋषिमूर्ध्नि त्रिष्टुप्छन्दस्तु तन्मुखे।।
श्रीबगलामुखीं देवीं हृदये विन्यसेत्ततः।
ह्लीं बीजं गुह्यदेशे तु स्वाहा शक्तिश्च पादयोः।।
इष्टार्थे विनियोगस्तु ऋष्यादिन्यास एव च।
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रुत्योर्गण्डयोर्नसयोः पुनः।।
ओष्ठयोर्मुखगण्डे च दक्षिणांशे च कूर्परे।
तथैव मणिबन्धे च तथा चाङ्गुलिमूलके।।
गलमूले स्तने दक्षे स्तने वामे तथा हृदि।
नाभौ कट्यां गुह्यदेशे वामांशे कूर्परे तथा।।
मणिबन्धेऽङ्गुलीमूले विन्यसेत्तु समाहितः।
दक्षोरुमूले जानौ च गुल्फे चाङ्गुलिमूलके।।
मूलमन्त्राक्षरैर्विद्वान् विन्यसेत् क्रमयोगतः।
एवं न्यासविधिं कृत्वा ततो ध्यानं शृणु प्रिये!।।४।।

उपर्युक्त श्लोकों के अनुसार विनियोग, न्यासादि का स्वरूप निम्नवत् होगा-

विनियोग - ॐ अस्य श्री बगलामुखी षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्रस्य नारायण ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, श्री बगलामुखी देवता, ह्लीं वीजं स्वाहा शक्तिः सर्वेष्टार्थे जपे विनियोगः।

।। ऋष्यादि न्यास।।

ॐ नारायण ऋषये नमः शिरसि। **त्रिष्टुप् छन्दसे नमः** मुखे।
श्री बगलामुखी देवतायै नमः हृदि। **ह्लीं बीजाय नमः** गुह्ये।
स्वाहा शक्तये नमः पादयोः। **विनियोगाय नमः** सर्वाङ्गे।

	कर-न्यास	षडङ्ग-न्यास
ॐ ह्लीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः
श्री बगलामुखी	तर्जनीभ्यां स्वाहा।	शिरसे स्वाहा
सर्वदुष्टानां	मध्यमाभ्यां वषट्।	शिखायै वषट्
वाचं मुखं स्तम्भय	अनामिकाभ्यां हुं।	कवचाय हुम्
कीलय कीलय	कनिष्ठाभ्यां वौषट्।	नेत्रत्रयाय वौषट्
बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा	करतलकर पृष्ठाभ्यां फट्।	अस्त्राय फट्

।। मन्त्र-वर्ण-न्यास।।

ॐ नमः	मूर्ध्नि (शिरसि)	भं नमः	दक्ष स्तने
ह्लीं नमः	भाले	यं नमः	वाम स्तने
श्रीं नमः	दक्ष नेत्रे	कीं नमः	हृदये
बं नमः	वाम नेत्रे	लं नमः	नाभौ
गं नमः	दक्ष कर्णे	यं नमः	कट्यां
लां नमः	वाम कर्णे	कीं नमः	गुह्ये
मुं नमः	दक्ष कपोले	लं नमः	वामांशे
खिं नमः	वाम कपोले	यं नमः	वाम कूर्परे
सं नमः	दक्ष नासिकायां	बुं नमः	वाम मणिबन्धे
र्वं नमः	वाम नासिकायां	द्धिं नमः	वाम अंगुलिमूले
दुं नमः	ओष्ठे	विं नमः	दक्षोरुमूले
ष्टां नमः	अधरे	नां नमः	दक्ष जानुनि
नां नमः	मुखे	शं नमः	दक्ष गुल्फे
वां नमः	दक्षांशे	यं नमः	दक्ष पादांगुलिमूले
चं नमः	दक्ष कूर्परे	ॐ नमः	वामोरुमूले
मुं नमः	दक्ष मणिबन्धे	ह्लीं नमः	वाम जानुनि
खं नमः	दक्षअंगुलिमूले	स्वां नमः	वाम गुल्फे
स्तं नमः	गलमूले	हां नमः	वाम पादांगुलिमूले

इस प्रकार सभी न्यास करने के बाद श्री बगलामुखी देवता का ध्यान करें।

।। श्री बगलामुखी (पीताम्बरा) ध्यानम्।।

गम्भीराञ्च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्।।
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वाञ्च वज्रकम्।
पीताम्बरधरां देवीं दृढ़पीनपयोधराम्।।
हेमकुण्डलभूषाञ्च पीतचन्द्रार्द्धशेखराम्।

पीतभूषणभूषाञ्च स्वर्णसिंहासने स्थिताम्॥
एवं ध्यात्वा तु देवेशीं शत्रुस्तम्भनकारिणीम्।
महाविद्यां महामायां साधकस्य फलप्रदाम्॥
यस्याः स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यं स्तम्भयेत् क्षणात्।

भगवती बगलामुखी की अङ्ग-कान्ति स्वर्ण के समान पीताभ है। इनके मस्तक पर तीन नेत्र हैं तथा ये चतुर्भुजा हैं। दक्षस्थ हाथों में मुद्गर तथा पाश एवं वामस्थ हाथों में शत्रु जिह्वा तथा वज्र धारण की हुई हैं। इनके स्तनद्वय कठोर एवं मांसल हैं। शरीर पर पीला वस्त्र, शिर पर पीला अर्द्ध चन्द्र, कानों में स्वर्ण कुन्डल तथा सर्वाङ्गों पर पीत स्वर्णाभूषण सुशोभित हैं। मदपान करने पर भी भगवती अविचल रूप से स्वर्ण सिंहासन पर स्थित कमलासन पर अथवा स्वर्ण सिंहासन पर पद्मासन की अवस्था में विराजमान हैं। जिसका स्मरण मात्र त्रिलोकी का स्तम्भन करने में समर्थ है, उस शत्रु स्तम्भन कारिणी, महामाया, महाविद्या स्वरूपा, साधकों को उनका अभीष्ट फल प्रदान करने वाली देवेश्वरी भगवती का इस प्रकार ध्यान साधक को करना चाहिए।

।। साधन विधिः।।

साधनं सम्प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै॥
सर्व पीतोपचारेण पीताम्बरधरो नरः।
जपमालाञ्च देवेशि! हरिद्राग्रन्थिसम्भवाम्॥
पीतासनसमारूढः पीतध्यानपरायणः।
पीतपुष्पार्चनं नित्यमयुतं जपमाचरेत्॥
दशांशैश्चं कृतो होमः पीतद्रव्यैः सुशोभनैः।
संज्ञामुच्चारयेत्साध्यं स्तम्भनञ्च महाऽद्भुतम्।।६।।

अब मैं साधकों के हित के लिए श्री बगलामुखी के साधन से सम्बन्धित कुछ विशेष बातों को बताता हूँ। भगवती की पूजा में समस्त उपचार सामग्री पीले रंग की ही होनी चाहिए। साधक पीलावस्त्र धारण कर, हल्दी की मणियों की माला से, पीले आसन पर बैठकर, पीताम्बरा का ध्यान करके, पीत पुष्पादि से उनका अर्चन करके नित्य दश हजार मन्त्रों का जप करे। जप के दशांश की संख्या में पीले सुन्दर, सुगन्धित पदार्थों द्वारा हवन करें। साधक मन्त्र-जप काल तथा हवन के समय जिस व्यक्ति के नाम का मन्त्र के साथ संयोग करता है, उसका शीघ्र ही आश्चर्य जनक रूप से स्तम्भन हो जाता है।

।। कर्म विशेषे कुण्डलक्षणम्।।

शृणु प्राज्ञे! महागुह्यं प्रकटीकृतसाधनम्।
एकान्ते निर्जने स्थाने शुचौ देशे गृहे पुरे॥
कुण्डं सुलक्षणं कृत्वा मेखलात्रयशोभितम्।
योनिर्वितस्तिमात्रा स्यात् तत्र होमन्तु साधयेत्॥

आकर्षणे त्रिकोणं स्यात् वश्ये तु चतुरस्रकम्।
तथैवोच्चाटने प्रोक्तं षट्कोणं मारणे स्मृतम्।।७।।

हे प्राज्ञे! इस बगलामुखी मन्त्र के अत्यन्त गुप्त साधन को मैं तुम्हारे सामने प्रकट कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो! देश, नगर, ग्राम अथवा स्वगृह में ही किसी पवित्र एकान्त निर्जन स्थान पर साधक षट्कर्मों के प्रयोग में हवन के लिए शास्त्र विहित लक्षणों के अनुसार तीन मेखलाओं तथा एक बालिस्त माप की योनि युक्त कुण्ड का निर्माण करे। आकर्षण कर्म के लिए त्रिकोण कुण्ड, वश्य तथा उच्चाटन के लिए चौकोर तथा मारण कर्म के लिए षट्कोण आकार का कुण्ड बनाना चाहिए।।७।।

।। आसनभेदा:।।

वश्ये मेषासनं प्रोक्तं कर्षणे व्याघ्रचर्मणि।
शान्तौ मृगासनं प्रोक्तं गोचर्म स्तम्भने स्मृतम्।।
उष्ट्रासनं तथोच्चाटे विद्वेषे तुरगासनम्।
मारणे महिषीचर्म मोक्षञ्चैव गजाजिने।
नानाविधानि ते देवि! क्रमाद्रव्यं समाचरेत्।।८।।

वशीकरण कर्म में भेड़ (ऊन) का आसन, आकर्षण के लिए व्याघ्र चर्मासन, शान्तिकर्म में मृग चर्मासन तथा स्तम्भन कर्म के लिए गोचर्मासन का प्रयोग साधक को बैठने के लिए करना चाहिए। उच्चाटन कर्म में ऊँट-चर्मासन, विद्वेषण में अश्व चर्मासन, मारण कर्म में महिष (भैंस) चर्मासन तथा मोक्ष साधक कर्म में गज-चर्मासन का प्रयोग करना चाहिए।

हे देवि! अब मैं कामनानुसार विभिन्न कर्मों में प्रयुक्त होने वाले हवनीय द्रव्यों के विषय में क्रमानुसार तुम्हें बतलाता हूँ।

।। कर्मविशेषे यज्ञीय सामग्री।।

मधुरत्रितिलाज्येन वश्यलाभानि साधयेत्।
आकर्षणे तथा लोणं त्रितयं मधुरान्वितम्।।
निम्बपत्रञ्च तैलाक्तं विद्वेषणकरं परम्।
हरितालं हरिद्राञ्च लवणेन च संयुताम्।।
स्तम्भयेश्चैव देवेशि! प्रज्ञाञ्चैव गतिं मतिम्।
राजिकाष्ठस्य सारेण माहिष्या रुधिरेण च।।
मारणे तु रिपोर्देवि! श्मशानाग्नौ हुनेन्निशि।
गृध्राणां काकपक्षाणां गृहधूमेन संयुताम्।।
(पक्षेण जुहुयात् देवि शत्रोरूच्चाटनाय वै।)
दूर्वाङ्कुरामृतावल्ली खण्डाश्च चतुरङ्गुला।
लाजां त्रिमधुसंयुक्तां सर्वरोगप्रशान्तये।।९।।

त्रिमधु (दूध, शहद तथा शक्कर) के साथ तिल तथा घृत का मिश्रण करके हवन करने से वश्य कर्म की सिद्धि होती है। आकर्षण कर्म की सिद्धि हेतु त्रिमधु के

साथ नमक को मिला कर हवन करना चाहिए।

नीम के पत्तों को तिल के तेल में भिगोकर हवन करना परम विद्वेषण कारक होता है।

हरिताल, हरिद्रा तथा नमक के मिश्रण द्वारा हवन करने से साध्य की मन, बुद्धि तथा गति (शारीरिक चेष्टाओं) का स्तम्भन हो जाता है।

राई के तेल तथा भैंसे के रक्त का मिश्रण कर, इसके द्वारा रात्रि में श्मशान की अग्नि (चिताग्नि) में हवन करने से शत्रु का मरण होता है।

गीध तथा कौवे के पंखों को रसोई घर के धुएँ (कालिख) से युक्त करके हवन करने से शत्रु का उच्चाटन होता है।

दूर्वाङ्कुर तथा गिलोय (गुडूची) के चार-चार अंगुल प्रमाण के खण्डों तथा लाजा एवं त्रिमधु के मिश्रण द्वारा हवन करने से सभी रोगों का शमन होता है।।९।।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्री ब्रह्मचारी दृढ़व्रतः।
पर्वताग्रे महारण्ये सिद्धिशैवालये गृहे।
सङ्गमे च महानद्याः साधकः साधयेत् स्वयम्।।१०।।

श्री बगलामुखी मन्त्र का साधक पहले ब्रह्मचर्य का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्र का एक लाख जप, किसी पर्वतशिखर पर, घने विशाल वन में, किसी सिद्ध क्षेत्र में, शिवालय में अथवा अपने घर में बैठकर, पूर्ण करके मन्त्र को सिद्ध कर ले। इसके पश्चात् ही इच्छानुसार इसका प्रयोग करे।।१०।।

।। मन्त्रस्य विभिन्न प्रयोगाः।।

श्वेतब्रह्मतरोर्मूले-पादुकाञ्चैव कारयेत्।
अलक्तकेन रागेण रञ्जिता दण्डमुद्रया।।
षट्त्रिंशदक्षरा विद्या लक्षैकेन च मन्त्रिता।
शतयोजनमात्रन्तु मनश्चिन्तितमागता।।११।।
रसं मनःशिलां तालं माक्षिकेण समन्वितम्।
पिष्ट्वाभिमन्त्र्य लक्षैकं सर्वाङ्गे लेपनं कृतम्।
अदृश्यकारकं देवि! लोके च महदद्भुतम्।।१२।।
एकवर्णगवाञ्चैव धारोष्णं क्षीरमाहरेत्।
शर्करामधुसंयुक्तं त्रिशतैर्मन्त्रितं प्रिये!।
पीत्वा च हरते शीघ्रं विषं स्थावरजङ्गमम्।।१३।।
दारिद्र्यमोचनं देवि! लक्षमेकं जपेन्नरः।
दशांशेन कृतो होमो द्रव्यैरेभिर्घृतप्लुतैः।।
द्विपदे च चतुष्पदे, धन धान्य च वर्धन्ते।
लक्ष्मीयुक्तो भवेद्देवि! दारिद्रयं नाशयेद् ध्रुवम्।।१४।।

श्वेत पुष्प वाले पलाश वृक्ष की जड़ से पादुकाओं की रचना करके उसे आलता, लाख तथा हल्दी से दण्ड मुद्रा (खड़ी लकीर) में रञ्जित करें। फिर एक लाख

षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्र द्वारा इसे अभिमन्त्रित करें। इस पादुका को पहन कर साधक मन में सङ्कल्प करते ही क्षण भर में सौ योजन (चार सौ कोस) तक जा सकता है।।११।।

पारद, मैनसिल, हरताल तथा शहद को मिश्रित करके लेह्य (चटनी) की भांति बनाकर इसे एक लाख बार मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। इस मिश्रण का अपने सर्वाङ्गों में लेपन करने से साधक अदृश्य हो जाता है अर्थात् किसी अन्य व्यक्ति को वह दिखाई नहीं देता है। संसार में मनुष्यों के लिए यह महान आश्चर्यकारक प्रयोग है।।१२।।

एक रंग वाली गाय का ताजा दुहा गया कुछ गरम सा दूध लेकर उसे षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्र द्वारा तीन सौ बार अभिमन्त्रित करके पीने से स्थावर (कुचला, संखियादि) तथा जङ्गम (सर्प, बिच्छू आदि) दोनों प्रकार के विषों का प्रभाव नष्ट हो जाता है।।१३।।

दरिद्रता (निर्धनता) के विनाश के लिए साधक पहले इस षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्र का एक लाख जप करे। फिर उसका दशांश (दश हजार) हवन दूध, शर्करा, मधु तथा घृत (अथवा घृत मिश्रित पीले पुष्पादि हवनीय द्रव्यों) के द्वारा पृथक-पृथक या मिश्रण से करे। इस प्रयोग द्वारा शीघ्र ही दरिद्रता का नाश होकर साधक सेवकों, पशुओं तथा धन-धान्य से सम्पन्न होकर लक्ष्मीवान (ऐश्वर्यशाली) हो जाता है।।१४।।

स्तम्भन कारक विविध प्रयोगाः

।। गर्भ-गति स्तम्भक प्रयोगः।।

अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि कामनां यन्त्रतः पराम्।
पत्रे (पट्टे) वाप्यथ पाषाणे साध्य संज्ञा तु कारयेत्।।
आद्यन्ते स्थिरमायां च हरिद्रा तालकैर्लिखेत।
उन्मतरस संयुक्तैर्गाढ त्रिवलयं लिखेत्।।
गर्भ स्तम्भं गतिस्तम्भं चमत्कारकरी पराम्।

अब मैं विभिन्न कामनाओं के अनुसार यन्त्र-रचना विधि को भली-भाँति कहता हूँ। भोज-पत्र (कपड़े) अथवा पत्थर के समतल टुकड़े पर, हल्दी, हरताल तथा धतूरे के रस के मिश्रण द्वारा गाढ़ा घोल बनाकर, साध्य व्यक्ति का नाम लिखें। नाम के आदि तथा अन्त में ह्लीं (अथवा ह्लीं) लिखें। इसके ऊपर तीन वृत्तों में बगला का षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्र लिखे। यह यन्त्र गर्भ एवं गति स्तम्भन के लिए अत्यन्त चमत्कारी है।

।। वाणी (मुख) स्तम्भन विविध प्रयोगाः।।

भूर्जपत्रे समालिख्य तालोन्मत्तनिशारसैः।
षट्कोणमध्यमालिख्य विद्यां वलयतो लिखेत्।।
मध्ये संज्ञाञ्च देवेशि! पीतसूत्रेण वेष्टयेत्।
चक्रं भ्राम्यत्कुलालस्य विपरीतञ्च मृत्तिकाम्।।
वृषभं कारयेत्तस्या विलिप्तं तालकेन च।
तन्मध्ये निक्षिपेद्यन्त्रमारूढं वृषभोपरि।।
नासायां निक्षिपेद्रज्जुं पीत वस्त्रेण वेष्टयेत्।

बाह्योपचारपूजाभिः स्वगृहे तु प्रपूजयेत्।।
अर्चयेत् चतुष्कालं साध्यनामात्र साधकः।
दुष्टानां स्तम्भयेत् वक्त्रं साक्षाद्वाचस्पतेरपि।।

हरताल, हल्दी तथा धतूरा-रस मिश्रण के द्वारा भोजपत्र पर षट्-कोण बनाकर कोणों के मध्य में बीज ह्लीं सहित साध्य नाम लिखें। फिर इसके ऊपर वृत्ताकार रूप में बगला मूल-मन्त्र लिखकर बाहर भूपुर की रचना करे। इस यन्त्र के ऊपर पीला धागा लपेट दें। इसके बाद कुम्हार के घर से, उसके चक्र को उल्टा घुमाकर उस पर रखी हुई मिट्टी को लाकर एक वृषभ की प्रतिमा बनायें। इस प्रतिमा पर हरताल का लेप करके इसके अंदर (उदर में) यन्त्र को रखकर उसे बन्द कर दें। इस वृषभ की नाक में पीली रस्सी डालकर, उस पर पीला वस्त्र लपेटकर साधक अपने घर में बाह्योपचारों से इसका पूजन करें। दिन के चारों कालों (प्रातः, मध्यान्ह, सायं तथा अर्द्धरात्रि) में बगला मूल-मन्त्र में 'सर्वदुष्टानां' के स्थान पर साध्य नाम का प्रयोग करते हुए पूजन तथा जप करें। इस प्रयोग द्वारा सामान्य मनुष्य की कौन कहे, साक्षात् वृहस्पति के भी मुख (वाणी) का स्तम्भन हो जाता है।

दृढं खर्परमादाय श्मशानस्थमधोमुखम्।
वाम हस्ते समावेश्य तदङ्गारं तु दक्षिणे।।
अभिमन्त्रस्य ठकारेण सप्तधा कृत पूरकः।
तस्योदरगतं बीजं वलयाकारमालिखेत्।।
साध्यं मध्ये च षष्ठ्यन्तं तन्मुखं स्तम्भयेति च।
पृथ्वी बीजानि चत्वारि व्यस्त शीर्षाणि संलिखेत्।।
ततः परं प्रकुर्वीत यन्त्रं देवेशि पूर्ववत्।
साध्य सम्बोधनं कृत्वा षष्ठ्यन्त साधकं लिखेत्।।
या भुंक्ष्वेति पद पश्चात्तद्वदाम्रेडितान्वितम्।
पूजयेत् पीतपुष्पाद्यैर्मुखस्तम्भोऽयमुत्तमः।।

श्मशान भूमि में पड़े हुए अधोमुख, कठोर एवं मजबूत खपड़े को उठाकर उसे बांये हाथ में रखें। दाहिने हाथ से श्मशानाङ्गार (चिता की लकड़ी का कोयला) ग्रहण कर दोनों को सात बार, पूरक करके (श्वाँस को भीतर रोक कर) बगला के मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करें। इसके बाद उस खपड़े के मध्य में कोयले से वृत्त बनाकर उसके अन्दर स्थिर माया बीज लिखें तथा बीज के मध्य में 'अमुकस्य(षष्ठ्यन्त साध्य नाम) मुखं स्तम्भय' लिखें। तत्पश्चात् बीज के चारों ओर पृथ्वी बीज 'ग्लौं' लिखें। वृत्त के बाहर अष्ट कोण बनाकर उसके आग्नेयादि चारों कोणों की अष्ट रेखाओं पर एक-एक वज्र की आकृति (इस प्रकार आठ वज्राकृति) बनायें। पूर्वादि दिशाओं के चारो कोणो की अष्ट रेखाओं पर आठ त्रिशूलों की आकृति बनाये। त्रिकोणों के मध्य में, त्रिशूल की मध्य रेखाओं पर तथा त्रिशूलों के पाश्वों में पृथ्वी बीज 'ग्लौं' लिखे। वज्रयुक्त चतुरस्र के कोण पाश्वों में भी 'ग्लौं' लिखे। इसके बाद

अष्टकोण के बाहर चार वृत्तों को बनाये। वृत्त द्वारा निर्मित सबसे भीतर के वृत्तान्तराल में मातृका वर्ण लिख कर वेष्टित करें। उसके बाहर के अन्तराल में स्थिर माया बीज तथा सबसे बाहर के अन्तराल में अंकुश बीज 'क्रों' लिखकर वेष्टित करें। इस प्रकार यन्त्र की रचना करके उसे किसी उचित स्थान पर स्थापित करें। बगला मूल-मन्त्र में 'सर्वदुष्टानां' के स्थान पर 'अमुक अमुकस्य मां भुंक्ष्व मा भुंक्ष्व' का प्रयोग करते हुए उस यन्त्र पर देवी का आवाहन करके पीतोपचारों से पूजन करें। इस प्रयोग से साधक के मुख का स्तम्भन होता है। 'अमुक' के स्थान पर साध्य नाम सम्बोधन रूप से तथा 'अमुकस्य' के स्थान पर साधक का षष्ठ्यन्त नाम प्रयुक्त होगा।

श्मशानोत्थवसने तु तालोन्मत्तनिशारसैः।
यन्त्रमालिखेत् सम्यक् पूर्ववदेव साधकः॥
भेकस्य वदने क्षिप्त्वा कीलयेत् पीततन्तुभिः।
क्षिप्त्वा क्षोण्यां यजेत्पुष्पैः पीतवर्णैस्तु मण्डले॥
अनुच्चाराद्धि मन्त्रस्य स्फुटमुच्चारमाचरेत्।
पूरकस्य प्रयोगेण प्रयोगः प्रत्ययावहः॥

श्मशान में पड़े हुए कपड़े को लेकर उस पर हरताल, हल्दी तथा धतूरा-रस के मिश्रण से साधक पूर्वोक्त यन्त्र को भली-भाँति बनाये। इस यन्त्र को जीवित मेढक के मुख में डालकर उसे (मुख को) पीले धागे से बांध दें। फिर इस मेंढक को जमीन में गाड़कर उस पर पीला पूजन मण्डल बनाकर, उस पर देवी का आवाहन करके पीले पुष्पादि से पूजन करें। साधक पूजन के समय मन्त्र का बाह्य उच्चारण न करके, पूरक करके मन ही मन मन्त्र वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करें। इस प्रयोग द्वारा भी साध्य का मुख स्तम्भन होता है।

चत्वरः पादानालिख्य भग्नत्वात्कुब्जतां गतान्।
अन्योन्य मिलितत्वेन तं चोर्ध्वाधाः समन्ततः॥
वामदक्षिण सम्बन्धं द्वौ पादौ तस्य कल्पयेत्।
आलिखेन्नाम षष्ठ्यन्तं गतिं च स्तम्भयेति च॥
मध्ये लिखित्वा संलिख्य पृथ्वी बीजानि चाग्रतः।
पटे पाषाणपट्टे वा प्रोक्तैश्चैव त्रिभिस्त्रिभिः॥
प्राग्वत् सम्पुट योगेन बद्ध्वा पीतगुणैर्दृढैः।
गति स्तम्भं भवत्येवं यन्त्रस्यास्य प्रभावतः॥

इस यन्त्र के निर्माण के लिए साधक पहले चार द्वारों से युक्त चतुरस्र (भूपुर) की रचना करे। इसके मध्य में 'अमुकस्य गतिं मतिं मुखं स्तम्भय स्तम्भय' लिखकर बगला मूल मन्त्र को चार भागों में विभाजित करके प्रथम भाग (पाद) को पूर्व द्वार के अन्त तक ऊर्ध्व की ओर गति करते हुए लिखे, दूसरे पाद को नीचे की ओर गति करते हुए पश्चिम द्वारान्त लिखें, तृतीय पाद को उत्तरद्वारान्त तिर्यक् गति में तथा मन्त्र के चतुर्थ पाद को भी तिर्यक् गति में दक्षिण द्वार के अन्त तक लिखें। इस

प्रकार मध्य में लिखित अक्षर समूहों की चारों दिशाओं में मूल मन्त्र के विभक्त पादों को लिखकर चारों पादों के आगे तथा चतुरस्र के चारो कोणों में भू-बीज 'ग्लौं' लिखें। इस यन्त्र को कपड़े पर अथवा समतल पाषाण पट्ट पर लिखकर इसके ऊपर पीली रस्सी लपेट कर तथा इसे दो पत्थरों के बीच दबाकर उचित स्थान पर स्थापित कर दें। फिर नित्य इस पर देवी का आवाहन करके पीतोपचारों से पूजन करें। इससे साध्य की गति-मति, मुखादि का स्तम्भन हो जाता है।

पूर्ववत् यन्त्रमालिख्य पाषाणपट्टे पटे वा।
पीत सूत्रेणावेष्ट्य च तद्वत्तु सम्पुटी कृत्य।।
शय्यां पातालसंस्थाञ्च खनेत् खातं प्रयत्नतः।
वामहस्ते न्यसेत् खातं पीतपुष्पेण पूजयेत्।।
महादाश्चर्य्यजनकं गतिस्तम्भनमुत्तमम्।

उपर्युक्त चतुरस्र वाले यन्त्र को पूर्ववत् पत्थर अथवा कपड़े पर बनाकर, उस पर पीला तन्तु (धागा या रस्सी) लपेट कर तथा दो पत्थरों के मध्य सम्पुटीकृत करके साध्य की शय्या के नीचे जमीन में बायें हाथ से गड्ढा खोदकर तथा बांये हाथ से ही उसमें यन्त्र को रखकर गड्ढे को पूरा कर दें। फिर पूर्ववत् इसका पूजन करें। आश्चर्यजनक रूप से शीघ्र ही गति-मति आदि के स्तम्भन के लिए यह प्रयोग सर्वोत्तम है।

विमर्श - उपर्युक्त यन्त्र में 'अमुकस्य' के साथ 'रेतः स्तम्भय' लिखकर पूर्ववत् यन्त्र की रचना तथा अन्य सभी प्रायोगिक कर्म करने से साध्य (साधक यदि अपना नाम लिखे तो स्वयं) के वीर्य का स्तम्भन होता है।

श्मशान - खर्परं ग्राह्यं श्मशानाङ्गार माहरेत्।।
मायाबीजं त्रिधालिख्य साध्य संज्ञां च मध्यतः।
अपसव्ये भावनीया त्रिरेखा-वलयानया।।
वाम हस्तेन निखनेत् खर्परं तदधोमुखम्।
छादयेत् वामपादेन मलोत्सर्गं तथोपरि।।
स्तम्भनं चैव देवेशि रिपूणां मुख बन्धनम्।

श्मशान में पड़े हुए खपड़े को उठाकर उस पर चिता के कोयले से त्रिकोण बनाकर तीनों कोणों में 'ह्रीं' लिखें। त्रिकोण के मध्य में साध्य नाम लिखे। त्रिकोण के ऊपर तीन वृत्त बनाकर दक्षिणावर्त क्रम से रेखाओं पर तीन बार बगला-मूल मन्त्र लिखें। इसके बाद किसी निर्जन स्थान पर भूमि पर गड्ढा खोदकर, उसमें खपड़े को अधोमुख रखकर, गड्ढे को बायें पैर से मिट्टी द्वारा भर दें। फिर उसके ऊपर नित्य मल त्याग करें। हे देवेशि! इस प्रयोग से शत्रुओं का मुख स्तम्भन हो जाता है।

ताटङ्कपत्रमादाय लिखेत् साध्यं च नामतः।।
आद्यन्ते विलिखेद्बीजं त्रिविधोत्तरकं लिखेत्।
वामहस्त-पुटङ्कृत्वा करे चादाय कण्टकान्।।

सप्तसंख्यकण्टकानि भित्त्वा चैकं पुटीकृतम्।
पृथग्विद्यां समुच्चार्य्य नाम साध्यस्य साधकः।।
भाण्डमध्ये क्षिपेत्तञ्च सौवीरेण च पूरयेत्।
स्वगृहे वाह्य देशेतु वायव्ये चैव कोणके।।
वामहस्ते खनेत् खातं वाम पादेन पूरयेत्।
गति स्तम्भं प्रयोगं च शीघ्रं च प्रत्ययावहम्।।

इस यन्त्र की रचना के लिए साधक एक ताड़ के पत्ते को लेकर उस पर कर्म सहित साध्य का नाम (अमुकस्य गतिं मतिं मुखं स्तम्भय) लिखे। इसके आदि तथा अन्त में 'ह्लीं' लिखकर समस्त वर्ण समूहों के ऊपर वृत्ताकार रूप से तीन बार बगला मूल मन्त्र लिखें। फिर बायें हाथ में पत्ते को तथा दाहिने हाथ में सात कांटें लेकर एक-एक काँटें से पत्र को बेधते हुए उसे दृढ़ता पूर्वक पुटित कर दें। काँटों को वेधते समय प्रत्येक बार साध्य नाम सहित मूल-मन्त्र का उच्चारण करता रहे। तत्पश्चात् इस पुटित पत्र को किसी छोटे घट के समान पात्र में डालकर उसे काँजी से भर दें। पात्र को ढककर साधक अपने घर से बाहर, वायव्य कोण में बांये हाथ से गड्ढा खोदकर, उसमें इस पात्र को रखकर, बांये पैर से मिट्टी द्वारा इस गड्ढे को पूरा कर दें। यह गतिस्तम्भक प्रयोग विश्वसनीय तथा शीघ्र ही फल देने वाला है। अर्थात् इस प्रयोग से निश्चित रूप से शीघ्र ही साध्य की गति-मति आदि का स्तम्भन हो जाता है।

।। दिव्य स्तम्भन-प्रयोगाः।।

दिव्य स्तम्भकरं देवि! नान्यग्रन्थेष्वपीरितम्।
तत्प्रीत्या कथयाम्यद्य, शृणु त्वं प्रियमुत्तमम्।।
यत्र स्थाने भवेद् दिव्यं, देवालये गृहेऽपि वा।
तत्र स्थाने लिखेद्विद्यां, साधकात्साध्य नामतः।।
आटरूषस्य पत्राणि, परिमृज्य तथोपरि।
स्तम्भयेति सप्त दिव्यानि कृत दोषोऽपि शुद्धयति।।
उत्तरा-वारूणी मूलं, सप्तविद्याभिमन्त्रितम्।
जलमध्ये तु तत्क्षिप्तेन, जल स्तम्भनकारकम।।
तदभिमन्त्रितं मूलं, जले स्नानमाचरेत्।
महाकृतस्य दोषस्य कृतदिव्यो विशुद्धयति।।
अथवा दीपमार्गेण रात्रौ कृत्वा तु मण्डलम्।
भूर्ज-पत्रे समालिख्य पूर्वोक्त-द्रव्यकेण च।।
दीपं प्रज्ज्वालयेद्यत्नात् कपिलाज्येन पूरितम्।
तावत्तु दीपयेद्दीपं यावद् दिव्यं प्रशाम्यति।।
समयाय साधकाय पुत्रिकां कुशिकां घटम्।
कन्याभिर्योगिनीनान्तु यथाशक्ति च तर्पयेत्।।

एवन्तु कथिता भद्रे कामना प्रत्ययावहम्।
इयन्तु परमा विद्या किमन्यत् परिपृच्छसि।।

हे प्रिये! अब मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए दिव्यों (वायु, अग्नि, जलादि) का स्तम्भन करने वाले श्रेष्ठ प्रयोगों का वर्णन करता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो!।

जिस किसी भी स्थान पर दिव्यों का प्रकोप (आग लगना, आंधी, तूफान, बाढ़ आदि का आना) हो, साधक उसी स्थान पर या किसी देवालय अथवा स्वगृह में बगला यन्त्र (षट्कोण, कोणों में ह्लीं सहित साध्य कर्म, उसके ऊपर वृत्ताकार रूप में मूलमन्त्र के शेषाक्षर फिर भूपुर) साध्य तथा साधक (स्वयं के) नाम से बनाये। इस यन्त्र को अडूसा के पत्रों द्वारा मूल मन्त्र पढ़ते हुए मार्जन करे। मन्त्र को सात बार पढ़कर मार्जन करना चाहिए। इस क्रिया से दिव्यों (विशेष रूप से अग्नि) के प्रभाव का शमन तथा साधक को लगने वाले 'दिव्य स्तम्भन' दोषों की भी शुद्धि हो जाती है।

उत्तरावारुणी (इन्द्रवारुणी-इन्द्रायण) की जड़ को सात बार बगला मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके जल में डालने से जल (वर्षा-बाढ़ आदि) का स्तम्भन होता है। इसी जड़ को सात बार अभिमंत्रित करके जल में डालकर उस जल से स्नान करने से कृतदोष की शान्ति भी हो जाती है।

दिव्यों की शान्ति के लिए एक अन्य प्रयोग भी साधक चाहे तो कर सकता है। इसके लिए एक भोज पत्र पर उपर्युक्त यन्त्र हरताल, हल्दी तथा धतूरा-रस मिश्रण से बनायें। रात्रि में पूजन-मण्डल बनाकर उस पर कपिला गाय के घी से भरा पात्र रखकर उसमें दीप प्रज्ज्वलित करें। दीपक के नीचे भोजपत्र को रखकर तब तक दीपक जलाये रखें जब तक कि दिव्यों की शान्ति नहीं हो जाती। हे देवि! इस सर्वोत्तम विद्या के विभिन्न कामना पूरक विश्वसनीय तथा निश्चित रूप से सिद्धि प्रदान करने वाले प्रयोगों के विषय में मैंने तुमसे कहा। अब तुम और क्या पूछना (जानना) चाहती हो।

।। श्री बगला-यन्त्रार्चन-विधान जिज्ञासा।।

श्री देव्युवाच

साधनं कथितं देव! महाश्चर्य्यप्रदायकम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामि अर्च्चनां विधिपूर्वकाम्।।

श्री देवी ने कहा - हे देव! आपने श्री बगलामुखी के विभिन्न महान आश्चर्यजनक साधनों (प्रयोगों) का वर्णन किया। अब मैं श्री बगलामुखी (के यन्त्र) के विधिपूर्वक अर्चना क्रम को सुनना (जानना) चाहती हूँ। आप कृपा करके इस अर्चन विधान का स्पष्ट निरूपण करें।

।। श्री बगला-यन्त्र-लेखन-विधिः।।

श्री भैरव उवाच

पूजनं श्रृणु देवेशि! साधके सिद्धिदायकम्।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं पूजनं स्मृतम्।।

भूप्रदेशे मनोरम्ये पुष्पामोदप्रपूरिते।
गोमयेनाथ संलिप्य पुष्पप्रकरशोभितम्॥
मण्डपे विधिवत्तत्र आसनञ्च समाचरेत्।
सौवर्णो राजते ताम्रे पैत्तले भूर्जपत्रके॥
कर्पूरागुरुकस्तूरी श्रीखण्ड कुङ्कुमेन च।
लिखेत्तत्र प्रयत्नेन लेखन्या हैमया ततः॥
मध्ये योनिं समालिख्य तद्बाह्ये तु षडस्रकम्।
तद्बाह्येऽष्ट दलं पद्मं तद्बाह्ये षोडशच्छदम्।
चतुरस्रत्रयं बाह्ये चतुर्द्वारोप शोभितम्॥

श्री भैरव ने कहा - हे देवेशि! साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाले श्री बगलामुखी के अर्चन विधान को मैं कहता हूँ, सुनो! श्री बगला का यह अर्चन विधान नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य रूप से तीन प्रकार का कहा गया है।

पूजन के लिए सुन्दर, समतल, मनोरम स्थल का चयन कर उसे गाय के गोबर से लिप्त करें। फिर सुन्दर मण्डप का निर्माण कर उसे सुन्दर, सुगन्धित पुष्पों तथा हारों से सजाकर अगुरु चन्दनादि से धूपित करें। मण्डप में यथास्थान पूजन हेतु आसन की रचना कर उसका अर्चन करे। इसके बाद साधक सोना, चाँदी, ताँबा अथवा पीतल के चौकोर समतल फलक पर या भोज पत्र पर यन्त्र की रचना करे। पहले बिन्दु, त्रिकोण बनाकर उसके ऊपर षट्कोण बनायें। इसके बाद अष्टदल तथा षोडशदल कमल की रचना करके चार द्वारों से युक्त तीन रेखाओं वाला भूपुर बनायें। यन्त्र का लेखन कपूर, अगुरु, कस्तूरी, चन्दन तथा कुंकुम (केशर) के मिश्रण से सोने के तार की लेखनी द्वारा करना चाहिए।

॥ यन्त्रार्चनम्॥

पूर्वद्वारे गणेशञ्च दक्षिणे वटुकं यजेत्।
पश्चिमे योगिनी पूज्या क्षेत्रपालं तथोत्तरे॥
ईशानादिषु सोमान्ते रुद्रपीठं प्रपूजयेत्।
बगला पूर्वपत्रे च स्तम्भिनी च ततः परम्॥
जम्भिनी मोहिनी वश्या अचला च चला तथा।
दुर्द्धरा कल्मषा धीरा कल्पना कालकर्षिणी॥
भ्रामिका मन्दमगना भोगाख्या चैव योगका।
एताः षोडशपत्रेषु गन्धपुष्पाक्षतैर्यजेत्॥
षोडशस्वरसंयुक्ताः सम्प्रदाय कुलागमे।
लिखेन्मध्येषु पीठेषु कल्पयेत् क्षेत्रपद्मकम्॥
ब्राह्माद्याश्चैव पूर्वादौ भैरवाष्टकसंयुताः।
स्थिरमायादिकाः सर्वाः परिपूज्याः कुलोद्भवे॥
डादिहान्ताः षडस्रेषु पूज्याः षड्धातुमातृकाः।
योनिमध्ये मूलविद्यां त्रिभिरञ्जलिभिर्यजेत्॥

पुष्पधूपादिनैवेद्यैर्गन्धताम्बूलदीपकैः।
नीराज्य विधिना पश्चात् जपसंख्यां निवेदयेत्॥
पवित्रारोपणं देवि! वदनेषु यथाविधि।
बलित्रयं ततो दद्यात् पूजनादि महोत्सवैः॥
एवन्तु कथितं भद्रे! गुरोराज्ञाञ्च पालयेत्।
संसिद्धिर्लौकिकी तस्य यथा निगमसारतः।
अपरा चैव शाक्तेयी सा चाभयप्रदा भवेत्॥

साधक को जिस दिन श्री बगलामुखी का अर्चन करना अभीष्ट हो उस दिन प्रातः कृत्यादि करके योगपीठ न्यासादि के पश्चात् मूल मन्त्र द्वारा तीन बार प्राणायाम करें। तत्पश्चात् विनियोग करके ऋष्यादि न्यास करें। यथा –

नारायण ऋषये नमः (शिरसि)
त्रिष्टुप छन्दसे नमः (मुखे)
बगलामुख्यै देवतायै नमः (हृदये)
ह्लीं बीजाय नमः (नाभौ)
स्वाहा शक्तये नमः (गुह्ये)
पुरुषार्थ चतुष्टये (श्री बगलामुखी प्रीतये वा) **विनियोगाय नमः** (पादयोः) (इति कृताञ्जलिर्वदेत्)।

ह्लीं हृदयाय नमः, बगलामुखि शिरसे स्वाहा, सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्, वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुं, जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट, बुद्धिं विनाशय अस्त्राय फट्। इति कर-षडङ्ग न्यासं विधाय मन्त्रवर्ण न्यासं कुर्यात्। यथा–

ॐ नमः शिरसि, ह्रीं नमः ललाटे, बं नमः भ्रूमध्ये, गं नमः दक्षनेत्रे, लां नमः वाम नेत्रे, मु नमः दक्ष कर्णे, खिं नमः वामकर्णे, सं नमः दक्षनसि, र्वं नमः वाम नसि, दुं नमः दक्ष गण्डे, ष्टां नमः वाम गण्डे, नां नमः ऊर्ध्वोष्ठे, वां नमः अधरोष्ठे, चं नमः मुखे, मुं नमः चिबुके, खं नमः गले, पं नमः दक्ष बाहुमूले, दं नमः कूर्परे, स्तं नमः मणिबन्धे, म्भं नमः अंगुलिमूले, यं नमः अंगुल्यग्रे, जिं नमः वामबाहुमूले, ह्वां नमः कूर्परे, कीं नमः मणिबन्धे, लं नमः अंगुलिमूले, यं नमः अंगुल्यग्रे, बुं नमः दक्षोरुमूले, द्धिं नमः जानुनि, विं नमः गुल्फे, नां नमः अंगुलिमूले, शं नमः अंगुल्यग्रे, यं नमः वामोरुमूले, ह्रीं नमः जानुनि, स्वां नमः अंगुलिमूले, हां नमः अंगुल्यग्रे।

इसके पश्चात् ध्यानादि आत्मपूजन करके भुवनेश्वरी पीठ पूजन तथा नव शक्तियों का पूजन कर '**ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः**' से समस्त पीठ का पूजन करें। तदन्तर देवी का आवाहनादि करके यन्त्र में षडङ्ग पूजन करें। इसके बाद देवी के अग्रद्वार से आरम्भ कर प्रदक्षिणा क्रम से चारों द्वारों पर '**गणेशाय नमः**', '**बटुकाय नमः**', '**योगिनीभ्यो नमः**' तथा '**क्षेत्रपालाय नमः**' से गणेश, बटुक, योगिनी तथा क्षेत्रपाल का पूजन करें।

इसके पश्चात् अपने वाम भाग में कल्पित प्राच्यानुसार आग्नेय से आरम्भ कर निर्ऋति पर्यन्त गुरु पंक्तियों का पूजन करें। यथा -

गुरुभ्यो नमः। परम गुरुभ्यो नमः। परमेष्ठि गुरुभ्यो नमः। परापर गुरुभ्यो नमः। अस्मद् गुरुभ्यो नमः। इसके पश्चात् देवी के अग्रभाग से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा क्रम से षोडश दलों में पूजन करें। यथा -

अं बगलायै नमः, आं स्तम्भिन्यै नमः, इं जम्भिन्यै नमः, ईं मोहिन्यै नमः, उं वश्यायै नमः, ऊं अचलायै नमः, ऋं चलायै नमः, ॠं दुर्द्धरायै नमः, लृं कल्मषायै नमः, लॄं धीरायै नमः, एं कल्पनायै नमः, ऐं कालकर्षिण्यै नमः, ओं भ्रामिकायै नमः, औं मन्दगमनायै नमः, अं भोगायै नमः तथा अः योगायै नमः।

अष्ट दलों में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं का पूजन असिताङ्गादि अष्ट भैरवों के साथ ह्लीं बीज का संयोग करके करें। यथा -

ह्लीं असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः। ह्लीं रुरु माहेश्वरीभ्यां नमः। ह्लीं चण्ड कौमारीभ्यां नमः। ह्लीं क्रोधवैष्णवीभ्यां नमः। ह्लीं उन्मत्तवाराहीभ्यां नमः। ह्लीं कपाली इन्द्राणीभ्यां नमः। ह्लीं भीषण चामुण्डाभ्यां नमः। ह्लीं संहारमहालक्ष्मीभ्यां नमः।

षट्कोणों के अन्दर देवी के आगे से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा क्रम से षड्धातु मातृकाओं का पूजन करें। यथा -

डां डाकिन्यै नमः। रां राकिन्यै नमः। लां लाकिन्यै नमः। कां काकिन्यै नमः। शां शाकिन्यै नमः। हां हाकिन्यै नमः।

इसके बाद त्रिकोण के मध्य बिन्दु पर पुनः मूल मन्त्र पढ़कर अञ्जुलि में पुष्प लेकर देवी का तीन बार पूजन करें।

तदन्तर भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में लोकपालों का तथा उनके समीप ही आयुधों का पूजन करें। यथा -

ॐ लं देवाधिपतये इन्द्राय नमः - ॐ वं व्रजाय नमः।
ॐ रं तेजोऽधिपतये अग्नये नमः - ॐ शं शक्तये नमः।
ॐ मं प्रेताधिपतये यमाय नमः - ॐ दं दण्डाय नमः।
ॐ क्षं रक्षोधिपतये निर्ऋतये नमः - ॐ खं खड्गाय नमः।
ॐ वं जलाधिपतये वरूणाय नमः - ॐ पां पाशाय नमः।
ॐ यं प्राणाधिपतये वायवे नमः - ॐ अं अंकुशाय नमः।
ॐ सं ताराधिपतये सोमाय नमः - ॐ गं गदायै नमः।
ॐ हं गणाधिपतये ईशानाय नमः - ॐ शूं शूलाय नमः।
ॐ आं प्रजाधिपतये ब्रह्मणे नमः - ॐ पं पद्माय नमः।
ॐ ह्रीं नागाधिपतये अनन्ताय नमः - ॐ चं चक्राय नमः।

तदुपरान्त गंध, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूलादि देवी को अर्पित कर नीराजन करे। फिर विधिवत मन्त्र का जप करके देवी को जप समर्पित (ॐ गुह्याति गुह्य इत्यादि द्वारा) करे। पवित्रारोप करके दमनक देवी का पूजन का नित्य-होम करे। इसके पश्चात्

बाला प्रकरणोक्त विधि से पीले अन्न द्वारा तीन (पाँच) बलि प्रदान करें।

हे देवि! इस प्रकार मैंने तुमसे श्री भगवती बगलामुखी के पूजन विधान का वर्णन किया। साधक को परम उत्साह एवं आनन्द पूर्वक गुरू की आज्ञानुसार इस कर्म को करना चाहिए जिससे शास्त्रों में कहे गये समस्त लौकिक सिद्धियों की उसे प्राप्ति होती है। निगमों (वेदों) के सारस्वरूप यह परम ब्रह्मस्वरूपा शक्ति साधक के लिए अभय प्रद अर्थात् जन्म मरण के बन्धन से मुक्त कर मुक्ति प्रदान करने वाली होती है।

श्री बगलामुखी (ब्रह्मास्त्र-विद्या) स्तोत्रम्

विनियोग :- **अस्य श्रीबगलामुखीस्तोत्रमन्त्रस्य नारदऋषिः श्री बगलामुखी देवता मम सन्निहितानां दुष्टानां विरोधिनां वाङ्मुखपदजिह्वावर्णानां स्तम्भनार्थे विनियोग:।**

।।ध्यान।।

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेदी-
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीम्
देवीं स्मरामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्।।
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाऽभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि।।
त्रिशूलधारिणीमम्बां सर्वसौभाग्यदायिनीम्।
सर्वाभरणवेशाढ्यां देवीं ध्यात्वा प्रपूजयेत्।।

श्री बगलामुखी स्तोत्र पाठ के लिए संकल्प करके मूल के अनुसार (अथवा निम्नवत्) विनियोग करे।

विनियोग : **अस्य श्री बगलामुखी-स्तोत्रमन्त्रस्य** भगवान्नारद **ऋषि:, बार्हच्छन्दांसि** (अनुष्टुप छन्द:), **श्री बगलामुखी देवता, ह्लीं** (ह्ल्रीं) **बीजं, स्वाहा शक्तिः कीलय** (बगलामुखि) **कीलकं मम सन्निहितानां दूरस्थानां दुष्टानां विरोधिनां पदजिह्वामुख बुद्धिस्तम्भनार्थे श्री परमेश्वरी प्रीत्यर्थे च जपे** (पाठे) **विनियोग:।**

इसके बाद ऋष्यादि न्यास करके 'ह्लां, ह्लीं' इत्यादि से करषडङ्ग न्यास करे। न्यासोपरान्त देवी का ध्यान करे।

सामने विशाल विस्तृत अमृत का समुद्र है। इसके मध्य में मणियों से बना भव्य मण्डप है। मण्डप के मध्य रत्नों से बनी एक वेदी (पीठासन) है, उस पर एक सोने का सिंहासन स्थित है। इस सिंहासन पर सर्वाङ्ग पीतवर्णा भगवती बगलामुखी विराजमान हैं। इनके चारों ओर पीताभ आवरण है। भगवती के शरीराङ्गों पर पुष्प-माला वस्त्राभूषणादि सभी पीतवर्ण के ही सुशोभित हैं। भगवती द्विभुजा (त्रिनेत्रा तथा शीश पर अर्धचन्द्रधारिणी) हैं। भगवती के एक हाथ में मुद्गर है तथा वे दूसरे हाथ से शत्रु की जिह्वा को पकड़े हुए है। इस प्रकार श्री बगलामुखी का ध्यान कर मन ही मन उन्हें प्रणाम करें।

ध्यान के पश्चात् प्रणाम करते समय 'जिह्वाग्रमादायादि' श्लोक का अथवा इसके अर्थ का मानसिक या वाचिक उच्चारण करें।

वांये हाथ से (शत्रु) जिह्वा को पकड़कर, दायें हाथ में ली हुई गदा के प्रहार द्वारा शत्रुओं को चारों ओर से पीड़ित करती हुई, पीतवस्त्रावृता, द्विभुजा देवी बगलामुखी को मैं प्रणाम करता हूँ।

शरीराङ्गों पर यथोचित सर्वाभूषणों को धारण करने के कारण शोभा सम्पन्न, साधकों के कल्याण कारक मांगलिक पदार्थों को देने वाली उनकी वृद्धि भी करने वाली त्रिशूल धारिणी भगवती अम्वा बगला का ध्यान करके उनका पूजन (मानसोपचार) करें। इसके पश्चात् श्रद्धा-भक्ति सहित स्तोत्र का पाठ करें।

चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्डस्थलाम्
लसत्कनकचम्पकद्युतिमदिन्दुविम्बाननाम्।
गदाहतविपक्षकां कलितलोलजिह्वाञ्चलाम्
स्मरामि बगलामुखीं विमुखवाङ्मुखस्तम्भिनीम्॥१॥

स्वर्ण कुण्डलों के हिलने के कारण उसकी आभा से प्रकाशमान सुन्दर कपोलों (गालों) वाली, स्वर्ण तथा चम्पा के पुष्प के समान पीताभ अङ्ग कान्ति वाली, पूर्णिमा के चन्द्र समान सुन्दर मुख वाली, शत्रु की चञ्चल जिह्वा को दृढ़ता से पकड़कर उस (शत्रु) पर गदा से प्रहार करने वाली तथा विमुखों (शत्रुओं अथवा स्वसाधना से परे रहने वाले अभक्तों) के वाणी एवं मुख का स्तम्भन करने वाली श्री बगला मुखी का मैं स्मरण (ध्यान) करता हूँ॥१॥

पीयूषोदधिचारुमध्यविलसद्रत्नोज्ज्वले मण्डपे
तत्सिंहासनमौलिपातितरिपुप्रेतासनाध्यासिनीम्।
स्वर्णाभां करपीड़ितारिरसनां भ्राम्यद्गदाविभ्रमा
मित्थं पश्यति यान्ति तस्य विलयं सद्योऽथ सर्वापदः॥२॥

अमृत समुद्र के मध्य सुन्दर प्रभा युक्त रत्नों से बना एक प्रकाशमान मण्डप है। उसमें स्वर्ण सिंहासन पर स्थित शवासन पर, हे भगवती बगला आप विराजमान हैं। आप अपने स्वर्ण के समान पीताभ बायें हाथ से शत्रु की जिह्वा को मरोड़ती हुई, उस (शत्रु) के सिर को सिंहासन के सम्मुख झुकाये हुए तथा दाहिने हाथ में गदा धारण किये हुए हैं। हे माँ! आपके इस स्वरूप को ध्यान के समय जो भी साधक अपने मानस चक्षुओं से भी देखता है, उसकी समस्त आपदायें (विपत्तियाँ-संकट) शीघ्र ही विलीन हो जाती हैं॥२॥

देवि! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते यः पीतपुष्पाञ्जलिम्
भक्त्यां वामकरे विधाय च पुनर्मन्त्री मनोज्ञाक्षरम्।
पीठध्यानपरोऽथि कुम्भकवशाद्वीजं स्मरेत् पार्थिवम्
तस्यामित्रमुखस्य वाचि हृदये स्तम्भो भवेत्तत्क्षणात्॥३॥

हे देवि! जो भी व्यक्ति आपके चरण कमलों की अर्चना के लिए अपने बायें

हाथ द्वारा पुष्पाञ्जलि समर्पित करता है तथा मन्त्रों का मानस स्पष्ट उच्चारण करते हुए एवं मन्त्र वर्णों के भावों को समझते (उसका चिन्तन) हुए जप करता है, इसी प्रकार कुम्भक करके अपने हृदय पीठ पर आपका ध्यान करता हुआ आपके पार्थिव वीज 'लं' का स्मरण (या 'ह्लीं' का जप) करता है, उसके शत्रु की वाणी मुख हृदय आदि का उसी क्षण (शीघ्र ही) स्तम्भन हो जाता है।।३।।

मन्त्रस्तावदलं विपक्षदलने स्तोत्रं पवित्रञ्च ते
यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां जैत्रं न चित्रं भवेत्।
मातः! श्रीवगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तोर्मुखे
त्वन्नामग्रहणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद्वादिनाम्।।४।।

हे माता! शत्रु-समूहों के विनाश के लिए आपके मन्त्र का जप तथा पवित्र स्तोत्रों का पाठ कर लेना ही साधक के लिए पर्याप्त है, उसे किसी अस्त्र-शस्त्र को ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार प्रतिवादियों के नियन्त्रण (मुख-वाणी के स्तम्भन) तथा तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने के लिए आपके आश्चर्यजनक यन्त्र का अर्चन कर लेना ही काफी है। आपका 'श्री बगला(मुखी)' यह सुन्दर नाम जिस साधक के मुख में सदा रहता है अर्थात् जो नित्य वाचिक जप करता रहता है अथवा जो केवल आवश्यकता के समय सभाओं में स्मरण भर ही कर लेता है, उसके प्रतिवादियों के मुख का तुरन्त स्तम्भन हो जाता है।।४।।

वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा यन्त्रितः
श्रीनित्ये! बगलामुखि! प्रतिदिनं कल्याणि! तुभ्यं नमः।।५।।
दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणं
भूभृत्स्तम्भनकारणं मृगदृशां चेतःसमाकर्षणम्।
सौभाग्यैकनिकेतनं मम दृशोः कारुण्यपूर्णामृतम्
मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः।।६।।

हे श्री (त्रिपुर सुन्दरी)स्वरूपे। नित्या स्वरूपिणि! भगवति बगले! आपके मन्त्र जापक साधक (भक्त) द्वारा यन्त्रित (वशीकृत) वादी (वाचाल अथवा प्रतिवादी) व्यक्ति गूँगा हो जाता है। राजा-भिखारी, अग्नि-शीतल, क्रोधी-शान्त, दुर्जन-सज्जन, तेज चलने वाला-लंगड़ा, अभिमानी (गुरु)-मान रहित (लघु) तथा सर्वज्ञ मूर्ख हो जाता है। हे कल्याणि! मैं प्रतिदिन आपको प्रणाम करता हूँ।।५।।

हे माता! आपके जिस विग्रह (शरीर) का ध्यान मात्र दुष्टों का स्तम्भन करने वाला, प्रबल विघ्नों का विनाश करने वाला, दरिद्रता को निर्मूल करने वाला, राजाओं (से उत्पन्न भय, दण्ड, प्रकोपादि) का स्तम्भन करने वाला, समस्त सौभाग्यों का एक मात्र आश्रय रूप है, मृत्यु को भी मारने में समर्थ अर्थात् भक्तों के काल योग (मृत्यु) को भी टाल देने वाला है तथा जिसकी मृग के समान सुन्दर एवं चञ्चल दृष्टि (आँखें) साधकों के चित्त का आकर्षण करने वाली है, ऐसा आपका वह दिव्य विग्रह

(शरीर) मेरी ओर अमृतमयी करुणापूर्ण दृष्टि से देखता हुआ, मेरे सामने प्रकट हो।।६।।

मातर्भञ्जय मे विपक्षवदनं जिह्वाञ्चलां कीलय
ब्राह्मीं मुद्रय मुद्रयाशु धिषणामंघ्र्योर्गतिं स्तम्भय!
शत्रूंश्चूर्णय चूर्णयाशुगदया गौराङ्गि! पीताम्वरे!
विघ्नौघं बगले! हर प्रतिदिनं कारुण्यपूर्णेक्षणे!।।७।।
मातर्भैरवी! भद्रकालि! विजये! वाराहि! विश्वाश्रये!
श्रीनित्ये! समये! महेशि! बगले! कामेशि! रामे! रमे!।
मातङ्गि! त्रिपुरे! परात्परतरे! स्वर्गापवर्गप्रदे!
दासोऽहं शरणागतं करुणया विश्वेश्वरि! त्राहि माम्।।८।।

हे माँ! आप मेरे शत्रु (शत्रुओं) के मुख को तोड़ दें, उसकी चञ्चल जिह्वा को जड़ कर दें, वाणी को शीघ्र ही बन्द कर दें, तथा बुद्धि एवं पैरों की गति को स्तम्भित कर दें। हे गौराङ्गि! पीताम्बरे! आप अपनी गदा के प्रहार द्वारा शत्रुओं को शीघ्र ही चूर्ण-चूर्ण कर दें। हे बगले! आप प्रतिदिन अपनी करुणापूर्ण दृष्टि के द्वारा मेरे समस्त विघ्न-समूहों का विनाश करती रहें।।७।।

स्वर्ग तथा अपवर्ग (भुक्ति एवं मुक्ति) दोनों को प्रदान करने वाली परब्रह्म स्वरूपिणी हे माता! भैरवी, भद्रकाली, विजया, वाराही, विश्वाश्रया, श्रीनित्या, समया, माहेश्वरी, बगला, कामेश्वरी, रामा (वामा), लक्ष्मी (रमा), मातङ्गी, त्रिपुर सुन्दरी आदि जितने भी नाम व स्वरूप हैं, सबके रूप में आप ही स्थित हैं। हे विश्वेश्वरि! मैं आपका सेवक (सर्वसमर्पित भक्त) हूँ, आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझ पर कृपा करें तथा सांसारिक आपदाओं सहित जन्म-मरण के भय से मेरी रक्षा करें।।८।।

संरम्भे चौरसङ्घे प्रहरणसमये बन्धने वारिमध्ये
वह्नौ वादे विवादे प्रकुपितनृपतौ दिव्यकाले निशायाम्।
वश्ये वा स्तम्भने वा रिपुवधसमये निर्जने वा वने वा
गच्छंस्तिष्ठंस्त्रिकालं यदि पठति शिवं प्राप्नुयादाशु धीरः।।९।।
नित्यं स्तोत्रमिदं पवित्रमिह यो देव्याः पठत्यादरात्
धृत्वा यन्त्रमिमं तथैव समरे बाहौ करे वा गले।
राजानोऽप्यरयो मदान्धकरिणः सर्पा मृगेन्द्रादिका
एते यान्ति विमोहिता रिपुगणा लक्ष्मीः स्थिरा सिद्धयः।।१०।।

किसी कार्य के प्रारम्भ काल में (अथवा युद्ध, संकट, विप्लव आदि के समय)चोरों के समूहों में पड़ जाने पर, किसी के द्वारा स्वयं पर प्रहार होने की दशा में, बन्धन में पड़ने पर, जल तथा अग्नि के मध्य फँस जाने पर, विपक्षियों से शास्त्रार्थ अथवा मौखिक कलह होने पर, राजा के द्वारा क्रोधित होने पर, अर्धरात्रि काल में, वशीकृत अथवा स्तम्भित होने पर, शत्रु द्वारा स्वयं के वध होने की अवस्था में, जनशून्य स्थान अथवा वन में अर्थात् किसी भी प्रकार की विपत्ति की अवस्था में जो साधक (भक्त) तीनों कालों में बैठे हुए अथवा चलते-फिरते सभी कर्मों को करते

हुए भी आपके नाम का जप तथा स्तोत्रों का पाठ करता रहता है, वह शीघ्र ही सभी संकटों से मुक्त होकर कल्याण का भागी होता है।।९।।

जो व्यक्ति भगवती बगला के इस पवित्र स्तोत्र का नित्य आदर सहित पाठ करता है तथा युद्ध (संकट) के समय देवी के यन्त्र को अपने बाहु, कर (मणिबन्ध) अथवा गले में धारण किये रहता है, उसके सम्मुख राजाओं, शत्रुओं, मदान्ध हाथियों, सर्पों, सिंहों आदि इन सभी के समूह मोहित हो जाते हैं अर्थात् उसको किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा पाते। यही नहीं उस व्यक्ति के घर में रहने वाली लक्ष्मी तथा उसकी सिद्धियाँ भी चिरस्थायी होती हैं।।१०।।

विद्या लक्ष्मीः सर्वसौभाग्यमायुः
पुत्राः सम्पद्राज्यमिष्टार्थसिद्धिः
मातः श्रेयः सर्ववश्यत्वसिद्धिः
प्राप्तं सर्वं भूतलेत्वत्परेण।।११।।

यत् कृतं जपसन्धानं चिन्तितं परमेश्वरि!।
रिपूणां स्तम्भनार्थं हि तद्गृहाण नमोऽस्तुते।।१२।।
पीताम्बरां द्विहस्ताञ्च त्रिनेत्रां गात्रकोज्ज्वलाम्।
शिलामुद्गरहस्ताञ्च स्मरेत् तां बगलामुखीम्।।१३।।

हे माता! आपके आश्रय परायण होकर भक्तिपूर्वक जो साधक आपके इस स्तोत्र का नित्य पाठ करता है, वह विद्या, लक्ष्मी, सर्वसौभाग्य, आयु, पुत्र, सम्पत्ति, राज्य, अभीष्ट काम सिद्धि, कल्याण, सर्व वश्यत्व सिद्धि आदि जिस किसी भी वस्तु की इच्छा करता है उसे वह प्राप्त हो जाता है। इस संसार में उस भक्त के लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं होता।।११।।

हे माता! शत्रुओं के स्तम्भन (वशीकरण, विनाशादि) के लिए मैंने आपसे सम्बन्धित जो जो कर्म-अर्चन, पूजन, ध्यान, जप, स्तोत्र पाठादि किया है, वे सभी आपको अर्पित करता हूँ, आप इसे स्वीकार करें। आपको मेरा प्रणाम है।।१२।।

पीला वस्त्र धारण करने वाली, पीत-गौर आभायुक्त शरीर वाली, त्रिनेत्रा, अपने दोनों हाथों में शिला तथा मुद्गर धारण करने वाली बगलामुखी का मैं ध्यान स्मरण करता हूँ।।१३।।

सिद्धिं साध्येऽवगन्तुं गुरुवरवचनेष्वार्हविश्वासभाजाम्
स्वान्तः पद्मासनस्थां वररुचिवगलां ध्यायतां तारताराम्।
गायत्रीपूतवाचां हरिहरमनने तत्पराणां नराणाम्
प्रातर्मध्याह्नकाले स्तवपठनमिदं कार्य्यसिद्धिप्रदं स्यात्।।१४।।

जिस साधक को स्वगुरु के वचनों पर विश्वास है, जो अपने अन्तः करण में पद्मासन की दशा में बैठी हुई सुन्दर, आकर्षक श्री बगलामुखी के स्वरूप का ध्यान करता हुआ बीजाक्षरों सहित मन्त्र का मानसिक जप भी करता है उसे ही अपने साध्य की सिद्धि प्राप्त होती है। जो नित्य ब्रह्म गायत्री (या बगला गायत्री) का जप करता है, हरि तथा हर का मनन-चिन्तन करने के साथ ही भक्ति परायण भी है तथा प्रातः

एवं मध्यान्ह काल में इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसके सभी कार्य निश्चित ही सफल एवं सम्पूर्ण होते हैं।।१४।।

ब्रह्मास्त्रमिति विख्यातं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
गुरू-भक्ताय दातव्यं न देयं यस्य कस्यचित्।।१५।।

।। इति श्री कृष्णविद्यावागीशभट्टाचार्य कृतायां पट्कर्म दीपिकायां शांतिकल्पे स्तम्भनकर्माणि पञ्चमोद्देशः।।

श्री बगलामुखी का यह त्रिलोक दुर्लभ स्तोत्र 'ब्रह्मास्त्र स्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका ज्ञान गुरू के द्वारा केवल अपने तथा भगवती के भक्तों को ही प्रदान किया जाना चाहिए, जिस किसी भी अनधिकारी व्यक्ति को इसका उपदेश नहीं करना चाहिए।।१५।।

।।श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीशभट्टाचार्य कृत षट्कर्मदीपिका में
शान्तिकल्प के अन्तर्गत स्तम्भन कर्म रूप पञ्चमोद्देश
की 'अन्जलि' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ षष्ठोद्देशः

।। श्री हरिद्रागणपति प्रयोगः।।

अथवान्यप्रकारेण स्तम्भनं कारयेत् सुधीः।
सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वशान्तिकरं परम्।।
देवगन्धर्व्वयक्षाणां पिशाचानां तथैव च।
भूतानाञ्च तथा नृणां मृगाणां पक्षिणां तथा।।
चित्तप्रमोहनकरं जीवाकर्षणकारकम्।
सर्व्वेषां स्तम्भनकरं वृष्टिमारुतयोस्तथा।।
सेनायाः स्तम्भनञ्चैव व्यवहारगणैस्तथा।
अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं विविधायुधकस्य च।।
वाक्स्तम्भं सर्व्वविद्यानामहितानाञ्च सर्व्वशः।
गवामप्याखुसर्पाणां गतिस्तम्भनमेव च।।
रिपूणां क्रोधसंस्तम्भं रतिशुक्रमनन्तरम्।
युवतीनां मनःस्तम्भं यूनाञ्च हृदयं तथा।।
स्तम्भनं राजकोपस्य अमात्यस्य विशेषतः।
अन्याषां जीवजातीनां क्षिप्रं स्तम्भनकारकम्।।
रिपूणां द्वेषकरणं विश्लिष्टं श्लिष्टयोर्भवेत्।
उच्चाटकरणं तेषामुन्मादकरणं तथा।।
सर्व्वभूतवशीकारं सर्व्वभूतमनोहरम्।
आयुष्करं धनकरं श्रीसौभाग्यकरं परम्।।
तत्तत्कर्मोक्तमन्त्राणां भेदांश्च विविधांस्तथा।
प्रयोगाणि च सर्व्वाणि शृणु संक्षेपतो मुने!।१।।

स्तम्भन कर्म के लिए साधक बगला मुखी के मन्त्र-यन्त्र के अतिरिक्त श्री हरिद्रा गणपति के मन्त्र-यन्त्र का भी प्रयोग कर सकता है। त्रैलोक्य दुर्लभ यह मन्त्र-यन्त्र सभी बाधाओं को दूर करने वाला, सभी प्रकार के शारीरिक मानसिक रोगों, ग्रह, भूत, मन्त्र-यन्त्र के प्रभावों का शमन करने वाला, देव, गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, भूत, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि समस्त जीवों के चित्त को मोहित कर उनका आकर्षण एवं स्तम्भन करने वाला, वर्षा, वायु, अग्नि का स्तम्भन करने वाला, सेना, शारीरिक चेष्टाओं, इन्द्रियों, विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों, वाणी, विद्या, शत्रुओं, हानिप्रद कार्यों, गायों, चूहों, सर्पो आदि का स्तम्भन करने वाला है। यह मन्त्र शत्रुओं के क्रोध का स्तम्भक, रति क्रिया काल में शुक्र (वीर्य) स्तम्भक, स्त्री एवं पुरुषों (युवक-युवतियों) के मन तथा हृदय एवं उनके परस्पर प्रेम का स्तम्भक, राजकोप विशेष रूप से मन्त्रियों के क्रोध तथा सभी प्रकार के जीवों के प्रकोप को स्तम्भित (प्रशान्त) करने वाला

है। शत्रुओं के मध्य विद्वेष करने वाला, परस्पर प्रेम करने वाले दो व्यक्तियों को विलग कर देने वाला, उनमें परस्पर उच्चाटन-उन्माद उत्पन्न करने वाला समस्त प्राणियों के मन को आकर्षित कर उनको वशीकृत करने वाला तथा साधक की आयु की वृद्धि करने वाला, धन-सम्पत्ति प्रदान कर उसके सौभाग्य को बढ़ाने वाला है।

भिन्न-भिन्न कर्मों के अनुसार उनकी सिद्धि के लिए मन्त्रों के अनेक भेद हैं। अव मैं इस (हरिद्रा गणपति मन्त्र) के विभिन्न प्रयोगों के विषय में संक्षिप्त रूप से कहता हूँ। सुनो!।१।।

।। मन्त्रोद्धारः ऋषि-छन्दादि-न्यासश्च।।

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने!।
वेदादि प्रथमं प्रोक्तं हुङ्कारं तदनन्तरम्।।
कामान्तं बिन्दुसंयुक्तं तृतीयं बीजमुच्चरेत्।
पुनश्च वीजं भूवीजं द्विसप्तस्वरभूषितम्।।
एवं बीजं समुद्धृत्य तदन्ते मुनिसत्तम!।
हरिद्रागणशब्दान्ते पतये च पदं स्मृतम्।।
वरशब्दयुगं पश्चाद्दकारेण समन्वितम्।
सर्व्वशब्दं जनपदं हृदयं स्तम्भयद्वयम्।
स्वाहान्तं मन्त्रमेवं स्याद्द्वात्रिंशद्वर्णसंयुतम्।
स्तम्भयद्वयकस्थाने आकर्षयपदद्वयम्।।

मन्त्रो यथा - **"ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रा गणपतये वरवरद**
सर्व्वजन हृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा"।।२।।
मदनोऽस्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टब् निगद्यते।
देवो हरिद्रगणपः सर्व्वलोकविमोहनः।।
बीजेन दीर्घयुक्तेन जातियुक्तेन बुद्धिमान्।
षडङ्गमाचरेद्भक्त्या सर्व्वकामार्थसिद्धये।।३।।

मन्त्र मूल में स्पष्ट है। इस मन्त्र के ऋषि मदन, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता हरिद्रा गणपति हैं। मन्त्र में 'स्तम्भन' के स्थान पर आकर्षण के लिए 'आकर्षय' तथा उच्चाटन के लिए 'उच्चाटय' का प्रयोग करें। कर-षडङ्ग न्यास गां, गीं, गूं (अथवा ग्लां, ग्लीं, ग्लूं) इत्यादि से करें।

।। हरिद्रा गणपति ध्यानम्।।

ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि सर्व्वसिद्धिप्रदायकम्।
रत्नमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनोपरि।।
पीतवर्णांशुकालेपमाल्याभरणभास्वरम्।
वीरं वा विदितं देवं गजवक्त्रं त्रिलोचनम्।।
पाशाङ्कुशक्रोधमुद्रां परशुञ्चाभयं वरम्।
दधानं देवदेवेशं ध्यायेद्देवमनन्यधीः।।

अब मैं सर्वसिद्धि प्रदायक हरिद्रा गणपति के ध्यान स्वरूप को कहता हूँ। रत्न निर्मित-मण्डल-मध्यस्थ सिंहासन पर गजमुख, त्रिनेत्रधारी, पीतवर्ण वस्त्र, लेप, माला, आभूषणादि धारण किये हुए, स्वतेज से प्रकाशमान, हाथों में पाश, अंकुश, क्रोध मुद्रा (मुष्टि), परशु, अभय तथा वरमुद्रा धारण किये हुए, वीरवेश में दिखाई देने वाले देवदेवेश महा (हरिद्रा) गणपति का ध्यान साधक को अनन्यबुद्धि युक्त होकर करना चाहिए।

॥ प्रयोग-विधिः॥

चतुर्थ्यां शुक्लपक्षे तु कन्यका पेषयेन्निशाम्।
तामालिप्य स्वयं स्नात्वा निजदेहं प्रसन्नधीः॥
भक्त्या गुरून् प्रणम्याथ पूजयित्वा यथा बलम्।
वस्त्र हेमाङ्गुरीयाद्यैर्भूषणाद्यैर्विशेषतः॥
तत्प्रसादादधीयीत हरिद्रानुष्टभं मनुम्।
रूपेण पूजयेद्देवं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥
अष्टाधिकसहस्रन्तु जप्त्वा तस्य दशांशतः।
हुनेद्गुड़घृताभ्यक्तैरपूपैश्च समाहितः॥
तन्मानं तर्पयेद्भक्त्या सदाऽऽकर्षति कन्यकाम्।
ततः काम्यानि कर्माणि कुर्य्याद्वै कर्मसिद्धये॥४॥

शुक्ल पक्ष की चतुर्थ तिथि को प्रातः उठकर शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर कन्या के हाथों द्वारा पीसी गई हल्दी का स्वशरीर में लेपकर साधक प्रसन्नतापूर्वक स्नान करे। इसके पश्चात् संध्या-तर्पणादि नित्य-कर्म करके यथा शक्ति गुरू का पूजन करके, वस्त्र, स्वर्णमुद्रिका (अंगूठी), आभूषणादि समर्पित करके उनके द्वारा हरिद्रा गणपति का अनुष्टुप् छन्द वाला यह मन्त्र ग्रहण करे। इसके पश्चात् देव पूजन हेतु आसन पर बैठकर योगपीठ न्यासादि विधिवत सम्पन्न करे। फिर मूलमन्त्र (ग्रहण किये गये मन्त्र) द्वारा साधक तीन बार प्राणायाम करें।

विनियोग - ॐ अस्य श्री हरिद्रागणपति मन्त्रस्य मदन ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, हरिद्रा गणपति देवता सर्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यासः - मदनाय ऋषये नमः (शिरसि)। अनुष्टुप छन्दसे नमः (मुखे)। हरिद्रा गणपतये देवतायै नमः (हृदये)। सर्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः (अंजलौ)।

इसके पश्चात् गां, गीं, गूं इत्यादि से कर षडङ्ग न्यास करे। तत्पश्चात् गन्धाक्षत पुष्पादि द्वारा देवता का पूजन करके एक हजार आठ बार मन्त्र का जप करे। जप का दशांश हवन, घी तथा गुड़ मिश्रित मालपुए द्वारा करे तथा इतनी ही संख्या में तर्पण करे। तर्पण की संख्या के समान संख्या में ही कुमारी कन्याओं तथा ब्रह्मचारियों (स्वाश्रम स्थित नैष्ठिक ब्रह्मचारी) को भोजन कराये। इसके पश्चात् ही साधक इष्ट सिद्धि के लिए काम्य कर्मों (प्रयोगों) को करें।

।। हरिद्रागणपति स्तम्भन यन्त्र-लेखन-विधिः।।

अथ चक्रं प्रवक्ष्यामि गणेशस्य महात्मनः।
स्तभनाकर्षणञ्चैव वश्यं विद्वेषणं तथा।।
उच्चाटनं मारणञ्च यन्त्रः षड्विध उच्यते।
हुङ्कारं विलिखेत् पूर्व्वं गं गणेशं हृदि स्थितम्।।
तद्वहिः प्रणवं लिख्य तन्मध्ये नाम कर्म च।
तद्वहिश्चन्द्रभूवृत्तं तस्मादष्टदलं लिखेत्।।
चतुर्दलेषु हुङ्कारं भूवीजस्योदरे लिखेत्।
चतुष्कोणदलेष्वन्ते चतुर्थवीजमालिखेत्।।
भूपूरस्याष्टकोणेषु भूवीजान्तस्थ हुं लिखेत्।
कोणाग्रादग्रपर्य्यन्तं गजमस्तकमालिखेत्।।
दन्तकाष्टकमध्येषु गणान्तं वीजमालिखेत्।
विलिख्य भूपुरस्याग्रे वर्णान्तं चोच्चरेत् क्रमात्।।
भूपुरेण च संवेष्ट्य तस्य कोण चतुष्टये।
भूवीजे विलिखेदेतत् स्तम्भयान्तमुदाहृतम्।।

स्तम्भन, आकर्षण, वश्य, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण इन छः कर्मो के अनुसार हरिद्रा गणपति के चक्रों (यन्त्रों) की संख्या भी छः कही गई है।

स्तम्भन कर्म हेतु यन्त्र निर्माण की विधि इस प्रकार है -

यथोक्त अधिकरण (भोजपत्रादि) पर यथोक्त लेखन द्रव्य द्वारा अष्टदल कमल वनाये। उसकी कर्णिका के मध्य में वृत्त बनाकर मध्य में साध्य नाम से आवेष्टित प्रणव 'ॐ' लिखें। इस 'ॐ' के उदर में ग्लौं बीज, ग्लौं के उदर में गणेश बीज 'गं' तथा 'गं' के उदर में 'हुं' लिखें। अष्टदल कमल के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर के दलों में 'ग्लौं' बीज के उदर में 'हुं' लिखे तथा आग्नेयादि चारों दलों में केवल 'गलौं' लिखें। अष्टदल कमल से बाहर दो चतुरस्रों के मेल से अष्टकोण बनाकर इसके आठो कोणों में 'ग्लौं' के उदर में 'वं' लिखें तथा कोणों के आगे गजमस्तक (त्रिशूल) बनाकर उस पर 'गं' लिखकर सबके बाहर भूपुर की रचना करके कोणों में 'ग्लौं' तथा पूर्वादि दिशाओं में 'हुं' लिखें।

।। स्तम्भन-यन्त्र प्रयोग-विधिः।।

शुक्रसौम्यदिने सोमवारे वाऽन्यतमेऽपि च।
रात्रौ विविक्तदेशे तु गोमयेनोपलिप्य च।।
देवमारोप्येत् तत्र दृशदं स्थाप्य यत्नतः।
यथा बलं तथा लब्धो हरिद्रां क्षालयेत् ततः।।
निस्त्वग् दृशदि निक्षिप्य पेषयित्वाऽथ कन्यका।
स्वरूपस्य चतुर्भागमष्टविघ्नसमन्वितम्।।
मृद्वा पिष्टवाऽथ संयोज्य पञ्चविंशतिवारकम्।

मनुना शोधयेत् तान्तु सूक्ष्मवस्त्रे विलेखयेत्।।
स्तम्भयन्त्रं विलिख्याऽथ कुर्य्यात् प्राणनिवेशनम्।
हारिद्रेण गणेशानं सर्व्वावयवसंयुतम्।।
कृत्वा कुक्षौ निवेश्याथ यन्त्रं सन्धाय यत्नतः।
पुनः प्राणान् प्रतिष्ठाप्य गन्धपुष्पोपहारकैः।।
यश्च भक्त्या गणेशानं शरीरान्तः प्रणिक्षिपेत्।
जपेदष्टसहस्रन्तु हेमपुष्पैः समर्च्चयेत्।।
सिद्धार्थञ्च निवेद्याऽथ बलिं तत्रैव निक्षिपेत्।
सुशालितण्डुप्रस्थं तदर्धं मुद्गतिन्दुकम्।।
चतुःपलं गुड़ञ्चैव तन्मानं नारिकेलकम्।
मुष्टिमात्रं मरीचं स्यात् तदर्धं सैन्धवं रजः।।
तस्यार्धं जीरकं दद्यात् गुड़स्यार्धं घृतं विदुः।
गोक्षीरेणाढ़केनैव शृतं मन्दाग्निना यतः।।
सिद्धौदनमिति ज्ञेयं विघ्नेशस्य प्रियावहम्।
एतेन हविषा पूपमोदकाद्यैर्विशेषतः।।
चन्दनाऽगुरुकर्पूरताम्बूलैः कृशरादिभिः।
प्रीणयित्वा गणेशानं बलिं दत्त्वा समाहितः।।
शरावेण पिधायात्र स्तोत्रैः स्तुत्वा गणेश्वरम्।
एवमेव दिनैकं वा द्विवारं वा त्रिवारकम्।।
पञ्चाहं वाऽथ सप्ताहं पूजयेद्विघ्ननायकम्।
स्तम्भयेत् सकलान् लोकान् नात्र कार्य्या विचारणा।।५।।

शुक्रवार, सोमवार अथवा अन्य किसी सौम्य दिन में (ग्रन्थान्तरे-आदित्यबुध शुक्राणामेकस्य दिवसे) रात के समय निर्जन स्थान में भूमि को पानी तथा गोबर से लीपकर दीपक जलायें। फिर वहाँ एक सिलबट्टा रखे। आवश्यकतानुसार हल्दी लेकर उसे जल से धोकर छिल्का रहित करके किसी कन्या द्वारा सिलबट्टे पर रखकर पिसवायें। हल्दी की मात्रा का चतुर्थांश लेकर तथा अप्ट विघ्नशों के नामोच्चारण सहित मिट्टी लेकर भली-भाँति पीसकर हल्दी में मिलाकर तथा पच्चीस बार मूल मन्त्र पढ़कर अभिमंत्रित करके उसका शोधन करें। महीन नवीन वस्त्र पर इसका लेप करके उस पर स्तम्भन यन्त्र की रचना करें। इस यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा करके इसे लपेटकर गोली की तरह बना लें। शेष तीन भाग हल्दी द्वारा सुन्दर अङ्ग-प्रत्यङ्ग युक्त गणेश प्रतिमा बनाकर उसके हृदय में उस गुटिका रूप यन्त्र को स्थापित कर दें। इसके बाद पुनः इसकी (मूर्ति की) प्राण प्रतिष्ठा करें। इस गणेश प्रतिमा को किसी धुले हुए शराव (मिट्टी के प्याले जैसे पात्र) में रखकर पीले पुष्पों चन्दनादि से पूजन करके भात का नैवेद्य प्रदान करें। एक हजार आठ बार मन्त्र का जप करके बलि प्रदान करें।

शालि नामक धान से उत्पन्न चावल एक प्रस्थ, मूँग की दाल आधा प्रस्थ,

चार पल गुड़, इतना ही नारियल, एक मुट्ठी काली मिर्च, आधा मुट्ठी सैन्धव नमक, चौथाई मुट्ठी जीरा तथा आधा कुडव घी लेकर इन सबको चार प्रस्थ गो दुग्ध में डालकर धीमी आग में पकायें। इस प्रकार सिद्ध (पकाया) भात या खीर गणेश को अत्यन्त प्रिय है। इस खीर के साथ लड्डू पुआ आदि सहित कपूर से सुवासित सुपाड़ी युक्त ताम्बूल तथा पुष्प चन्दनादि विधि पूर्वक समर्पित कर (बलि देकर) उन्हें सन्तुष्ट करके पृथ्वी पर दण्डवत् लेटकर प्रणाम करे तथा विभिन्न स्तोत्रों द्वारा स्तुति करें। बलि मिट्टी के शरावे में रखकर तथा दूसरे शरावे से ढककर प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार एक दिन, दो दिन, तीन दिन, पाँच अथवा सात दिनों तक (आवश्यकतानुसार) विघ्नराज गणेश का पूजन करें। इस प्रयोग द्वारा साधक समस्त प्राणियों का स्तम्भन करने में समर्थ हो जाता है। इस विषय में किसी भी प्रकार सोच-विचार अथवा संशय करने की आवश्यकता नहीं है।

अथवा स्थापयेद्रात्रौ रणभूमौ गणेश्वरम्।
सेनास्तम्भनमायाति चतुरङ्गबलान्विता।।
नगरे नगरान्तःस्थान् राष्ट्रे राष्ट्रान्तरस्थितान्।
चतुष्पथे ग्राम्यजनान् सभामध्येऽथ वादिनः।।
वृक्षाग्रे वृष्टिसंस्तम्भं जलमध्ये जलस्य च।
सीमायाञ्च महारात्रे मार्गे चौरं गृहे तथा।।
गजाश्वयोश्च शालायां वल्मीके पन्नगादिकान्।
वने सिंहवराहाणां क्रोधे च जलमध्यगे।।
आयुधानां शालमध्ये व्यवहारे तथैव च।
अग्नौ तु सर्व्वविद्यानां गीतानाञ्च तथा स्मृतम्।।
खट्वायां शत्रुसंस्तम्भं भक्ष्यभोज्येषु योषिताम्।
स्थानेष्वेतेषु संस्थाप्य बलिं दद्यात् समाहितः।।
स्तम्भयेदचिरादेव त्रैलोक्यं सचराचरम्।
अमोघमेतत् कर्म स्यात् रहस्यं न प्रकाशयेत्।।६।।

रात में युद्ध भूमि में इस गणेश मूर्ति को स्थापित करने से शत्रु की चतुरंगिणी सेना का स्तम्भन हो जाता है। यदि किसी राष्ट्र (देश) में, नगर में चौराहे पर, ग्राम में तथा सभा के मध्य में इसे स्थापित कर दिया जाता है तो वहाँ के निवासियों तथा सभा में उपस्थित वादियों (के मुख) का स्तम्भन हो जाता है। वृक्ष की शाखा के अग्र भाग में स्थापित करने से वर्षा का स्तम्भन होता है। नगर-ग्राम के चौराहे या उसकी सीमा में, मार्ग में, चोरों के मध्य में, घर में, हाथी-घोड़े आदि की शालाओं में इसे स्थापित करने से वहाँ के सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। घर में बाल्मीकि, चूहे, सर्प आदि का तथा वन में सिंहादि का स्तम्भन होता है। आयुधशाला में स्थापित करने से आयुधों का, जल, अग्नि, समस्त विद्याओं, गीत-गान, नृत्य, स्मृति आदि सभी का इसके द्वारा स्तम्भन हो जाता है। शयन स्थल पर स्थापित करने से रेतस् का स्तम्भन होता है। जिन-जिन स्थानों पर इस मूर्ति को स्थापित किया जाय वहाँ-वहाँ बलि भी

प्रदान करना चाहिए। यदि इन सभी स्थानों पर मूर्ति की स्थापना कर बलि प्रदान किया जाय तो साधक चराचर सहित त्रिलोकी का स्तम्भन कर सकता है। इस यन्त्र-प्रयोग का प्रभाव अमोघ (व्यर्थ न जाने वाला) है, इसे गुप्त ही रखना चाहिए। हर किसी के सामने इसके रहस्य को प्रकट नहीं करना चाहिए।

।। आकर्षण यन्त्र निर्माण-प्रयोग विधिश्च।।

अथाकर्षण यन्त्राख्यं प्रवक्ष्यामि समाहितः।
यन्त्रे हरिद्रासंस्कारं कुर्य्यात् पूर्व्वोक्तवर्त्मना।।
पूर्व्वच्च समालिख्य मायाबीजं गणेश्वरम्।
मध्ये वहिःस्थितान् सर्व्वान् मायाबीजेन वेष्टयेत्।।
भूपूरद्वयकोणेषु चतुष्वेवं महात्मना।
वाणबीजं न्यसेन्मूर्ध्नि ह्रां ह्रीं क्लीं ब्लूं सरुत्तमः।।
इतराष्टसु कोणेषु आं क्रों वर्णद्वयं लिखेत्।
मस्तकेषु प्रतिदिनं वकारञ्च ठकारकम्।।
विलिखेद्विन्दुनादान्तं मन्त्री संयतमानसः।
भूकोणाग्रेष्वष्टशूलं हुङ्कारान्तस्थमालिखेत्।।
मण्डलद्वितयेनैव वारुणेन पुटीकृतम्।
मायाबीजं लिखेत् तत्र कोणेष्वपि चतुष्वपि।।
पिष्टसारे लिखेन्मन्त्री यन्त्रं पूर्व्वोक्तवर्त्मना।
प्राणसंस्थापनं कृत्वा मध्ये विघ्नेशमर्चयेत्।।
हारिद्रेण गणेशानं कृत्वा तत् कुक्षिमध्यगम्।
यन्त्रं विधाय संस्थाप्य पुनः प्राणान् प्रतिष्ठयेत्।।

उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित यन्त्र निर्माण की प्रक्रिया पूरी तरह अव्यवस्थित ही नहीं अस्पष्ट भी है। अतः अन्य ग्रन्थों के आधार पर यन्त्र-रचना विधि का उल्लेख किया जा रहा है।

साधक पूर्ववत ही हल्दी का संस्कार करके महीन वस्त्र पर उसका लेपन कर उस पर यन्त्र की रचना करे। सबसे पहले अष्ट दल कमल बनाकर उसकी कर्णिका के मध्य दो वृत्तों की रचना करे। वृत्तों के मध्य केन्द्र में साध्य नामावेष्टित 'ॐ' लिखकर उसके उदर में माया बीज 'ह्रीं' तथा इसके उदर में 'गं' लिखे। इसके बाद हुङ्कार से लेकर मन्त्र के शेष वर्णों को 'गं' बीज छोड़कर (हुं गलौं हरिद्रा..... आकर्षय-आकर्षय स्वाहा) साध्य नाम को आवेष्टित करते हुए लिखकर दोनों वृत्तों के अन्तराल में माया बीज 'ह्रीं' लिखकर सबको आवेष्टित करें। इसके पश्चात् अष्टदल के प्रत्येक दल में 'आं' 'क्रों' पाशांकुश बीजों को लिखें। पूर्व-दक्षिणादि दिशा दलों के आगे 'वं' तथा आग्नेयादि कोण दलों के आगे 'ठं' लिखकर पूर्ववत् अष्टकोण की रचना करके उसके पूर्व दिशागत कोण में 'द्रां', दक्षिण में 'द्रीं', पश्चिम में 'क्लीं' तथा उत्तरगत कोण 'ब्लूं' लिखें। नैऋत्यादि चारों कोणों में 'सः' लिखकर

अष्ट कोणों के आगे त्रिशूल बनाकर उसके आगे 'हुं' लिखें। फिर प्रत्येक कोणों पर लिखित त्रिशूलों तथा 'हुं' को, उनके ऊपर दो-दो अर्धचन्द्र बनाकर उन्हें सम्पुटित कर वेष्टित दें। इसके बाद अष्टकोण के आग्नेयादि कोण दिशाओं में बने अर्ध चन्द्रों के शीर्षों पर 'ह्रीं' लिखें। तत्पश्चात् प्राण-प्रतिष्ठा करके इस यन्त्रलिखित वस्त्र को पूर्ववत् गोली की भाँति बनाकर पहले की ही भाँति हरिद्रागणपति की मूर्ति बनाकर उसकी कुक्षि में इस गोली को रखकर मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करें।

विघ्नेशयन्त्रमुदाह्य सुकौलालिकया मृदा।
शरावद्वितयं कृत्वा तयोरन्यतरे शुभे॥
निधाय विघ्नकर्त्तारं रक्तपुष्पैः समर्चयेत्।
सिद्धौदनाद्यैः पूर्व्वोक्तप्रकारेण च पूजयेत्॥
मन्त्रे सर्व्वजनस्थान साध्यनाम प्रयोजयेत्।
संस्तम्भयद्वयस्थाने आकर्षयपदद्वयम्॥
योजयित्वाऽष्टसाहस्रं जपेद्वै साध्यदिङ्मुखः।
बलिं दद्याद्गणेशस्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥
इतरेण शरावेण छादयेत् तदनन्तरम्।
एकत्रिपञ्चसप्ताहपर्य्यन्तंपूजयेद्विभुम्॥

कुम्हार के हाथ की मिट्टी तथा गणेश मन्दिर की मिट्टी से निर्मित दो सकोरों के मध्य इस यन्त्र-मूर्ति को रखकर विधिवत् लाल पुष्पों से गणेश का पूजन करना चाहिए। पूर्वोक्त विधि से ही बलि प्रदान करें। मन्त्र का जप करते समय 'सर्वजन' के स्थान पर साध्य का नाम तथा 'स्तम्भय-स्तम्भय' के स्थान पर 'आकर्षय-आकर्षय' का उच्चारण करें। साध्य की ओर मुख करके मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करें। इसके बाद गन्धपुष्पादि से पूजन करके बलि प्रदान करें। बलि को सकोरे में रखकर दूसरे सकोरे से ढक दें। इस प्रकार एक, तीन, पाँच अथवा सात दिनों तक आवश्यकतानुसार विभु स्वरूप गणेश की पूजा करें।

शीघ्रं साध्यः समायाति नात्र कार्य्या विचारणा।
पुरुषोऽप्यथवा नारी वेश्या वाप्सरसां गणाः॥
अचिरेण समायाति हारिद्रस्य प्रसादतः।
राजा वा राजनारी वा राजपुत्रोऽथवा मुने!॥७॥
तालपत्रे विलिख्यैनं यन्त्रमाकर्षणाह्वयम्।
गुड़ेनैव यथा पूर्व्वं प्राणान् संस्थाप्य यत्नतः॥
अर्चयित्वा त्वजाक्षीरे निक्षिप्य साध्यदिङ्मुखः।
क्वाथयेन्मन्त्रजाप्येन नारी पुण्याङ्गना तथा।
अर्चिता वशमायाति विवशा मदनातुरा॥८॥
तप्ताङ्गारे शृतं हव्यं लवणं हिङ्गुसंयुतम्।
स्वरूपेण च संयुक्तं मधूच्छिष्टेन मेलयेत्॥

साध्यप्रतिकृतिं कृत्वा तस्य प्राणान् प्रतिष्ठयेत्।
श्वेतार्कपत्रयुग्मेन पुटीकृत्य तनुं शुभम्॥
जपेद्दीपशिखाग्रे च तथा चाष्टसहस्रकम्।
शीघ्रमायाति युवती मदनाकुलचेतना॥९॥
श्वेतार्कदुग्धं ताम्बूले लिम्पेत् पिष्ट्वा च सर्षपान्।
तत्क्षीरेण च संयुक्तं तैलयन्त्रं समालिखेत्॥
प्राण संस्थापनं कृत्वा मधुनाऽभ्यज्य संयुतम्।
कृत्वैव तत्प्रदीपस्य मूले संस्थाप्य बुद्धिमान्।
दीपाय चार्पयेत् शीघ्रं समायान्ति वधूजना:॥१०॥
ताम्बूलं मधुनाऽभ्यज्य मध्ये यन्त्रं प्रविन्यसेत्।
जपत्वा तु भक्षयेत् साध्यं शीघ्रमायाति स च तम्॥११॥
गन्धपुष्पेऽथवा भौमे भक्ष्ये यन्त्रं प्रविन्यसेत्।
प्राण संस्थापनं कृत्वा सा तदायाति तत्क्षणात्॥१२॥
अथवा तर्पयेद्विद्यां नद्यां वा सिन्धुसङ्गमे।
आगम्य च जलस्याऽभिमुखेनाष्टसहस्रकम्॥
आकर्षयेन्न सन्देहो योजनानां शतोपरि।
किमत्र बहुनोक्तेन ध्यात्वा देवं मनुं जपेत्॥
सर्वे सत्वाः समायान्ति मूर्च्छिता विहगोरगा:॥१३॥

इति श्रीकृष्णविद्यावागीशभट्टाचार्य्यकृतायां पट्कर्म्मदीपिकायां
शान्तिकल्पे स्तम्भनकर्मणि पष्ठोद्देश:।

इस प्रकार के यन्त्र पूजन द्वारा हरिद्रा गणपति की कृपा से साधक का साध्य व्यक्ति पुरुष अथवा स्त्री, वेश्या, अप्सरा, राजा, राजपुत्र, राजमहिषी कोई भी हो शीघ्र ही आकर्षित होकर साधक के पास चला आता है॥७॥

इस आकर्षण यन्त्र को गुड़ तथा पानी के घोल से तालपत्र पर लिखकर प्राण-प्रतिष्ठा करके बकरी के दूध में इस यन्त्र को डाल दें। फिर साध्य की ओर मुख करके मन्त्र को जपते हुए यन्त्र सहित इस दूध को उबालें। इस प्रयोग से वाञ्छित पुण्यशीला स्त्री (देवाङ्गना) भी काम विह्वल होकर वशीभूत हुई साध्य के पास आ जाती है॥८॥

समुद्री नमक, हींग, गणेश मन्दिर की मिट्टी तथा हल्दी एवं मधुमक्खी के छत्ते का मोम इन सबको आपस में भली-भाँति मिलाकर गणेश की एक प्रतिमा बनायें तथा उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करें। सफेद मदार (अर्क, अकवन) के दो पत्तों के मध्य इस प्रतिमा को रखकर मन्त्र का जप (एक हजार आठ की संख्या में) करते हुए इसे (प्रतिमा) दीपाग्नि से तपायें। इससे वाञ्छित स्त्री शीघ्र ही काम विह्वल होकर साधक के पास आ जाती है॥९॥

सफेद मदार के दूध में सरसों पीसकर पान के पत्ते पर लपेट करके, मदार के दूध तथा सरसों के तेल के मिश्रण द्वारा उस पर यन्त्र का लेखन करे। इसकी प्राण प्रतिष्ठा करके इस पर शहद लिप्त कर (शहद से सिक्त कर) लपेट कर, इसे दीपक

के नीचे रखकर, दीप को प्रज्ज्वलित करके मन्त्र का जप करें। इससे वाञ्छित साध्य स्त्रियाँ वशीभूत होकर साध्य के पास आ जाती हैं।।१०।।

पान के पत्ते पर शहद लगाकर उस पर इस आकर्षण यन्त्र को लिखकर, साध्य के नाम का स्मरण करते हुए प्राण-प्रतिष्ठा करे। फिर इसका पूजन करके मन्त्र द्वारा इसे अभिमन्त्रित करके (१०८ बार) साधक स्वयं खा ले। इससे साध्य स्त्री साधक के पास शीघ्र ही आ जाती है।।११।।

पत्र-पुष्प, वस्त्रादि पर यन्त्र लिखकर प्राण-प्रतिष्ठा पूजन कर जिस किसी भी व्यक्ति को इसे दिया जाता है, वह साधक के प्रति आकर्षित हो जाता है।।१२।।

किसी नदी में जल प्रवाह की ओर मुख करके अथवा दो नदियों के संगम स्थल पर तट पर नदी के शुद्ध जल से मन्त्र द्वारा एक हजार आठ बार तर्पण करने से, मन्त्र में जिस साध्य के नाम का प्रयोग किया गया है, वह यदि सौ योजन (चार सौ कोस, 1280 किमी) दूर भी स्थित हो तो भी प्रयोग के प्रभाव से निश्चित रूप से आकर्षित होकर साधक के पास आ जाता है। अधिक क्या कहा जाय, जिस किसी भी प्राणी का स्मरण करके इस मन्त्र का जप तथा यन्त्र-प्रयोग किया जायेगा वह पशु-पक्षी, सर्प, मनुष्य-देव-गंधर्व कोई भी क्यों न हो साधक के प्रति विवशतः मूर्छित हुआ सा आकर्षित होकर उसके समीप आ जायेगा।।१३।।

।। श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीशभट्टाचार्य कृत षट्कर्मदीपिका में
शान्तिकल्प के अन्तर्गत स्तम्भन कर्म रूप षष्ठोद्देश
की 'अंजलि' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ सप्तमोद्देशः

आकर्षणम्

।। मन्त्रोद्धारः।।

आकर्षणविधानानि कथयामि समासतः।
यद्दृष्टं त्रैपुरे तन्त्रे यद्दृष्टं भूतडामरे।।१।।
श्रीवीजं मान्मथं वीजं लज्जावीजं समुद्धरेत्।
प्रथमे प्रणवं दत्त्वा त्रिपुरेति पदं ततः।।
अमुकीति पदं दत्त्वा आकर्षय द्विधा पदम्।
स्वाहान्तं मन्त्रमुद्धृत्य जपेद्दशसहस्रकम्।।२।।

अब त्रिपुरातन्त्र तथा भूत डामर तन्त्रादि ग्रन्थों में आकर्षण का जैसा विधान दृष्टिगोचर होता है, संक्षेप में वैसा कहते हैं।

श्री बीज (श्रीं), मान्मथ बीज (क्लीं) तथा लज्जा बीज (ह्रीं) के पश्चात् त्रिपुरे अमुकीं (अमुकं) आकर्षय आकर्षय स्वाहा' पदों की योजना करे तथा मन्त्र के आदि में प्रणव (ॐ) का योग करे। इस प्रकार निष्पन्न मंत्र -

''ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे अमुकीं आकर्षय आकर्षय स्वाहा।''

आकर्षण के लिए इस मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिए।।२।।

।। सध्यान प्रयोग विधिः।।

षट्कोणचक्रमालिख्य रक्तचन्दनकुङ्कुमैः।
षडङ्गं कारयेन्मन्त्री लज्जावीजसमन्वितैः।।
षड्दीर्घस्वरसंयुक्तैर्नादबिन्दुविभूषितैः।
रक्तपुष्पाक्षतैर्धूपनैवेद्यैः परिपूज्यताम्।।
भावयन् चेतसा देवीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्।
बालार्ककिरणप्रख्यां सिन्दूरारुणविग्रहाम्।।
पद्मञ्च दक्षिणे पाणौ जपमालाञ्च वामके।
मन्त्रस्यास्य प्रसादेन रम्भामपि तथोर्वशीम्।
आकर्षयेन्न सन्देहः किं पुनर्मानुषीमिह।।३।।

मन्त्र साधक भोजपत्र अथवा किसी चौड़े पात्र में लाल चन्दन तथा कुङ्कुम से षट्कोण की आकृति बनाये। इसके मध्य में 'अमुकीं' के स्थान पर साध्य नाम का प्रयोग करते हुए यन्त्र को लिखें। इसके बाद साधक 'ह्रीं' द्वारा कर-षडङ्ग न्यास विधिवत करके यन्त्र पर देवी का षडङ्ग पूजन करे। पूजन से पहले देवी का इस प्रकार से ध्यान करे- देवी का शरीर सिन्दूर के समान लाल वर्ण का है, नवोदित सूर्य की किरणों के समान सम्पूर्ण विग्रह रक्ताभ है, शीश पर अर्धचन्द्र स्थित है, देवी त्रिनेत्रयुक्त हैं, इनके दाहिने हाथ में कमल तथा बांये हाथ में जप-मालिका है।

इस प्रकार देवी का हृदय में ध्यान करके षट्कोण में लाल पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य आदि के द्वारा पूजन करके पुनः षडङ्ग-न्यास करके मन्त्र का जप करे। षडङ्ग-न्यास - ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा इत्यादि रूप से करे।

इस मन्त्र के प्रभाव तथा देवी की कृपा से साधक स्वर्ग की अप्सराओं रम्भा तथा उर्वशी तक का आकर्षण कर सकता है, सामान्य स्त्रियों की तो कोई बात ही नहीं।।३।।

।। स्त्री-आकर्षण प्रयोग।।

भूर्जपत्रे समालिख्य कुङ्कुमालक्तवारिणा।
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीरोचनामिलितञ्च यत्।।
अनामारक्तमिश्रेण कमलाक्षीमनुं लिखेत्।
''ओं ह्रीं कमलाक्षि अमुकीमाकर्षय ओं फट्''।
इमं मन्त्रं जपेदादौ सहस्रैकं ततः पुनः।।
भूर्जपत्रं समादाय गुलिकां कारयेत्ततः।
तेनैव साध्यपादोत्थ-मृत्तिकापङ्कवेष्टिताम्।।
शोषितां तेजसा भानोर्वेष्टयेत् कटुकैः पुनः।
प्रतिमां स्त्रीनिभां कृत्वा क्षिपेत्तस्यास्तथोदरे।।
गुलिकां पातयेत् पात्रे प्रतिमां साध्यरूपिणीम्।
तादृशाभिमुखो भूत्वा निर्जने निशि साधकः।।
ततस्तद्गतचित्तश्च तावद्रूपं जपेन्मनुम्।
यावदायाति सन्त्रस्ता मदनालसविग्रहा।।४।।

कुंकुम, अगरु, कस्तूरी, गोरोचन, अनामिका अंगुली का रक्त तथा आलता (महावर-पैरों में लगाने वाला द्रव) के साथ जल को आपस में भली भाँति मिश्रित कर इसके द्वारा भोजपत्र पर कमलाक्षी मंत्र - ''ॐ ह्रीं कमलाक्षि अमुकीं आकर्षय ॐ फट्'' लिखे। अमुकीं के स्थान पर साध्य-स्त्री का नाम लिखे। प्रयोग से पूर्व साधक को मन्त्र का दश हजार जप कर लेना चाहिए। इसके बाद इस भोज पत्र को मोड़कर गोली की भाँति बना ले। तत्पश्चात् जिस स्त्री का आकर्षण करना अभीष्ट हो उसके पैरों के नीचे की मिट्टी लाकर उसे गीला करके इस भोज पत्र की गुलिका पर लेप कर दें। फिर इसे सूर्य की गर्मी से सुखाकर इसके ऊपर त्रिकटु (पीपल, मीरच तथा सौंठ के) चूर्ण को मिश्रित कर लेप करें।

इसके बाद अन्य मिट्टी के द्वारा साध्य स्त्री की एक काल्पनिक मूर्ति की रचना कर उसके हृदय-स्थल में इस गुलिका (भोज-पत्र) को स्थापित कर दे। इस स्त्रीमूर्ति को किसी पात्र में रखकर, किसी निर्जन स्थान में बैठकर, रात्रि में प्रतिमा की ओर मुख करके, साध्य स्त्री के नाम व रूप का चिन्तन करते हुए साधक मन्त्र का जप करे। मन्त्र का जप तब तक करना चाहिए जब तक वह स्त्री साधक के पास न आ जाय। इस प्रकार के पूजन तथा जप-प्रयोग द्वारा अभीष्ट स्त्री कामातुर होकर

साधक के पास शीघ्र ही आकर्षित होकर चली आती है।।४।।

।। नृप-नर-देवानामाकर्षण-प्रयोगः।।

अथाऽन्यं कथयाम्यत्र नृपाकर्षणहेतवे।
देवस्यापि नरस्यापि मोहिनीमन्त्रजापतः।।५।।
अथ मन्त्रं महेशानि! तारमादौ ततस्त्रपाम्।
पञ्चशायकवीजञ्च दत्त्वा तु भुवनेश्वरीम्।।
मोहिनीति च नामान्ते फट्कारं पुनरालिखेत्।
स्वाहान्तं मन्त्रमुद्धृत्य मध्यवीजेन कारयेत्।।
षडङ्गं दीर्घयुक्तेन चक्रेष्टदलके यजेत्।
प्रथमं साध्यनामानि लेख्यानि च कजोदरे।।
माहिषाश्वेन रक्तेन पूर्व्वमन्त्रेण संयुतम्।
मोहिनीं पद्मकिञ्जल्के जृम्भिणीं स्तम्भिनीं तथा।।
वशङ्करीं कुलेशीञ्च ततो वै विश्ववासिनीम्।
आकर्षिणीं ततः क्लिन्नामर्चयेदष्टपत्रके।।
गन्धपुष्पादिधूपाद्यैर्भक्तियुक्तेन चेतसा।
लक्षजापेन सर्वेषां शीघ्रमाकर्षणं भवेत्।।६।।

इस मोहिनी मन्त्र के जप से मनुष्यों, राजाओं यहाँ तक कि देवताओं का भी आकर्षण किया जा सकता है। इस मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है - पहले तार (ॐ) फिर त्रपा बीज (ह्रीं), पञ्चसायक (कामदेव) बीज (क्लीं), भुवनेश्वरी (ह्रीं) के बाद 'मोहिनी' पद का प्रयोग कर 'फट् स्वाहा' लिखें।

मन्त्र - ''ॐ ह्रीं क्लीं भुवनेश्वरी मोहिनी फट् स्वाहा।''

अष्ट दल कमल चक्र बनाकर उसके मध्य में महिष तथा (अथवा) घोड़े के रक्त से मन्त्र सहित साध्य का नाम लिखे। 'ह्रां हृदयाय नमः' इत्यादि रूप से षडङ्ग पूजन करे। इसके बाद भक्ति पूर्वक गन्ध पुष्पाक्षत धूपादि द्वारा अष्ट पत्रों में मोहिनी, जृम्भिणी, स्तम्भिनी, वशङ्करी, कुलेशी, विश्ववासिनी, आकर्षिणी तथा क्लिन्ना नामक देवताओं का पूजन करे। तत्पश्चात् साधक स्वयं कर-षडङ्ग न्यास करके मन्त्र का एक लाख जप करे। इसके प्रभाव से साधक समस्त प्राणियों का आकर्षण करने में समर्थ हो जाता है।।५,६।।

''ह्रीं कालिकायै विद्महे आकर्षिण्यै धीमहि तन्नः कालिका प्रचोदयात्। ओं आकर्षिणि वज्रकपालधारिणि हुं फट् स्वाहा अमुकीमाकर्षय''।।

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य उग्रसेनि ततः परम्।
नितम्बिनि वह्निजाया विद्या परमदुर्ल्लभा।।७।।

सिन्दूरपुत्तलीं कृत्वा तस्या नाम हृदि विलिख्य पणमूल्येन ताम्बूलं समानीय शरावद्वये नैवेद्यं दत्त्वा अष्टोत्तरशतं कृष्ण-तुलस्या मूलं मन्त्रं पठित्वा पुत्तल्या हृदि नामस्थाने ताड़िते सति सा समायाति।।८।।

उपर्युक्त (मूल में लिखित) ''ह्रीं कालिकायै'' इत्यादि मन्त्र में 'अमुकी' के स्थान पर वाञ्छित स्त्री-पुरुष का नाम उल्लेख करते हुए जपने से भी उस व्यक्ति

का शीघ्र ही आकर्षण होता है।

अन्य मन्त्र - **''ॐ उग्रसेनि नितम्बिनि स्वाहा''।।7।।**

सिन्दूर द्वारा अभिलषित स्त्री की पुत्तली बनाकर उसके हृदय पर उसका नाम लिखे। फिर ईकाई मूल्य (यथा एक रुपये) का पान लाकर दो शरावों (मिट्टी के प्यालों) में नैवेद्य सहित पान को रखकर उसे पुत्तली को अर्पित करें। इसके बाद काली तुलसी की जड़ से, उपर्युक्त मन्त्र (ॐ उग्रसेनि इत्यादि) को जपते हुए पुत्तली के हृदय पर जहाँ नाम अंकित किया गया है, ताड़ित करें। यह क्रिया मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करते हुए करनी है। इस प्रयोग के प्रभाव से वाञ्छित स्त्री शीघ्र ही आकर्षित होकर साधक के पास आ जाती है।।८।।

विद्वेषणम्

।। प्रयोग विधिः।।

अथ विद्वेषणं वक्ष्ये मिथो विद्वेषणं रिपोः।
करणीयं महेशानि! यदुक्तं मालिनीमते।
अन्योऽन्ययुद्धसंरम्भे रोषितौ समरेषु तौ।।१।।

दो व्यक्तियों (शत्रुओं) अथवा समूहों के मन में ऐसी भावना पैंदा कर देना कि वे क्रोध से प्रेरित होकर आपस में ही युद्ध करने लगें, विद्वेषण कहलाताहै।।१।।

तदीयनखरोड्डीनधूलिमादाय साधकः।
धूलिना तेनं विद्वेषस्ताड़नादभिजायते।।२।।

जिन दो व्यक्तियों में परस्पर द्वेष कराना हो उनके पैर के नखों से उत्थित धूल को लाकर उसके द्वारा उनकी ताड़ना करने से उनमें परस्पर विद्वेष पैदा हो जाता है।।२।।

परस्परं रिपोर्वैरं मित्रेण सह निश्चितम्।
महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रेण समालिखेत्।।३।।

भैंस तथा घोड़े की विष्ठा को गोमूत्र में मिलाकर जिन दो व्यक्तियों का नाम साधक लिखेगा उनमें परस्पर विद्वेष उत्पन्न हो जायेगा।।३।।

ययोर्नाम तयोः शीघ्रं विद्वेषञ्च परस्परम्।
रक्तेन माहिषाश्वेन श्मशानवस्त्रके लिखेत्।।४।।

जिन दो व्यक्तियों में विद्वेष उत्पन्न करना हो उनका नाम श्मशान-वस्त्र पर भैंस तथा घोड़े के रक्त से लिखे। शीघ्र उनमें परस्पर विद्वेषण हो जायेगा।।४।।

यस्य नाम भवेत्तस्य काकपक्षेण लेखितम्।
वेष्टेद्विजचाण्डालकेशैरेकतरैस्ततः।
गर्त्ते आमशरावस्थे पितृकाननमध्यतः।।५।।

जिन व्यक्तियों में विद्वेष कराना हो उन सभी के नाम भैंस तथा घोड़े के रक्त से श्मशान-वस्त्र खण्ड पर कौवे के पंख की लेखनी द्वारा लिखकर तथा उसे द्विज अथवा

चाण्डाल के केशों द्वारा आवेष्टित कर किसी कच्चे शराव (मिट्टी के प्याले) में रखकर श्मशान भूमि में गाड़ दें। इस क्रिया से उन सभी व्यक्तियों में परस्पर द्वेष उत्पन्न हो जायेगा।।५।।

।। विद्वेषणाय प्रथम मन्त्र प्रयोगः।।

षट्कोणचक्रमध्ये तु रिपोर्नामसमन्वितम्।
मन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि महाभैरवसंज्ञकम्।।

''ॐ नमो महाभैरवाय रुद्ररूपाय श्माशानवासिने अमुकामुकयोविद्वेषं कुरु कुरु सुरु सुरु हुं फट्''।

एतमन्त्रं लिखेत्तत्र विद्वेषो जायते ध्रुवम्।।६।।

जिन दो व्यक्तियों के मध्य द्वेष उत्पन्न करने की इच्छा है उनके नामों को, एक षट्कोण की रचना कर उसके मध्य में 'ॐ नमो भैरवाय इत्यादि मन्त्र (मूल में लिखित) सहित लिखे। 'अमुकामुकयो:' के स्थान पर नामों का उल्लेख करे। यदि दो से अधिक नाम है तो अन्तिम नाम सप्तमी बहुवचन में लिखें। इस प्रयोग से उनमें परस्पर निश्चित ही विद्वेष उत्पन्न हो जायेगा। यह विधि उपर्युक्त सभी प्रयोगों के लिए है।।६।।

।। विद्वेषणाय द्वितीय मन्त्र-प्रयोगः।।

अन्ययोगमहं वक्ष्ये दुर्लभं वसुधातले।
येन जातेन शत्रूणां विद्वेषं कुरुते ध्रुवम्।।७।।

'ॐ नमो भगवति श्मशानकालिके अमुकं विद्वेषय विद्वेषय हन हन पच पच मथ मथ हुं फट् स्वाहा''।

अमुना मन्त्रराजेन होमयेत् प्रयतः सुधीः।
वह्निकुण्डे निम्बपत्रैः कुटुतैलान्वितैस्तथा।।
प्रज्वाल्य खादिरैर्वह्निं श्मशानोत्थं ततः पुनः।
दशसाहस्रसंयुक्तं यवाक्षततिलान्वितम्।।
भावयेत् कालिकां देवीमिन्द्रनीलसमप्रभाम्।
महोज्ज्वलां व्योमनीलां सुरासुरविमर्दिर्दनीम्।।
त्रिलोचनां महारावां सर्व्वाभरणभूषिाम्।
कपालकर्त्तृकाहस्तां चन्द्रसूर्य्योपरि स्थिताम्।।
शवजालगताञ्चैव प्रेतभैरववेष्टिताम्।
वसन्तीं पितृकान्तारे सर्व्वसिद्धिप्रदायिकाम्।।
लौहश्रुवेण संयुक्तं पूर्व्वोक्तं द्रव्यसञ्चयम्।
होमयेद्विविधैः पुष्पैर्बलिच्छागोपहारकैः।।
पूजयित्वा महेशानीं भक्तियुक्तेन चेतसा।
तद्भस्म च समादाय धारयेदतियत्नतः।।
भस्मना तेन यं हन्याद्विद्वेषो जायते नृणाम्
वह्नि शीतलतां याति पतेद्भूमौ यदा रविः।।
यदि शुष्यति पाथोधिश्चन्द्रमाः यदि वै पतेत्।
तदा मिथ्या भवेदेष योगराजः सुदुर्ल्लभः।।

महायोगोऽयमुद्दिष्टः शम्भुना त्रिपुरामते।
गोपितव्यं प्रयत्नेन यदीच्छेच्चिरजीवितम्।।८।।

शत्रुओं में परस्पर निश्चित रूप विद्वेष उत्पन्न करने वाला यह प्रयोग इस भूतल पर अत्यन्त दुर्लभ कहा जाता है। इस प्रयोग में प्रयुक्त मन्त्र निम्नवत है-

''ॐ नमो भगवति श्मशानकालिके अमुकं विद्वेषय विद्वेषय हन हन पच पच मथ मथ हुं फट् स्वाहा।''

साधक श्मशान से चिताग्नि लाकर त्रिकोण कुण्ड में स्थापित कर खदिर की समिधा द्वारा उसे प्रज्ज्वलित करे। जौ, तिल, चावल, निम्ब पत्र तथा सरसों के तेल का मिश्रण तैयार कर इसके द्वारा लौहे की स्रुवा से दश हजार आहुतियों के प्रदान पूर्वक हवन कार्य करे। प्रत्येक आहुति उपर्युक्त मन्त्र का उच्चारण करके प्रदान करे। इस हवन कर्म से पहले साधक को कालिका देवी का ध्यान करना चाहिए। देवी कालिका के शरीर का वर्ण आकाश के समान नीला है। सर्वाङ्गों से इन्द्रनीलमणि के समान आभा प्रकट हो रही है। महातेजस्विनी स्वरूपा ये देवी सुर तथा असुर दोनों का मान मर्दन करने वाली है। देवी के मुख पर तीन नेत्र हैं, वे सर्वाङ्गसर्वभूषणाभूषित हैं। चन्द्र तथा सूर्य पर स्थित देवी के दोनों हाथों में नरमुण्ड तथा कर्त्तृका हैं। श्मशान निवासिनी देवी के चारों ओर शवों के ढेर बिखरे पड़े हैं तथा प्रेत-भैरवों से घिरी हुई वे भयंकर तीव्र ध्वनि कर रही हैं। देवी भगवती कालिका (काली) प्रसन्न होने पर अपने भक्तों को समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाली हैं।

ध्यान के पश्चात् हवन करके, भक्ति युक्त चित्त से विभिन्न प्रकार के पुष्पों तथा अन्य उपहारों (पूजन समग्रियों) द्वारा शिवा रूपिणी काली का पूजन करके छाग बलि प्रदान करें।

तत्पश्चात् सावधानी पूर्वक यज्ञीय भस्म को संग्रह करके सुरक्षित रख ले। इस भस्म द्वारा जिन व्यक्तियों को ताड़ित किया जायेगा (जिनके सिर अथवा शरीर पर भस्म को डाला जायेगा) उनमें आपस में विद्वेष उत्पन्न हो जायेगा।

यदि अग्नि अपनी दाहकता (उष्णता) का परित्याग कर शीतल हो जाय, चारों समुद्र सूख कर जल विहीन हो जायें अथवा चन्द्र और सूर्य आकाश से पृथिवी पर गिर पड़ें, उसी अवस्था में ही यह दुर्लभ तथा सभी विद्वेषक योगों में राजा स्वरूप (यह) योग मिथ्या (असफल) हो सकता है, अर्थात् उपर्युक्त घटना कभी सम्भव नहीं है अतः इस योग की सफलता भी असन्दिग्ध है। इस योग को पूर्वकाल में भगवान शिव ने कहा था। यदि दीर्घकाल तक जीवित रहने की इच्छा है तो साधक इस योग को सावधानी पूर्वक गुप्त ही रखें।।८।।

श्मशानसम्भवं वस्त्रमानीय लेखयेदथ।
तालकेन शिलायोगाद्विषाभ्यामुक्तमीदृशम्।।
षट्कोणं चक्रराजञ्च शत्रूणां नामटङ्कितम्।
पूर्व्वद्रव्येण विद्वेषं कारयेदथ साधकः।।

"ॐ ह्रीं विद्वेषिणि अमुकामुकयोः परस्परं विद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा"॥९॥

इति श्री कृष्ण विद्यावागीश भट्टाचार्य कृत षट्कर्मदीपिकायां आकर्षण विद्वेषो सप्तमोद्देशः।

श्मशान में पड़ा हुआ कोई वस्त्र का टुकड़ा लाकर उस पर हरिताल तथा मनः शिला के मिश्रण द्वारा षट्कोण बनाकर उसके मध्य में शत्रुओं के नाम लिखे तथा षट्कोण के बाहर "ॐ ह्रीं विद्वेषिणि" इत्यादि मन्त्र (मूल में उल्लिखित) लिखे। इस प्रयोग से षट्कोण चक्र में जिन दो व्यक्तियों (या समूहों) का नाम अंकित है, उनमें परस्पर विद्वेष उत्पन्न हो जायेगा॥९॥

॥ घुर्घुटिका विद्या प्रयोगः॥

चक्रवाह्ये लिखेदेनं मन्त्रं पूर्व्वोक्तवस्तुभिः।
परस्परं भवेद्द्वेषः कथितः कुब्जिकामते॥
पूर्व्व घुर्घुटिके युग्मं ततो मर्कटिके युगम्।
पश्चात्तु विलिखेद्घोरे विद्वेषोद्वेगकारिणि॥
अथ घोराघोरयोः स्यादमुकामुकयोस्ततः।
विद्वेष्य युगं हुं फट् विद्या घुर्घुटिकेरिता॥१०॥

"ॐ घुर्घुटिके घुर्घुटिके मर्कटिके मर्कटिके घोरे विद्वेषोद्वेगकारिणि घोरा घोरयोः अमुकामुकयोः विद्वेषय विद्वेषय हुं फट्।"

कुब्जिकातन्त्र कथित इस घुर्घुटिका विद्या का प्रयोग भी उपर्युक्त विधि के अनुसार करने पर दो व्यक्तियों (अथवा समूहों) के मध्य द्वेष उत्पन्न हो जाता है॥१०॥

॥श्री कृष्णानन्द विद्यावागीश भट्टाचार्य कृत षट्कर्मदीपिका में आकर्षण तथा विद्वेषण नामक सप्तमोद्देश की 'अंजलि' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥

अथ अष्टमोद्देशः

उच्चाटनम्

।। मन्त्र-प्रयोग विधिश्च।।

उच्चाटनविधिं वक्ष्ये यथोक्तं श्रीमतोत्तरे।
निम्बपत्रे लिखेन्नाम महिषाश्वपुरीषकैः।
काकपक्षस्य लेखन्या लेखनीयमनन्तरम्।।

''ॐ नमः काकतुण्डि धवलमुखि देवि! अमुकमुच्चाटय उच्चाटय हुं फट्''।।१।।

एतन्मन्त्रं महादेवि! लिखित्वा पूर्व्ववस्तुभिः।
निम्बवृक्षस्थितं सर्व्वं हुनेत् काकालयं सुधीः।।
श्मशानवह्निमानीय धुस्तूरकाष्ठदीपितम्।
होमं कृत्वा महातैलैरथवा कटुवस्तुभिः।।
पूर्व्वोक्तमनुना तस्य पत्रं राजीकटुप्लुतम्।
सम्पूज्य धवलमुखीं पञ्चोपचारपूजया।।
तद्भस्म प्रक्षिपेच्छत्रोर्मन्दिरोपरि मन्त्रवित्।
ध्यानयुक्तेन चित्तेन शत्रूच्चाटकरं भवेत्।।
धूम्रवर्णां महादेवीं त्रिनेत्रां शशिशेखराम्।
जटाजूटसमायुक्तां व्याघ्रचर्मपरिच्छदाम्।।
कृशाङ्गीमस्थिमालाञ्च कर्त्तृकाञ्च तथाऽम्बुजम्।
कोटराक्षीं भीमदंष्ट्रां पातालसदृशोदरीम्।।
एवंविधाञ्च तां ध्यात्वा कुर्य्यादुच्चाटनं रिपोः।
एवं योगविधिः ख्याती वीरतन्त्रे महेश्वरि!।
सङ्गोप्योऽयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यः कदाचन।।२।।

श्रीमदुत्तर तन्त्र में कथित शत्रूच्चाटन की विधि इस प्रकार है।

भैंस तथा अश्व की विष्ठा से कौवे के पंख की लेखनी द्वारा नीम के पत्तों पर शत्रु का नाम निम्न मन्त्र सहित (अमुकं के स्थान पर शत्रु नाम) लिखे।

मन्त्र - **''ॐ नमः काकतुण्डि धवलमुखि देवि अमुकं उच्चाटय उच्चाटय हुं फट्।''**

इसके पश्चात् किसी नीम के वृक्ष पर स्थित कौवे के पूरे घोसले को लाकर उसके काष्ठों से हवन करे। हवन के लिए श्मशान से अग्नि लाकर उसे धतूरे के काष्ठों द्वारा प्रज्ज्वलित करना चाहिए। इस अग्नि में सरसों के तेल में भिगोकर अथवा कटु वस्तुओं के साथ कौवे के सूमचे घोसले की सभी लकड़ियों को जलाकर उक्त मंत्र का जप करते हुए सहित हवन करे। शत्रुनाम लिखित नीम के पत्ते को भी सरसों

के तेल में भिगोकर उसके द्वारा मन्त्रोच्चारण सहित हवन करें। इसके बाद धवलामुखी देवी का पञ्चोपचार पूजन करके यज्ञीय भस्म को सावधानी पूर्वक ग्रहण कर सुरक्षित रख ले। इस भस्म को शत्रु के घर (अथवा सिर) पर डालने से उसका उच्चाटन होता है। भस्म को शत्रु गृह पर डालने से तथा हवन से पूर्व देवी का हृदय में इस प्रकार ध्यान करे –

महादेवी धवलामुखी के शरीर का वर्ण धूम्र (धुएं के समान) है। देवी के मुख पर तीन नेत्र तथा जटा-जूट युक्त सिर पर अर्धचन्द्र विराजमान है। उनका शरीर दुबला पतला है तथा वे व्याघ्र चर्म धारण की हुई हैं। इनके हाथों में कर्त्तृका तथा कमल है। हड्डियों की माला पहने हुए हैं, आंखें अन्दर धंसी हुई, भयानक दाढ़ों वाली तथा भीतर तक दबे हुए गहरे गड्ढे के समान उदर वाली हैं। इस प्रकार देवी का ध्यान करके ही प्रयोग करना चाहिए।

उच्चाटन का यह योग (प्रयोग विधि) 'वीर तन्त्र' में कहा गया है। इस योग को सर्वथा गुप्त रखें किसी अयोग्य व्यक्ति के सामने प्रकट न करे।।१,२।।

।। अन्य मन्त्र-प्रयोग:।।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य नमो भगवते पदम्।
रुद्राय दीर्घकवचं तथा दंष्ट्राकरालाय।।
अमुकञ्च ततः प्रोच्य सपुत्रबान्धवैः सह।
हनयुग्मं दहयुग्मं पचयुग्मं समुच्चरेत्।।
शीघ्रमुच्चाटय द्वन्द्वं हुं फट् स्वाहाञ्च ठद्वयम्।
ततो वै पञ्चवर्गाणां पञ्चमं बिन्दुसंयुतम्।
वीजपञ्चकमेतद्धि ज्ञातव्यं तन्त्रकोविदैः।।

''ॐ नमो भगवते रुद्राय हुं दंष्ट्राकरालाय अमुकं सपुत्र बान्धवैः सह हन हन दह दह पच पच शीघ्रमुच्चाटय उच्चाटय हुं फट् स्वाहा ठः ठः ङं ञं णं नं मं''।।३।।

उद्यन्मार्त्तण्डकोटिप्रतिमतनुरुचिं सोमसूर्य्याग्निनेत्रम्
विद्युज्ज्वालाकलापोज्ज्वलविपुलजटाजूटबद्धेन्दुखण्डम्।
घण्टाटङ्काभयेष्टान्यपि च निजभुजैर्विभ्रतं भीषणाङ्गम्
श्रीमत्कालाग्निरुद्रं प्रणतभयहरं साट्टहासं भजामि।।

एवं ध्यात्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्य्यात्। ''आं ह्रीं क्रों कालाग्निरुद्र प्राणा इह प्राणाः'' इत्यादि।।४।।

श्मशानभस्म चादाय तेनैवोच्चाटनं मतम्।
काकोलूकस्य पक्षास्तु हुनेदष्टोत्तरं शतम्।
यन्नाम्ना मन्त्रयोगेन तस्य चोच्चाटनं भवेत्।।५।।

इति श्रीकृष्णानन्दविद्यावागीशभट्टाचार्य्यकृतायां
षट्कर्मदीपिकायां उच्चाटनविधिरष्टमोद्देशः।

उच्चाटन के लिए प्रयुक्त होने वाला कालाग्नि रुद्र का मन्त्र ॐ नमो भगवते इत्यादि

मूल में स्पष्ट है।

प्रयोग से पहले साधक रुद्र का ध्यान करके सामर्थ्यानुसार पूजन करे। ध्यान स्वरूप इस प्रकार है -

उदयकालीन करोड़ों सूर्य के प्रकाश के समान भगवान कालाग्नि रुद्र की देह कान्ति है, सोम, सूर्य तथा अग्नि स्वरूप उनके तीन नेत्र हैं, विद्युत तथा अग्नि की लपटों के समान प्रभायुक्त विशाल जटा-जूटों से आबद्ध सिर पर अर्द्ध चन्द्र सुशोभित है। दो हाथों में घंटा तथा टंक एवं अन्य दो हाथ अभय तथा वर मुद्रा में स्थित हैं। सारा शरीर (अथवा मुख) अत्यन्त भयंकर कर है तथा वे अट्टहास हंस रहे हैं अर्थात् बड़ी जोर से ठहाका मारकर हँस रहे हैं। समस्त ऐश्वर्यों से युक्त (तथा उन्हें प्रदान करने वाले) कालाग्रि रुद्र अपने शरण में आये हुए भक्तों के भय को हरने वाले हैं। ऐसे भगवान रुद्र देव का मैं भजन (जप पूजनादि) करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान करके किसी अप्रतिष्ठित शिव मूर्ति या लिङ्ग अथवा यन्त्र पर आव्हान तथा प्राण प्रतिष्ठा मंत्र से प्राण प्रतिष्ठा करके उनका पूजन करें।

इसके पश्चात् कौवे तथा उल्लू के पंखों द्वारा उपर्युक्त मन्त्र से हवन करे। हवन के लिए मन्त्रोच्चार सहित एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करे। हवन कार्य के लिए श्मशान में स्थित चिता द्वारा अग्नि लाना चाहिए। इस प्रयोग के करने से मन्त्र में जिस व्यक्ति के नाम का उल्लेख किया गया है, उसका शीघ्र ही उच्चाटन हो जाता है।।५।।

।।श्री कृष्णानन्द विद्यावागीश भट्टाचार्य कृत षट्कर्म दीपिका में उच्चाटन विधि नामक अष्टमोद्देश की 'अंजलि' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

अथ नवमोद्देशः

मारणम्

तन्त्र राजे -

अभिचारस्य विषयानाकर्णय वदामि ते।
सक्रूरे क्रूरवर्गस्थे चन्द्रे बलिनि शोधने॥
विष्टियोगे च कर्तव्योऽभिचारोऽप्यरिनैधने॥१॥

अब तन्त्रराजोक्त अभिचार की मारण प्रक्रिया को तुम्हारे लिए कहता हूँ, सुनो! जव बली चन्द्रमा क्रूर ग्रहों के साथ ही क्रूर ग्रह-स्थानों में भी स्थित हो तथा विष्टियोग हो तब ही शत्रु के मारण के लिए अभिचार कर्म करना चाहिए॥१॥

॥ मारण-योग्य मनुष्याः॥

पापिष्ठान्नास्तिकांश्चैव देवब्राह्मणनिन्दकान्।
अज्ञांश्च घातकान् सर्वान् क्लेशकर्मसु संस्थितान्॥
क्षेत्रवृत्तिधनस्त्रीणामाहर्त्तारं कुलान्तकम्।
निन्दकं समयानाञ्च पिशुनं राजघातकम्॥
विषाग्निक्रूरशस्त्राद्यैर्हिंसकं प्राणिनां मुदा।
योजयेन्मारणे कर्मण्येतान्न पातकी भवेत॥२॥

पाप कर्म करने वाले, नास्तिक, देव-ब्राह्मण की निन्दा करने वाले, छिपकर पीछे से अथवा गुप्त रहकर प्रहार (हत्या) करने वाले अथवा मूर्खों (बालकों) की हत्या करने वाले, सभी प्रकार के पीड़ादायक कर्मों को करने वाले, जमीन-धन-स्त्री का अपहरण करने वाले, वंश का विनाश करने वाले, समयाचारी (देवता का पूजन-अर्चन जपादि करने वाले) साधकों की निन्दा करने वाले, दूसरों की बुराई (चुगली) करने वाले, राजा का वध करने वाले तथा विष अग्नि एवं शास्त्रों द्वारा क्रूरता पूर्वक प्राणियों की हिंसा करके प्रसन्न होने वाले मनुष्यों के विनाश (मृत्यु) के लिए मारण-कर्म करने वाला साधक पाप का भागी नहीं होता॥२॥

॥ ज्ञातव्य विषयाः॥

दशास्थितिञ्च संवीक्ष्य कुर्य्यान्मारणमात्मवान्।
अनवेक्ष्य कृतं कर्म आत्मानं हन्ति तत्क्षणात्॥३॥
ब्राह्मणं धार्मिकं भूपं वनितानैष्ठिकं नरम्।
वदान्यं सदयं नित्यमभिचारे न योजयेत्।
योजयेद् यदि वैरेण प्रत्यासत्य निहन्ति तम्॥४॥
इदानीं स्थूलहोमन्तु कथयाम्यरिमर्दनम्।
तत्तत्कर्मोदिते कुण्डे कुर्य्याद्धोममुदीरितम्।
विधानं द्वेषनिधनरोगोच्चाटनविग्रहे॥५॥

जिस व्यक्ति के विनाश हेतु साधक मारण-प्रयोग करना चाहता है, उस व्यक्ति की जन्मकुण्डली द्वारा उसके ग्रह-नक्षत्रादि की स्थिति तथा मृत्यु-योगादि की भली-भाँति विवेचना कर लेनी चाहिए। जो साधक इन सब बातों पर बिना विचार किए ही मारण-प्रयोग करता है, वह स्वयं ही अपने विनाश का कारण सिद्ध होता है।।३।।

ब्राह्मण, धार्मिक, राजा, स्त्री, स्व वर्णाश्रमानुसार कर्त्तव्यों का पालन करने वाले (अथवा ब्रह्मचारी), उदार-दानशील तथा दयालु एवं अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मों का पालन करने वाले मनुष्यों के प्रति अभिचार-प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति शत्रुतावश ऐसा करता है तो उल्टे उसी की ही मृत्यु हो जाती है।।४।।

शत्रुओं के दमन हेतु भिन्न-भिन्न कर्मों विद्वेषण, मारण, रोग शान्ति, उच्चाटन, विग्रहादि के लिए कहे गये भिन्न-भिन्न प्रकार के कुण्डों का विधिवत निर्माण करके यथोचित हवनीय-द्रव्यों द्वारा हवन करना चाहिए।।५।।

आयुर्दायं रिपोर्ज्ञात्वा लग्नोक्तर्क्षाणि वीक्ष्य च
तदात्मकग्रहाणाञ्च संस्थितिञ्चाष्टवर्गकम्।।
त्रयाणामानुकूल्येन कुर्य्यात्तदाऽभिचारकम्।
अन्यथा क्रूरकर्माणि कुर्वाणं नाशयन्ति हि।
तान्येव कर्माणि ततस्तत्र च प्रातिकूल्यताम्।।६।।
कुर्य्यात् तद्देवताभक्तिमास्तिक्यं वचनाद् गुरोः।
तत्पार्श्ववर्तिमन्त्रज्ञो नालोच्य रिपुनिग्रहम्।
विदध्यादन्यथा शक्त्या न फलं चात्मनाशनम्।।७।।

साधक को जिस व्यक्ति के लिए मारण-प्रयोग करना अभीष्ट हो, उस व्यक्ति की शेषायु की स्थिति अवश्य जान लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति के जन्म लग्नोक्त नक्षत्रों, लग्न में स्थित ग्रहों तथा अष्टम वर्ग में स्थित ग्रहों तीनों की स्थिति कर्म के अनुकूल होने पर ही अभिचार कर्म करना चाहिए। इन सब स्थितियों पर बिना ध्यान दिए यदि साधक क्रूर अभिचार कर्म करता है तो वह कर्म प्रतिकूल (विपरीत-उल्टा) फलदायी होकर साधक का ही विनाश कर देता है।।६।।

साधक को कर्म के देवता के प्रति भक्ति तथा आस्था रखनी चाहिए। गुरु के सदा निकट रहते हुए उनके वचनानुसार (आज्ञानुसार) कार्य करना चाहिए। शत्रु के विनाश को जानकर उसके प्रति शोक नहीं करना चाहिए। अन्यथा कर्म का समुचित फल न पाकर साधक स्वयं का ही विनाश करता है।।७।।

रिपोरष्टमलग्ने च क्रूरे त्वष्टमराशिगे।
स्थाने कुर्य्यादनिष्टानि तद्विनाशाय साधनम्।।८।।
प्राच्यां मेषवृषौ वह्नौ मिथुनं दक्षिणे तथा।
कुलीरसिंहमिथुनं निर्ऋत्यां कन्यका स्थिता।।
तुलाकीटौ पश्चिमतो धनुर्वायौ तु संस्थितः।
नक्रकुम्भावुत्तरतो मीनो ह्यैशै च संस्थितः।।

एवं राशिक्रमं ज्ञात्वा कुर्य्यात् कर्म विशेषतः।
काले तु पञ्च पञ्च स्युर्घटिका क्रमयोगतः।।९।।
चैत्रादिकेषु मासेषु द्वादशेष्वपि भास्करः।
मेषादिराशिं यो याति तथाऽन्यैर्ग्रहमण्डलैः।
अशुभात्मकहोमन्तु कुर्य्यात्त्र्यस्रे समीरिते।।१०।।

शत्रु की जन्मकुण्डली में उसके जन्म लग्न से अष्टम स्थान तथा अष्टम राशि के क्रूर गृह युक्त होने पर ही साधक को उस शत्रु के मारण हेतु प्रयोग करना चाहिए।

पूर्व दिशा में मेष तथा वृष राशि, आग्नेय में मिथुन, दक्षिण में कर्कट तथा सिंह, नैर्ऋत्य में कन्या, पश्चिम में तुला तथा वृश्चिक, वायव्य में धनु, उत्तर में मकर तथा कुम्भ एवं ईशान कोण में मीन राशि की स्थिति होती है। इस प्रकार राशियों के स्थिति-क्रम को अर्थात् जिस दिशा में कर्म करें तब उस दिशा में स्थित राशि को विशेष रूप से जानकर ही साधक को कर्म करना चाहिए। दिन के साठ घड़ी के काल में पाँच पाँच घड़ी (घटी-दण्ड) एक-एक राशि का काल माना जाता है। इस प्रकार एक ही दिन में बारहों मास की कल्पना की गई है।

चैत्रादि द्वादश मासों में सूर्य एक-एक करके मेषादि बारहों राशियों का भोग करता है। इसी प्रकार अन्य ग्रह भी अपनी गति के अनुसार क्रमशः एक-एक राशि का भोग करते (उनमें स्थित रहते) हुए बारहों राशियों में भ्रमण करते हैं। अशुभ कर्म तृतीय तथा पञ्चम स्थान में अशुभ ग्रह की स्थिति होने पर ही करना चाहिए। इसके लिए हवन कार्य त्रिकोणाकार कुण्ड में करे।।८,९,१०।।

तन्त्रान्तरे - **विद्वेषणाभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते।**
द्विमेखले कोणमुखं हस्तमात्रन्तु सर्वतः।
मानहीनादिकं दोषं नास्ति कुण्डेऽभिचारके।।११।।

विद्वेषण तथा अन्य अभिचार कार्यों के लिए हवन-कर्म त्रिकोणाकार कुण्ड में करना चाहिए। यह कुण्ड दो मेखलाओं से युक्त तथा एक हाथ परिमाप वाला होना चाहिए। कुण्ड की स्थिति मण्डप (ग्राम अथवा शत्रु स्थान) के कोण भाग (आग्नेयादि दिशा) में होना चाहिए। अभिचार कर्म के लिए निर्मित कुण्ड के परिमाप में न्यूनाधिकता होने पर भी कोई दोष नहीं होता है।।११।।

दक्षिणास्येऽभिचारन्तु गदं वह्निमुखो द्विषाम्।
उच्चाटनं वायुमुखो विद्वेषो राक्षसी मुखः।
विदध्यात् पश्चिमायान्तु क्रूराण्यन्यानि कृतस्रशः।।१२।।
स्वदेशे ग्रामगेहादौ तानि कर्माणि तद्दिशि।
विदध्यादपि विध्युक्तमन्यथानर्थमावहेत्।।१३।।
कुण्डादिकरणाशक्तौ स्थण्डिले होममाचरेत्।
गोमयैः परिमृष्टे च सुषमे भूतले समे।।
बालुकाहस्तविस्तारे चतुरङ्गुलमुच्छ्रिते।

मध्ये विदध्याद्धोमन्तु प्रोक्तमेवमशेषतः।।१४।।
व्याघातयोगे हर्षाख्ये विषयोगे च मृत्युजे।
नाशयोगे दीनजे च मृत्यौ क्रकचयोगके।
चण्डीशचण्डायुधके महाकाले च कालके।।१५।।

सामान्यतः अभिचार कर्म के लिए कुण्ड की स्थिति आग्नेय दिशा में होनी चाहिए। शत्रुओं को रोग-विषादि के द्वारा पीड़ित करने के लिए आग्नेय मुख (दिशा में) कुण्ड बनाये। उच्चाटन के लिए वायव्य मुख तथा विद्वेषण के लिए नैर्ऋत्य मुख कुण्ड होना चाहिए। अन्य सभी क्रूर अभिचार कर्मों के लिए पश्चिम दिशा में कुण्ड की स्थिति होनी चाहिए।।१२।।

अपने गृह, ग्राम, देशादि की स्थिति को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न अभिचार कर्मों के लिए बताए गए कुण्डों की यथोचित दिशा में रचना करनी चाहिए तथा साधक को कौन सा कर्म किस दिशा की ओर मुख करके बैठकर करना है एवं उस कर्म से सम्वन्धित क्या-क्या विधि निर्देश हैं, इन सबको जानकर, इनके अनुसार ही अभिचार कर्म करना चाहिए। अन्यथा कर्म का प्रतिकूल प्रभाव होने पर साधक की ही क्षति हो सकती है।।१३।।

यदि साधक कुण्ड की विधिवत रचना में असमर्थ हो तो उसे स्थण्डिल (चौकोर वेदी) पर हवन करना चाहिए। वेदी निर्माण के लिए समतल भूमि को गाय के गोबर द्वारा लिप्त करके, एक हाथ लम्बे-चौड़े भूभाग पर पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर तक बालू की समतल परत बिछा दें। इस प्रकार निर्मित समतल वेदी पर विधिवत हवन कर्म सम्पादित करें।।१४।।

व्याघात योग, हर्ष योग, विष योग, मृत्यु योग, नाश योग, दैन्य योग, क्रकच योग आदि योगों में जब महाकाल ही प्रचण्ड आयुधों को धारण कर शत्रु के विनाश के लिए काल बनकर उपस्थित हों तभी साधक को शत्रु-मारण प्रयोग आरम्भ करना चाहिए।।१५।।

वृक्षमूले कण्टकाख्ये स्थूले पञ्चर्क्षके पुनः।
कुर्य्यात् प्रयोगं प्रत्यर्थिभङ्गाय निधनाय च।
निग्रहाय निरीक्ष्यैनं कुर्य्यात् सिद्धिमवाप्नुयात्।।१६।।
वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भोच्चाटनमारणे।
विदध्यात् पुत्तलीं सम्यक् चतस्रः प्रोक्तयोगतः।।
पिष्टेन सिक्थेन तथा चक्रिहस्तमृदापि च।
साध्यनक्षत्रमृक्षेणाप्युक्तनक्षत्रसंयुतः।।
आसन पादयोः स्थाने कुण्डमध्ये च साधकः।
पिष्टमुत्तरतः कृत्वा स्थापयेत् सिक्थमन्तरे।
एवं साधारणं कृत्वा कुर्य्यात् कर्म समीरितम्।।१७।।

जब शत्रु के लग्न नक्षत्र से पाँचवे नक्षत्र के ग्रह प्रतिकूल एवं प्रबल हो तब ही साधक को किसी कांटेदार वृक्ष के मूल में बैठकर मारण प्रयोग करना चाहिए। वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, स्तम्भन, उच्चाटन तथा मारण कोई भी कर्म करना हो

साधक उपर्युक्त योगों में साध्य की चार पुतलियों की रचना करे। पहली पुतली शालि नामक धान के चावल की पिष्टी द्वारा, दूसरी मधुमक्खी के छत्ते के मोम द्वारा, तीसरी कुम्हार के हाथ की मिट्टी द्वारा और चौथी साध्य के जन्म (नाम) नक्षत्र में उसी नक्षत्र के वृक्ष की लकड़ी द्वारा बनायें। प्रयोग करते समय एक पुतली को आसन के नीचे, एक को पैरों के पास, पिष्ट की पुतली को कुण्ड के मध्य में उत्तान मुख गाड़कर तथा मोम की पुतली को कुण्ड के मध्य ऊपर अधो मुख लटकाकर स्थापित करें। सामान्य रूप से इसी प्रकार पुतलियों को स्थापित करके कर्म करना कहा गया है।।१७।।

सर्पशीर्षश्रुचा होमं कुर्य्यादशुभकर्मणि।
वैरिनाम्ना श्रुचा कृत्वा चरुं तज्जुहुयात्तदा।
त्रिकोणकुण्डे यमदिङ्मुखो हुत्वार्द्धरात्रके।।१७।।
श्मशाने निर्जने देशे विदध्यादभिचारकम्।
यत्राभिचारिहोमन्तु करोति भुवि साधकः।।
तत्राभितो नृपो रक्षां कारयेदात्मसिद्धये।
न चेदरातिनृपतिश्चारैर्ज्ञात्वा निहन्त्यमुम्।।१८।।

अशुभ कर्म में हवन के लिए साँप के सिर (फन) की आकृति वाली स्रुचा का प्रयोग करना चाहिए। शत्रु के नाम का उच्चारण करके स्रुचा में चरु (हवनीय पदार्थ अथवा खीर) लेकर हवन करना चाहिए। श्मशान अथवा किसी जनशून्य स्थान में, अर्धरात्रि में, दक्षिण दिशा की ओर मुख करके बैठ कर त्रिकोण कुण्ड में अभिचार (मारण) के लिए हवन करना चाहिए।

साधक जिस स्थान पर स्थित होकर, किसी राजा के शत्रु का विनाश करने के लिए अभिचार कर्म कर रहा है, उस राजा का कर्तव्य है कि अपने कार्य की सफलता के लिए चारों ओर अपने सैनिकों की नियुक्ति करके साधक की भलीभाँति रक्षा का प्रयत्न करे। अन्यथा शत्रु राजा अपने गुप्तचरों द्वारा इस बात को जानकर उस साधक का वध करवा सकता है।।१८।।

स्वराष्ट्रे तु न कुर्वीत न कुर्वीत स्वमण्डले।
यदि कुर्य्यात् प्रमादेन मान्त्रिकोऽज्ञानमोहितः।
तद्राज्यं पीड़यन्त्येव शनकैररिभृत्यकाः।।१९।।
अक्षद्रुमसमिन्धेऽग्नौ तत्फलैश्च करञ्जकैः।
हैमोदलरसाक्तैश्च होमाच्छत्रून् विनाशयेत्।।२०।।
नक्तमालसमिन्धेऽग्नौ तत्समिद्भिश्च तत्फलैः।
वितस्तिमात्रैस्तैलाक्तैर्हवनाद्वैरिणो मृतिः।।२१।।

साधक को अपने राष्ट्र तथा अपने नगर में अभिचार कर्म (मारणादि) नहीं करना चाहिए। प्रमादवश यदि वह ऐसा करता है तो शत्रुओं (उस राष्ट्र के शत्रु राजाओं) के सेवकों द्वारा वह राज्य पीड़ित किया जाने लगता है और धीरे-धीरे उस राज्य का विनाश कर दिया जाता है।।१९।।

शत्रु के विनाश (मारण) के लिए बहेड़े की लकड़ी द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित कर बहेड़े

तथा करञ्ज के फलों को धतूरे के पत्तों के रस में भिगो कर हवन करना चाहिए।।२०।।

करञ्ज वृक्ष की लकड़ी द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित करके इसी वृक्ष की एक बालिस्त लम्बी समिधाओं तथा फलों को सरसों के तेल में भिगोकर हवन करने से शत्रु की मृत्यु होती है।।२१।।

अरुस्करसमिन्धेऽग्नौ तद्वीजैस्तद्घृतप्लुतैः।
होमादरातेस्तीव्रेण ज्वरेण स्यान्मृतिर्ध्रुवम्।।२२।।
सौवीराक्तैस्तु कार्पासवीजैर्होमात्तु मण्डलात्।
अरातीनामथान्योऽन्यं कलहान्निधनं भवेत्।।२३।।
सर्षपाज्यप्लुतैः शुण्ठीमागधीमरिचैर्हुतात्।
वैरिकर्म्मर्क्षवृक्षाग्नौ मण्डलात्तु मृतिज्ज्वरात्।।२४।।

अरुस्कर-काष्ठ द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित करके इसी के बीजों को घृत में भिगोकर हवन करने से शत्रु तीव्र ज्वर से पीड़ित होकर निश्चित रूप से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।।२२।।

कपास के बीजों को काँजी द्वारा सिक्त करके हवन करने से चालीस दिनों में शत्रु समूह परस्पर लड़-झगड़ कर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।।२३।।

कमरख अथवा शत्रु के जन्म नक्षत्र वृक्ष की लकड़ी से अग्नि प्रज्ज्वलित करके सरसों, सोंठ, बड़ी पीपल तथा काली मिरच को घृत में मिलाकर (अथवा सरसों के तेल में सोंठ पीपल तथा मिरच को मिलाकर) हवन करने से चालीस (अथवा उनचास) दिनों में शत्रु ज्वर से पीड़ित होकर मर जाता है।।२४।।

।। लवण-मन्त्र विधानम्-ऋक् पञ्चकं लवण मन्त्राः।।

अथ लवणमन्त्रस्य विधानमभिधीयते।
ऋगाद्या कथिता पूर्वं लवणाम्भसि पूर्विका।।
लवणादिर्द्वितीयान्या दहाद्या परिकीर्तिता।
तं दग्ध्वाद्या चतुर्थी स्यात् याते पूर्वा तु पञ्चमी।।
लवण मन्त्रः ऋग्वेद - सिद्धसमभिधीयते।
लवणाम्भसि तीक्ष्णोऽसि उग्रोऽसि हृदयं तव।।
लवणस्य पृथिवी माता, लवणस्य वरुणः पिता।
लवणे हूयमाने तु पुनः कुतो निद्राकुतो रतिः।।
तत् पचति पाचयति तच्च छिन्दति भिन्दति।
अमुकस्य दहाङ्गानि दह मांसं दह त्वचम्।।
दह त्वगस्थि लोमानि अस्थिभ्यो मज्जिकां दह।
वसतिर्योजनशते नदीनाञ्च शतान्तरे।।
नगरे लौहप्राकारे कृष्णसर्पशतार्गले।
सन्दग्ध्वानय मे शीघ्रं लवणस्य च तेजसा।।
अत्रैव वशमायातु तद्धि छिन्दति भिन्दति।
या ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा।।

या रात्रिः शल्यविद्धस्य शूलाग्रारोपितस्य च।

अब मारण कर्म हेतु 'लवण मन्त्र-विधान' का निरुपण किया जाता है। इसमें अथर्ववेद की पाँच ऋचाओं का प्रयोग होता है। ये ऋचाएँ निम्न हैं :-

१. लवणाम्भसि तीक्ष्णोऽसि उग्रोऽसि हृदये तव।
लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य वरुणः पिता।
२. लवणे हूयमाने तु पुनः कुतो निद्रा कुतो रतिः।
लवणः पचति पाचयति। लवणं छिन्दति भिन्दति।
अमुकस्य दहगात्राणि दह मांसं दह त्वचम्।
३. दह त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिभ्यो मज्जिकां दह।
यदि वसति योजनशते नदीनां वा शतान्तरे।
नगरे लोहप्राकारे कृष्णसर्पशतार्गले॥
४. तं दग्ध्वा नय मे शीघ्रमग्रे लवणस्य तेजसा।
अत्रैव वशमायातु लवणमन्त्रशक्ति पुरष्कृतः॥
५. या ते रात्रिः शल्यविद्धस्य शूलाग्रारोपितस्य च।
या ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा।

इन ऋचाओं के आदि में "ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं" सहित चिटि मन्त्र जोड़कर अथवा समस्त ऋचाओं के प्रारम्भ में चिटि मन्त्र का संयोग करके जप करना चाहिए। आवरण देवताओं के मन्त्र (ध्यानादि) के प्रारम्भ में उपर्युक्त प्रणवपाशादि त्र्यक्षरों का संयोग करना चाहिए।

॥ लवण मन्त्रस्य ऋषि छन्दादि, चिटिमन्त्रः न्यासश्च॥

अङ्गिरामुनिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्॥
अग्नीरात्रिः पुनर्दुर्गा भद्रकाली च देवता।
चिटिमन्त्राक्षरैः कुर्य्यात् षड़ङ्गानि समाहितः॥
पञ्चभिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम्।
पञ्चवर्णैः शिखा प्रोक्ता कवचं करणाक्षरैः॥
पञ्चभिर्नेत्रमुद्दिष्टं युगलेनास्त्रमीरितम्।
तारं चिटिद्वयं पश्चाच्चाण्डालि तदनन्तरम्॥
महापदाख्यां तां ब्रूयादमुकं मे ततः परम्।
वशमानय ठद्वन्द्वं चिटिमन्त्र उदाहृतः।
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा सर्व्वकामफलप्रदः॥

षडङ्ग न्यास - **ॐ चिटि चिटि हृदयाय नमः। चाण्डालि शिरसे स्वाहा। महाचाण्डालि शिखायै वषट्। अमुकं मे कवचाय हुं। वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्।**

चिटि मन्त्र - **"ॐ चिटि चिटि चाण्डालि महाचाण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा।"**

इन पाँचों लवण ऋचाओं सहित चिटि मन्त्र के ऋषि अङ्गिरा, छन्द अनुष्टुप् (तथा त्रिष्टुप्) एवं देवता अग्नि, रात्रि, दुर्गा तथा भद्रकाली हैं। बीज 'क्रों' तथा शक्ति

'ह्रीं' (प्रपञ्चसारानुसार) हैं। इन पाँच ऋचाओं द्वारा पञ्चाङ्ग न्यास (नेत्र को छोड़कर) अथवा चिटि मन्त्र के वर्णों को पाँच, तीन, पाँच, चार, पाँच तथा दो की संख्या में विभाजित करके क्रमशः हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्र न्यास (षडङ्ग-न्यास) करना चाहिए। न्यास का स्वरूप मूल में स्पष्ट है। चौबीस अक्षरों वाला यह चिटि मन्त्र सभी कामनाओं, विशेष रूप से अभिचार कर्मों को सिद्धि प्रदान करने वाला है।

।। अग्निरात्रि-दुर्गा-भद्रकाली देवतानां ध्यानम्।।

नवकुङ्कुमनिभमग्निं रुचिराकल्पशतमाश्रये त्र्यक्षम्।
स्रुवशक्तीवरमभयं दोर्भिर्दधतं स्थितञ्च रक्तेऽब्जे।।
कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुवक्त्रां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम्।
कपालपाशाङ्कुशशूलहस्तां नीलाम्बरां यामवतीं नमामि।।
कालाम्बुदाभामरिशङ्खशूलखड्गाढ्यहस्तां तरुणेन्दुचूड़ाम्।
भीमां त्रिनेत्रां जितशत्रुवर्गां दुर्गां स्मरेद्दुर्गति भङ्गदक्षाम्।।
टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं संविभ्रती चन्द्रकलाऽवतंसा।
पिङ्गोर्ध्वकेशी शितभीमदंष्ट्रा भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली।।

अग्नि देवता की अङ्ग कान्ति नवीन कुङ्कुम के समान रक्त-वर्ण है। शरीर पर सैकड़ों सुन्दर आभूषण धारण किये हुए हैं। इनके तीन नेत्र हैं तथा लाल कमल के आसन पर स्थित हैं। हाथों में स्रुव, शक्ति, वर तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं।

रात्रि देवता (देवी) का वर्ण जल से भरे हुए घने काले बादल के समान है। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख तथा पयोधर अनेक मालाओं से सुशोभित हैं। वे नीला वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा हाथों में कपाल, पाश, अङ्कुश एवं शूल धारण किये हुए हैं। ऐसी रात्रि देवता को मैं प्रणाम करता हूँ।

भगवती दुर्गा के शरीर की आभा काले बादलों के समान है। इनके मस्तक पर तरुण (द्वितीया) का चन्द्र विराजमान है। हाथों में चक्र, शंख, शूल तथा खड्ग धारण की हुई हैं। तीन नेत्रों वाली भगवती का स्वरूप भयंकर (शत्रुओं के लिए) है। भगवती दुर्गा अपने भक्तों द्वारा स्मरण करने पर उनकी समस्त विपत्तियों का विनाश करने में हमेशा दक्ष (तत्पर) तथा शत्रु समूहों पर विजय प्राप्त (प्रदान) करने वाली है।

श्याम (काले) वर्णाङ्ग वाली, सिर पर उठे हुए पिंगल (धूसर) वर्ण केशों (जटा समूहों) वाली, मस्तक पर अर्ध चन्द्रकला धारण करने वाली, भयानक दाढ़ों वाली, अपने चारों हाथों में टङ्क, कपाल, डमरू तथा त्रिशूल धारण करने वाली (त्रिनेत्र धारिणी) भगवती भद्रकाली सर्वदा मेरी समृद्धि करें।

।। मन्त्रस्य पुरश्चरणं विविध प्रयोगञ्च।।

ऋक् पञ्चकं यजेत् सम्यगयुतं स्यात्तद्दशांशतः।
हविषा घृतसिक्तेन जुहुयादर्चितेऽनले।।
एवं कृते पुरश्चर्य्याप्रयोगे कुशलो भवेत्।
अग्निः यामवती ध्येया वश्याकर्षणकर्म्मणोः।।

स्मरेद् दुर्गा भद्रकालीं मन्त्री मारणकर्म्मणि।
जानुप्रमाणे सलिले स्थित्वा निशिजपेन्मनुम्।
अनेन वाञ्छितः साध्यः किङ्करो जायते क्षणात्॥२५॥

सर्वप्रथम साधक ऋक्पञ्चक अथवा चिटि मन्त्र द्वारा पञ्चाङ्ग अथवा षडङ्ग न्यास करके देवता का ध्यान करने के बाद चिटि मंत्र संयुक्त पाँचों ऋचाओं का दश हजार जप करे। जप के बाद दशांश हवन घृत मिश्रित हवि द्वारा (तिल, जौ तथा चावल) करे। इस प्रकार पुरश्चरण सम्पन्न करने वाला साधक ही मन्त्रों के प्रयोग का अधिकारी होता है। वशीकरण तथा आकर्षण कर्म में अग्नि तथा रात्रि देवता का ध्यान करना चाहिए। मारण कर्म में दुर्गा तथा भद्रकाली का ध्यान करना चाहिए।

रात्रि में घुटने के बराबर गहरे जल में खड़े होकर पञ्च ऋचाओं सहित चिटि मन्त्र का, अग्नि तथा (अथवा) रात्रि देवता का ध्यान करके जप करने से अभीष्ट साध्य व्यक्ति वशीभूत होकर साधक का सेवक बन जाता है।।२५।।

नाभिमात्रोदके स्थित्वा जपेन्मन्त्रमिमं सुधीः।
अष्टोत्तरसहस्रं यस्तस्य साध्यो वशी भवेत्॥२६॥
ऋक्पञ्चकं जपेन्मन्त्री कण्ठमात्राम्भसि स्थितः।
सप्तभिर्दिवसैर्भूपान् वशयेद्विधिनाऽमुना॥२७॥
विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनाम्ना विदर्भितम्।
निक्षिप्य क्षारसंमिश्रे जले तत् क्वाथयेन्निशि।
वश्यो भवति साध्योऽसौ नात्र कार्य्या विचारणा॥२८॥

किसी नदी अथवा सरोवर में नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर जो विद्वान साधक चिटि मन्त्र युक्त इन पञ्च ऋचाओं का एक हजार आठ बार जप करता है, उस साधक का अभीष्ट साध्य (व्यक्ति) उसके वश में हो जाता है।।२६।।

यदि साधक कण्ठ तक जल में स्थित होकर सात दिनों तक, प्रतिदिन एक हजार आठ जप इन ऋचाओं का करता है तो राजा भी उसके वश में हो जाता है।।२७।।

इन ऋचाओं को साध्य नाम से विदर्भित करके ताल पत्र पर लिखकर क्षार (नमक) तथा जल के मिश्रण में इस ताल पत्र को डालकर रात्रि में पकाये (उबाले)। उबालते समय मन्त्र का जप (एक हजार आठ बार) भी करता रहे। इस प्रयोग द्वारा निःसन्देह साध्य व्यक्ति साधक के वश में हो जाता है।।२८।।

तालपत्रे लिखित्वैनं भद्रकालीगृहे खनेत्।
वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगोऽयमुदाहृतः॥२९॥
ताम्रपात्रे समालिख्य मन्त्रं साध्यविदर्भितम्।
तापयेत् खादिरे वह्नौ मासाद्वश्यो भवेन्नरः॥३०॥
त्रिकोणं कुण्डमासाद्य सम्यक् शास्त्रोक्तलक्षणम्।
तस्मिन् होमं प्रकुर्वीत संस्कृते हव्यवाहने।
प्रक्षाल्य गव्यदुग्धेन संशोध्य लवणं सुधीः।

सुचूर्णितं प्रजुहुयात् सप्ताहाद्वशयेज्जनान्॥३१॥
दधिमध्वाज्यसंसिक्तैः सैन्धवैर्जुहुयात्तथा।
वशयेदखिलान् देवानचिरात् किमुत पार्थिवान्?॥३२॥
विशुद्धं लवणप्रस्थं विभक्तं पञ्चधा पृथक्।
एकैकया प्रजुहुयात् पञ्चपञ्चाहमादरात्।
यस्य नाम स वश्यः स्यादनेन विधिना चिरात्॥३३॥
शुद्धं लवणमादाय जुहुयान्मधुरान्वितम्।
ऊनपञ्चाशदाहुत्या वशं नयति वाञ्छितम्॥३४॥

ताल-पत्र पर इन पञ्च ऋचाओं को चिटि मन्त्र सहित लिखकर भद्रकाली के मन्दिर में जमीन में गाड़ दे तथा वहीं बैठकर देवी का ध्यान-पूजन करके इसका जप करे तो सभी प्राणी साधक के वशीभूत हो जाते हैं॥२९॥

इन पञ्चऋचाओं को साध्य नाम से विदर्भित करके ताम्र पात्र पर लिखकर खदिर (खैर) की लकड़ी द्वारा प्रज्ज्वलित अग्नि में तपाये तथा साथ ही मन्त्र का जप भी करता रहे। एक मास तक इस प्रयोग को करने से साधक अभीष्ट व्यक्ति को अपने वश में कर लेता है॥३०॥

शास्त्रोक्त लक्षणानुसार भली-भाँति त्रिकोण कुण्ड का निर्माण करे। इस कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित करके उसका पूजन तथा संस्कार करके, नमक के टुकड़ों को गाय के दूध से धोकर उसका शोधन करके, उसे पीसकर चूर्ण बना करके हवन करें। बुद्धिमान साधक को चिटिमन्त्र युक्त पञ्च ऋचाओं के जप सहित एक हजार आठ बार हवन करना चाहिए। इस प्रयोग को सात दिनों तक करने से साधक सभी मनुष्यों को वशीभूत कर लेता है॥३१॥

दही, शहद तथा घृत के मिश्रण द्वारा सैन्धव नमक को सिक्त (भिगो) करके हवन करने से साधक शीघ्र ही समस्त देवताओं को भी अपने वश में कर लेता है। फिर तो पृथिवी के मनुष्यों (राजाओं) को वश में करना साधारण बात है॥३२॥

शुद्ध (शोधित किया हुआ) सैन्धव नमक एक प्रस्थ (दो सेर तौल मात्रा में) लेकर उसे पाँच भागों में विभक्त करें। प्रत्येक भाग द्वारा एक-एक दिन करके पाँच दिनों तक हवन करे। प्रतिदिन चिटि मन्त्र सहित पञ्च ऋचाओं द्वारा कम से कम एक सौ आठ बार हवन करें। इस प्रयोग द्वारा जिस व्यक्ति का नाम मन्त्र से संयुक्त करके हवन किया जायेगा, शीघ्र ही वह साधक के वश में हो जायेगा॥३३॥

शुद्ध सैन्धव नमक को शहद में मिलाकर उनचास (४९) आहुतियों द्वारा हवन करने से अभीष्ट व्यक्ति का वशीकरण हो जाता है।
(सम्भवतः यहाँ 'उनचास आहूतियों द्वारा' के बजाय उनचास दिनों तक आहुतियों के द्वारा होना चाहिए।)

प्रत्येक दिन पञ्च ऋचाओं द्वारा कम से कम १०८ बार आहुति प्रदान द्वारा हवन करते हुए इस प्रयोग को उनचास दिनों तक करें॥३४॥

मधुरत्रयसंयुक्तैर्लवणत्रयसंयुतैः।

जुहुयाद्वशयेन्नारीं नरान्नरपतीनापि।।३५।।

तीन प्रकार के नमक (सामान्य, काला तथा सैन्धव) को मधु-त्रय (शहद, दूध तथा चीनी) में मिलाकर मन्त्र जप सहित हवन करने से साधक सभी स्त्री-पुरुषों तथा राजाओं को भी वश में कर लेता है। साधक को चिटि मन्त्र युक्त ऋचाओं द्वारा ही जप एवं हवन कार्य सम्पन्न करना चाहिए।।३५।।

।। लवण मन्त्रस्य साधन विधिः।।

मन्त्रं कृष्णतृतीयादि प्रजपेद् यावदष्टमीम्।
सन्दीक्षितो भवेत् पूते मन्दिरे मन्त्रजापवान्।।
निखन्यात्तत्र कुडं च दोर्मात्रं त्र्यस्रमेखलम्।
*****पुत्तलीः चतुःकुर्वीत साङ्गोपाङ्ग समाः शुभाः।।**
एका साध्यद्रुमेण स्यादन्या पिष्टमयी तथा।
चक्रिहस्तमृदान्या स्यादन्या सिक्थमयी स्मृता।।
तासु हृद्देशलिखित साध्याख्यासु समाहितः।
सम्यक संस्थापयेत्प्राणान् साध्यादानीय साधकः।।

दीक्षित साधक को कृष्ण पक्ष की तृतीया से आरम्भ कर अष्टमी तक मन्त्र का जप किसी मन्दिर आदि किसी पवित्र स्थान में करना चाहिए। जप की समाप्ति के बाद उसी दिन उसी स्थान पर त्रिकोणाकार एक हाथ गहरा कुण्ड तीन मेखलाओं से युक्त बनाना चाहिए। इसके बाद साधक को साध्य की सुन्दर आकृति वाली सर्वाङ्ग पूर्णा चार पुतलियाँ बनानी चाहिए। एक साध्य के जन्म (नाम) नक्षत्र वृक्ष की लकड़ी द्वारा, दूसरी शालिनामक चावल की पिष्टी द्वारा, तीसरी कुम्हार के हाथ से लाई गई मिट्टी द्वारा तथा चौथी मधुमक्खी के छत्ते के मोम द्वारा बनानी चाहिए। इन पुतलियों के हृदयस्थल पर साध्य का नाम लिखकर तथा साध्य के प्राणों को आकर्षित कर पुतलियों में प्रतिष्ठित करना चाहिए।

कृष्णाष्टमी रात्रौ मन्त्री याममात्रे गते सति।
रक्तवस्त्रधरः शुद्धः रक्तमाल्यानुलेपनः।।
सम्यक्कृत लिपिन्यासः प्राणयामादिकृच्छुचिः।
लवणपोतसम्भूतं चूर्णितं परिशोधितम्।।
कुड़वं प्रोक्षयेत् क्षीरदध्याज्यमधुभिः सह।
गुड़ाज्यमधुभिः सम्यक् मिश्रितेनाऽमुना ततः।।
कुर्वीत पुत्तलीं सौम्यां सर्वावयवशोभिताम्।
तस्याञ्च स्थापयेत्प्राणान् गुर्वादेशविधानतः।।
अष्टोर्ध्वशतसंख्यं वा तथाऽष्टोर्ध्वसहस्रकम्।
ऋक्पञ्चकं पञ्चविंशत्संख्यं प्रतिकृतिं स्पृशन्।।

****प्रतिमा प्रमाणम् - आयामः पादयोस्तस्या आकट्याच्चतुरंगुलम्। पादोन्द्व्यंगुलात् कुक्षिस्तावदेवांगुलोदरम्।। अंगुलद्वयमावक्त्रात्कण्ठदेशस्य मानकम्। शिरसो वक्ष्यमाणं स्यात्सार्धद्वयमिहांगुलम्।। अर्थात् प्रतिमा (पुतली) का मान पैर से कटि तक चार अंगुल, पौने दो अंगुल कुक्षि, इतना ही उदर, मुख से कण्ठ तक दो अंगुल तथा मुख से शिर तक ढाई अंगुल (लम्बाई में) होना चाहिए। तात्पर्य यह कि प्रतिमा की पूरी लम्बाई बारह अंगुल होनी चाहिए।

जपित्वाऽङ्गानि विन्यसेत् स्वाङ्गे प्रतिकृतावपि।

कृष्णाष्टमी की रात्रि को एक याम व्यतीत हो जाने के बाद साधक शरीर पर लाल चन्दन का लेप कर तथा लाल पुष्पों की माला एवं लाल वस्त्र धारण कर पवित्र हो प्राणायाम, मातृका न्यासादि करे। इसके बाद एक कुडव (चार मुट्ठी अथवा चौथाई प्रस्थ) समुद्री नमक लेकर उसे शोधित कर उसका चूर्ण तैयार करे। इस चूर्ण को दूध, दही, घृत तथा मधु से प्रोक्षित करे अर्थात् चारों पदार्थों का मोयन देकर गुड़ तथा घी के साथ इसे भली भाँति गूँथ कर इसके द्वारा समस्त अङ्गोपाङ्गों से युक्त सुन्दर पाँचवी पुतली की रचना करे। फिर इस पुतली में गुरु के निर्देशानुसार एक सौ आठ या एक हजार आठ बार पूर्ववत् प्राण-प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् इसका स्पर्श करते हुए पच्चीस बार ऋक्-पञ्चक का जप करके इस पुतली तथा स्वयं में ऋक्-पञ्चक से ही पञ्चाङ्ग न्यास करे।

।। चिटिमन्त्र-वर्ण-न्यासः।।

चिटिमन्त्रसमुद्भूतान् चतुर्विंशतिसंख्यकान्।।
ताराद्यान् विन्यसेद्वर्णान् स्थानेष्वेषु समाहितः।
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रुत्योर्नासास्य चिबुके तथा।।
कण्ठहृत्स्तनयुग्मेषु कुक्षो नाभौ कटिद्वये।
मेढ्रे पायौ प्रविन्यस्य शिष्ट वर्णचतुष्टयम्।।
ऊरुद्वये जानुयुगे जङ्घायुग्मे पदद्वये।
आत्मन्येवं पविन्यस्य पुनः प्रतिकृतौ न्यसेत्।।

इसके बाद साधक चौबीस वर्णात्मक चिटि मन्त्र के प्रत्येक वर्ण का ॐ कार पूर्वक स्वशरीर के भिन्न-भिन्न नियत अङ्गो में न्यास करे फिर पाँचवी पुतली के अङ्गो में भी न्यास करे। यथा - ॐ ॐ नमः मूर्ध्नि। ॐ चिं नमः भाले इत्यादि रुप से। मन्त्र के प्रथम बीस वर्णो के एक-एक वर्ण का न्यास क्रमशः मूर्धा, ललाट(भाल), दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासिका, मुख, चिबुक, कण्ठ, हृदय, दोनों स्तन, कुक्षि, नाभि, कमर के दोनों ओर, लिङ्ग तथा गुदा में करें। शेष चार वर्णो का क्रमशः न्यास दोनो उरुओं में, दोनो जानुओं, दोनो जंघाओं तथा दोनो पैरों (चरणों) में करे।

।। सङ्घ न्यासः।।

संघशः चिटिमन्त्रार्णान् पुनस्तस्यामात्मानि न्यसेत्।
अङ्गुष्ठसन्धिप्रपदजङ्घाजानूरुपायुषु।
लिङ्गदेशे पुनर्नाभौ जठरे हृदयाम्बुजे।।
स्तनद्वये कन्धरायां चिबुके वदने पुनः।
घ्राणयोः कर्णयोरक्ष्णोर्ललाटे मूर्ध्नि क्रमात्।।

इसके बाद पुनः एक साथ ही स्वयं तथा पुतली (पांचवी) के अङ्गो में चिटि मन्त्र वर्णों का क्रमशः इस प्रकार न्यास करे। दोनों पैरों की अंगुष्ठ सन्धि, चरणों, जंघाओं, घुटनों तथा उरुओं में एक-एक वर्ण का न्यास करे। शेष उन्नीस वर्णों को

क्रमशः गुदा, लिङ्ग, नाभि, उदर, हृदय, स्तनद्वय, कंधों के दोनों ओर, चिबुक, मुख, दोनों नासिका, दोनों कान, दोनों नेत्र, ललाट तथा मूर्धा में न्यस्त करे।

ततो मन्त्राभिमन्त्रितां पुत्तलीं दारुणा कृताम्।
उत्तानाञ्च खनेत् कुण्डे पिष्टजामासनादधः।।
मृन्मयीं प्रतिमां पाददेशे न्यस्येत् तथाऽऽत्मनः।
मधूच्छिष्टमयीं व्योम्नि कुण्डस्योर्ध्वं प्रलम्बयेत्।।
लवणेन कृतां सम्मुखासीन संस्पृशन् जपेत्।
ऋक्पञ्चकं यथा न्यायम् अष्टोत्तरसहस्रकम्।।

इसके बाद पूर्व रचित चारों पुतलियों को ऋक्-पञ्चक (लवण-मन्त्र) तथा चिटि मन्त्र से अभिमन्त्रित करके लकड़ी से बनी पुतली को चित्त (पीठ के आश्रय) लेटी हुई कुण्ड के मध्य में गाड़ दें। पिष्टी की पुतली को आसन के नीचे, मिट्टी की पुतली को पैरों के पास तथा मोम की पुतली को कुण्ड के ऊपर आकाश में अधोमुखी लटकाकर स्थापित करें। पाँचवी लवण से बनी पुतली को सामने स्थापित कर उसका स्पर्श करते हुए ऋक्-पञ्चक मन्त्र का यथा विधि (प्रत्येक ऋचा से पूर्व ॐ आँ ह्रीं क्रों यं रं लं वं तथा चिटि मन्त्र का संयोग कर) एक हजार आठ बार जप करें। (प्रपञ्चसार के अनुसार इस जप की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्राण-प्रतिष्ठा के समय ही पच्चीस बार जप करना चाहिए। केवल प्रतिमा-पुतली को अपने सम्मुख स्थापित कर आगे की क्रिया करनी चाहिए।)

अग्निमादाय सन्दीप्य साध्यवृक्षप्रदारुभिः।
अस्मिन्नभ्यर्च्य मन्त्रोक्तदेवतां रूप्यपात्रके।।
कुशीतराजिपुष्पैश्च दत्त्वार्घ्यं प्रणमेत् सुधीः।
मन्त्रैरेतैः प्रयोगादावन्ते संयतमानसः।।

इसके उपरान्त साध्य के नाम नक्षत्र के वृक्ष की लकड़ी द्वारा कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित करके तथा उसका पूजन कर पूर्वादि क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं में लवण मन्त्र के चारो देवताओं अग्नि, रात्रि, दुर्गा तथा भद्रकाली का पूजन करके उन्हें रजत पात्र में रखे जल, काली राई (सरसो) पुष्प आदि के द्वारा अर्घ्य प्रदान करे। फिर प्रयोग (हवन) के आदि तथा अन्त में इन उपस्थापन मन्त्रों द्वारा संयत चित्त होकर स्तवन करे।

।। अग्न्यादि देवानामुपस्थापनमन्त्राः।।

अग्नि- **ॐ त्वमनेनाप्यमित्रघ्न निशायां हव्य वाहन।**
(त्वमाननममित्रघ्न निशायाः)
हविषा मन्त्रज्प्तेन तृप्तो भव तया सह।।
ॐ जातवेदो महादेव तप्तजाम्बूनदप्रभ।
स्वाहापते विश्वभक्ष लवणं दह शत्रुहन्।।
रात्रि- **ॐ ईशे शर्वरि शर्वाणि ग्रस्तं मुक्तं त्वया जगत्।**

महादेवि! नमस्तुभ्यं वरदे! कामदा भव।।
ॐ तमोमयि महादेवि! महादेवस्य सुव्रते।
त्रियामे पुरुषं हुत्या वशमानय देवि मे।।
(स्त्रिया मे पुरुषं गत्वा)
दुर्गा- ॐ दुर्गे! सर्गादिरहिते! दुर्गसंरोधनार्गले!।
शङ्खचक्रधरे देवि! दुष्टशत्रुभयङ्करि!।।
नमस्ते दह शत्रून् मे वशमानय चण्डिके!।
शाकम्भरि! महादेवि! शरणं मे भवानघे!।।
काली- ॐ भद्रकालि भवाभीष्टे भद्रसिद्धिप्रदायिनि।
सपत्नान् मे हन हन दह ● शोषय तापय।।
ॐ शूलासिशक्तिवज्राद्यैरुत्कृत्योत्कृत्य मारय।
महादेवि! महाकालि! रक्षास्मानक्षरात्मिके!।।

अग्नि-स्तवन (उपस्थापन) - हे हव्यवाहन अग्निदेव! (आप रात्रि के मुख स्वरूप हो) हे शत्रुओं के विनाशक अग्नि देव! मन्त्र-पूर्वक दी गई इस हवि को (निशा के साथ) ग्रहण कर आप तृप्त हों। हे जातवेद! महादेव! प्रतप्त स्वर्णाभा वाले स्वाहापति! विश्वभक्षक! शत्रुनाशक! अग्निदेव आप मेरे द्वारा आहुत इस लवण को दग्ध कर दें।

रात्रि-स्तवन (उपस्थापन) - हे विश्व शासिका रात्रिदेवि! इस विश्व को पहले ग्रस्त (स्वयं में छिपा) कर बाद में स्वयं ही तुम इसे मुक्त करती हो। हे वरदायिनि! महादेवि! आप मेरी सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली हो। आपको मेरा प्रणाम है। हे तमोगुणमयि! शिवे! सुव्रते! आप इस तीनों यामों में दी गई आहुति से प्रसन्न हों तथा अमुक (साध्य) व्यक्ति को मेरे वश में करें। (अथवा स्त्रियां मुझ पुरुष के प्रति वशीभूत हों।)

दुर्गा-स्तवन (उपस्थापन) - जन्मादि से रहिता, दुर्गति (विपत्तियों) को रोकने के लिए अर्गला स्वरूपा, शंख चक्र धारिणी, दुष्टों के लिए भय-दायिनी हे देवि दुर्गे! आपको प्रणाम है। हे चण्डिके! शाकम्भरि! महादेवि! अनघे! मैं आपकी शरण में हूँ। आप शत्रुओं को मेरे वश में कर दें अथवा उन्हें भस्म कर दें।

महाकाली-स्तवन (उपस्थापन) - हे भद्रकालि! शिवप्रिये! माङ्गलिक कार्यों को सिद्ध करने वाली आप मेरे शत्रुओं को मारें, उन्हें जलायें, शोषित करें तथा तपायें। शूल, तलवार, शक्ति, वज्रादि अपने आयुधों को उठा-उठाकर बार-बार प्रहार करके उन्हें मार डालें। हे महादेवि! महाकालि! अक्षर (अविनाशी ब्रह्म) स्वरूपिणी आप हमारी रक्षा करें।

।। पुत्तलिका खण्डनं हवन विधिञ्च।।

साध्यं संस्मृत्य निर्भिद्य पुत्तलीं सप्तधा ततः।
ऋकपञ्चकं समुच्चार्य्य जुहुयादेधितेऽनले।।
प्रथमे दक्षिणः पादस्तत्करस्तदनन्तरम्।

● 'दह' इत्यत्र स्थाने जप-प्रयोगे 'दह-दह' एवं पठनीया।

शिरस्तृतीयमाख्यातं वामहस्तमतः परम्।।
मध्यादूर्ध्वं पञ्चमं स्यादधोऽंशः षष्ठ ईरितः।
सप्तमो वामपादः स्यादयं भागक्रमः स्मृतः।।
सप्तसप्तविभागे वा प्रोक्तेष्वेषु यथाविधि।
हुत्वैवमर्चयित्वैनं प्रणमेद्दण्डवत् ततः।।
यजमानो धनैर्धान्यैः प्रणमेद् गुरुमात्मनः।
प्रदद्याद्दक्षिणां तस्मै सहस्रं शतमेव वा।।
गवां सुवर्णनिष्काणां भूमिं वा शस्यशालिनीम्।
सर्वशान्तिमवाप्नोति सर्वरक्षाकृतं भवेत्।।

अग्नि आदि देवताओं के पूजन तथा स्तवन के बाद लवण मंत्र की पांचों ऋचाओं का जप करते हुए, लवण निर्मित पुतली को साध्य मानते हुए, लोहे के किसी तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा उसे सात टुकड़ों में विभक्त कर दें। इसके बाद पाँचों ऋचाओं के पूर्व ''ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं'' बीजाक्षरों को जोड़कर जप करते हुए एक-एक खण्ड (टुकड़े) द्वारा प्रज्ज्वलित अग्नि में हवन करें।

लवण निर्मित पाँचवी पुतली के सप्तखण्ड इस प्रकार होंगे -

प्रथम खण्ड दक्षिण पाद, द्वितीय दक्षिण कर, तृतीय शिर, चतुर्थ वाम हस्त, पंचम नाभि से ऊपर मध्य, षष्ठ नाभि से नीचे का भाग तथा सप्तम वाम पाद। इन सातों खण्डों का क्रमशः हवन, प्रत्येक खण्ड के साथ पाँचों ऋचाओं का पाठ करते हुए करना चाहिये अथवा प्रत्येक खण्ड के पुनः सात-सात खण्ड करके (इस प्रकार ४९ खण्ड करके) एक-एक खण्ड का हवन करे।

इस प्रकार हवन कार्य सम्पन्न करके पुनः अग्न्यादि देवताओं का स्तवन-पूजन कर दण्डवत प्रणाम करे। तत्पश्चात् साधक अपने गुरु को प्रणाम करके उन्हें धन-धान्य सहित सौ अथवा हजार स्वर्ण मुद्राएं, गायें (अथवा गले में स्वर्णाभूषणों से सज्जित सौ अथवा हजार गायें) तथा अन्न से परिपूर्ण भूमि दक्षिणा के रूप में प्रदान करे। गुरु की संतुष्टि एवं कृपा सहित प्रयोग की पूर्णता होने पर साधक की सर्व प्रकार से रक्षा होती है तथा वह सुख-शान्ति को प्राप्त करता है।

।। अन्य रूपेण पुत्तली प्रयोगः।।

मारणे पूर्व सम्प्रोक्त पुत्तलीनां चतुष्टयं। निवेशयेद्यथा पूर्वं साधकेन्द्रो विधानवित्।
अपरां वक्ष्यमाणेन विधानेन प्रकल्पयेत्। वाराहपारावतविट्तिलत्र्यूषण रामठैः।।
व्रणकृन्निम्ब सिद्धार्थ साध्य वामांध्रिरेणुभिः। महिषीमूत्रसंपिष्टैः पूर्वोक्त लवणान्वितैः।
विधाय पुत्तलीं सम्यक् प्राणस्थापनमाचरेत्। जप पूजादिकं सर्वं कुर्यात् प्रागुक्तवर्त्मना।।
ततः पूर्वोदिते कुण्डे रात्रौ प्रज्ज्वलितेऽनले। दुर्गां वा भद्रकालीं वा समाराध्य यथाविधिः।।
धारयोन्निशितं शस्त्रं सव्यहस्तेन साधकः। वामपादं समारभ्य दक्षिणांघ्र्यवसानकम्।।
छित्वा छित्वा प्रजुहुयान्निराहारो जितेन्द्रियः। कृष्णाष्टमी समारभ्य यावत्कृष्ण चतुर्दशीम्।।
अनेनैव विधानेन होमं कुर्याद्विचक्षणः। त्रिसप्ताह प्रयोगेण मारयेद्रिपुमात्मनः।।

इति श्रीकृष्णविद्यावागीशभट्टाचार्य्यविरचितायां षट्कर्मदीपिकायां नवमोद्देशः समाप्तः।।

मारण के लिए पूर्वोक्त विधि से प्रथम चार पुतलियों की रचना करे। पाँचवी पुतली सुअर तथा कबूतर की विष्ठा, सौंठ, काली मिर्च, पीपर, हींग के साथ बहेड़ा, तिल, नीम, सरसों इन चारों का तेल एवं साध्य (शत्रु) के बायें पैर के नीचे की धूल को भैंस के मूत्र में मिलाकर तथा पूर्वोक्त मात्रा में समुद्री नमक भी मिलाकर, सबको पीसकर पिष्टी बनाकर, इसके द्वारा बनाये। फिर पाँचों पुतलियों की प्राण-प्रतिष्ठा जप-पूजन आदि सब कुछ पूर्व वत् करके पूर्ववत् ही उन्हें यथा स्थान स्थापित करे। इसके पश्चात् विधिपूर्वक कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित करके, दुर्गा अथवा भद्रकाली की विधिपूर्वक आराधना (स्तवन) करके बाये हाथ में तेज शस्त्र लेकर बायें पैर से प्रारम्भ करके दाहिने पैर की समाप्ति तक एक-एक अंग को काटकर (क्रमशः सातों भागों का) चिटिमंत्र सहित लवण ऋचाओं के जप-पूर्वक हवन करे। जितेन्द्रिय तथा निराहार रहते हुए साधक को यह प्रयोग करना चाहिए। कृष्ण पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ कर उसी पक्ष की चतुर्दशी (सात दिनों) तक इस प्रयोग को इसी प्रकार करना चाहिए। तीन सप्ताह तक इस प्रयोग को करने से साधक निश्चय ही अपने शत्रु को मारने में सफल हो जाता है।

।। श्री कृष्णानन्द विद्यावागीश भट्टाचार्य कृत षट्कर्म दीपिका में
मारण नामक नवमोद्देश की 'अंजलि' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

परिशिष्ट - भागः

उपलब्ध षट्कर्म-दीपिका के व्याख्याकाल में संयोगवश मुझे इसकी एक अन्य प्रति की प्राप्ति हुई, जिसमें हारीत संहितोक्त ज्वर भोगकाल का कुछ भिन्न तथा विस्तृत रूप से निरूपण किया गया था। अतः पाठकों के ज्ञानार्थ उसे भी इस परिशिष्ट भाग में दिया जा रहा है।

हारीत संहितोक्त नक्षत्रजन्य ज्वरभोग कालः

मघा विशाखा भरणी तथार्द्रा मूलं तथा कृत्तिकहस्त ऋक्षाः।
एतान् प्रशस्तान् मुनयो वदन्ति वारक्रमेनैव विचिन्तनीयाः॥
मघा भरणी हस्तेषु मूले वा ज्वरितोऽपि वै।
मृत्युमापद्यते सोऽपि नात्र कार्या विचारणा॥
आश्विनी रोहिणी पुष्या मृगज्येष्ठा पुनर्वसुः।
एते साध्याश्च विज्ञेयाः ज्वरिनाश्च विशेषतः॥
पूर्वात्रयं स्वातिरथापि चित्रा त्वश्लेषयाद्रा श्रवणं धनिष्ठा।
मूलं विशाखा सह कृत्तिकाभिरसाध्य योगो ज्वरितस्य चापि॥
एतेषु सद्यो ज्वरपीडितानां साध्यं सुयाप्यं कुरुते नरस्य।
तस्मात्तु विज्ञाय बुधश्च कुर्यात् रूजां विनाशं प्रतिकर्मभिश्च॥

मघा, विशाखा, भरणी, आर्द्रा, मूल, कृत्तिका तथा हस्त नक्षत्रों में क्रमशः रवि, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनिवार होने पर यदि इन कालों में ज्वर की उत्पत्ति होती है तो इसे मुनियों ने प्रशस्त कहा है अर्थात् इन स्थितियों में उत्पन्न ज्वर विशेष अनिष्टकर न होने से चिन्तनीय नहीं है।

मघा, भरणी, हस्त तथा मूल नक्षत्रों में तत्तत् सम्बन्धित दिनों के अतिरिक्त अन्य दिनों में यदि ज्वर की उत्पत्ति होती है तो निश्चित रुप से रोगी मृत्यु को प्राप्त होता है।

अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा तथा पुनर्वसु नक्षत्रों में उत्पन्न ज्वर विशेष रूप से चिकित्सा करने पर साध्य होते हैं।

पूर्वाषाढ़ा, पूर्व फाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, स्वाती, चित्रा, आश्लेषा, आर्द्रा, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, विशाखा तथा कृत्तिका नक्षत्रों में उत्पन्न ज्वर यद्यपि असाध्य होते हैं, फिर भी रोगी की शीघ्र ही चिकित्सा करने पर धीरे-धीरे ये साध्य हो जाते हैं तथा आसानी से इसका (ज्वर का) निराकरण कर रोगी को स्वस्थ किया जा सकता है। अतः बुद्धिमान वैद्य को नक्षत्रों के अनुसार रोग (ज्वर) को स्थिति जानकर उसके प्रतिकार (चिकित्सा) का उपाय करना चाहिए।

अश्विन्यामेकरात्रन्तु भरण्यां मृत्युमीक्षते।
कृतिकानवरात्रन्तु रोहिण्यान्तु दिनत्रयम्।।
मृगेण बहुपीडा स्यादार्द्रायां मृत्युरेव च।
पुनर्वसु च पुष्य च सप्तरात्रन्तु पीडाते।।
नवरात्रं तथाश्लेषा मघास्वेति यमालयम्।
पूर्वा मासं त्रयं ज्ञेयं उत्तरा पञ्चकत्रयम्।।
पूर्वात्रये त्रयोमासाः शुभा ज्ञेयाः मनीषिभिः।
एतेषां तुर्योगे पादे यदि रोगस्तदा मृतिः।।
हस्तेन प्राप्यते सौख्यं चित्रा पञ्चदशाहकम्।
स्वातीः षोडशरात्रन्तु विशाखा विंशरात्रकम्।।
अनुराधा पक्षमेकं ज्येष्ठा दशदिनानि तु।
मूलेन मृत्युमाप्नोति आषाढासु त्रिपक्षकम्।।
उत्तरा विंशरात्रेण श्रवणे मासकद्वयम्।
मासद्वयं धनिष्ठा स्यात् सप्तर्षिर्दिनविंशतिः।।
नवरात्रं भवेत् पूर्वा उत्तरा पक्षकत्रयम्।
दशाहं रेवती पीडा मुच्यते व्याधिभिस्ततः।।

अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर का भोगकाल एक रात्रि का होता है। भरणी में ज्वरोत्पन्न होने पर रोगी की मृत्यु निश्चित है। कृत्तिका तथा रोहिणी में उत्पन्न ज्वर क्रमशः नवरात्रि तथा तीन दिनों तक रहता है। मृगशिरा नक्षत्र का ज्वर अनेक प्रकार से कष्ट-दायक होता है। आर्द्रा नक्षत्रोत्पन्न ज्वर मृत्यु कारक होता है। पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र का ज्वर सात रात्रियों तक रोगी को पीड़ित करता है। आश्लेषा का ज्वर नव रात्रि तक कष्ट देता है तथा मघा नक्षत्रीय ज्वर पीड़ित योगी यमालय ही गमन करता है। पूर्वा फाल्गुनी का ज्वर तीन मास तक तथा उत्तरा फाल्गुनी का ज्वर पन्द्रह दिनों तक रहता है। पूर्वाषाढ़ा, पूर्वा भाद्रपद तथा पूर्वा फाल्गुनी तीनों नक्षत्र कालों में उत्पन्न ज्वर तीन मास तक रहता है, इसके पश्चात् ही रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है। परन्तु यदि ज्वरोत्पत्ति इन नक्षत्रों के चतुर्थ चरण में हुई है तो रोगी निश्चित ही मृत्यु को प्राप्त होता है। हस्त नक्षत्रीय ज्वर विशेष कष्टकारी नहीं होता है। चित्रा, स्वाती तथा विशाखा नक्षत्रों में उत्पन्न ज्वर क्रमशः पन्द्रह दिन, सोलह रात्रि तथा बीस रात्रियों तक रहता है। अनुराधा का एक पक्ष, ज्येष्ठा का दश दिन तथा मूल नक्षत्र का ज्वर मृत्यु का कारण बनता है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र का ज्वर तीन पक्ष (न्यूनतम, अधिकतम तीन मास) तथा उत्तरा का ज्वर बीस रात्रियों तक रहता है। श्रवण तथा धनिष्ठा नक्षत्रीय ज्वर की स्थिति दो मास एवं शतभिषोत्पन्न ज्वर की स्थिति बीस दिन होती है। पूर्वाभाद्रपद का ज्वर नव रात्रियों तक (न्यूनतम, अधिकतम तीन मास) तथा उत्तरा भाद्रपद का पन्द्रह दिनों तक अपना भोग कराता है। रेवती नक्षत्र में ज्वर होने पर दश दिनों के भोगकाल के पश्चात ही रोगी ज्वर से मुक्त होकर शान्ति लाभ करता है।

।। हारीतसंहितोक्त नक्षत्राणामंश भेदेन ज्वर भोग कालः।।

कृत्तिकासु ज्वरस्तीव्रो व्याधिर्भवति पैत्तिकः।
प्रथमे चरणे चैव दिग्दिनानि विनिर्दिशेत्।।
दशैव द्वितीय-भागे तृतीये दिन-पञ्चकः।
रोहिण्यां नवरात्रन्तु प्रथमेऽंशे प्रकीर्तितम्।।
द्वितीये द्विगुणं प्रोक्तं तृतीये दशरात्रकम्।
नक्षत्रे चन्द्रदेवत्ये सप्तहं प्रथमेऽंशके।।
तथैव पञ्चरात्रं स्यात् मध्ये द्वादशवासरात्।
तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्युर्मासादनन्तरम्।।
उत्तरा प्रथमांशे च वासरानि चतुर्दश।
द्वितीये सप्तरात्रन्तु तृतीये दिवसान नव।।
यदि हस्ते भवेद्रोगः प्रथमे सप्तरात्रकम्।
चत्वार्यहानि द्वितीये तृतीये दिनपञ्चकम्।।
मृत्युं विद्यात्तथा चाद्ये त्वाष्ट्रे यस्य भवेज्ज्वरः।
त्रिभिर्मासैर्द्वितीयांशे रोगो भवति दारुणः।।
तृतीयांशे तथा ज्ञेयं वासरानि त्रयोदश।
वायव्ये प्राक्सप्तदश द्वितीये चैकविंशतिः।।
अस्यैव तु तृतीयांशे मृत्युरेव विनिर्दिशेत्।
प्रथमांशे विशाखायां त्रिगुणाः षोडशः स्मृताः।।
द्वितीये द्वादश प्रोक्तास्तृतीयेऽपि तथैव च।
मैत्रांशे प्रथमे सप्त द्वितीये पञ्चमादिशेत्।।
तृतीयांशे चतुःषष्टि वासराणां महामुने।
पक्षमेन्द्रे प्रथमके द्वित्रिभागे च षोडशः।।
मूलकेंऽशे तृतीये तु पक्ष एव मनीषिभिः।
आद्ये पूर्वे त्रयो मासा मध्यमेऽहानि षोडशः।।
तृतीये तु पुनर्मृत्युर्वासरात् सम्प्रजायते।

अब नक्षत्रों के अंशभेदानुसार उत्पन्न ज्वरों के भोगकाल का वर्णन किया जाता है। कृत्तिका नक्षत्र में ज्वर होने पर रोगी को भयंकर पैत्तिक ज्वर होता है। यही ज्वर यदि कृत्तिका के प्रथम चरण में उत्पन्न हो तो उसका भोग काल दश दिन होता है। द्वितीय चरण में ज्वर होने पर भी दश दिन तथा तृतीय चरण का ज्वर पाँच दिनों तक रोगी को कष्ट देता है। रोहिणी नक्षत्र के प्रथम चरणोत्पन्न ज्वर नवरात्रि तक दूसरे चरण का अट्ठारह रात्रि तक तथा तृतीय चरणोत्पन्न ज्वर दश रात्रियों तक रहता है। मृगशिरा नक्षत्र के प्रथम पाद का ज्वर एक सप्ताह तक, द्वितीय पाद का पाँच रात्रि तक तथा तृतीय पाद का ज्वर बारह दिनों तक भोग कराता है। यदि बारह दिनों के पश्चात् भी रोगी ज्वर से मुक्त न हो तो एक मास के बाद उसकी निश्चित ही मृत्यु

हो जाती है। उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा तथा उत्तरा भाद्रपद के प्रथम अंश में ज्वर होने पर चौदह दिनों तक, द्वितीयांश का सात रात्रि तक तथा तृतीयांश में उत्पन्न ज्वर नव दिनों तक रहता है। हस्त नक्षत्र के प्रथम पाद का ज्वर सात रात्रि तक, द्वितीय पाद का चार दिन तक तथा तृतीय पाद का ज्वर पाँच दिनों तक रहता है। चित्रा नक्षत्र के प्रथम चरण में उत्पन्न ज्वर रोगी के लिए मृत्यु कारक होता है। द्वितीयांश का ज्वर तीन मास तक रोगी को दारुण कष्ट देता है। तृतीय चरण का ज्वर तेरह दिनों तक अपना भोग कराता है। स्वाती नक्षत्र के प्रथम भाग में ज्वरोत्पत्ति होने पर उसकी स्थिति सात दिनों तक तथा द्वितीय भागोत्पन्न ज्वर की इक्कीस दिनों तक स्थिति होती है। परन्तु यदि ज्वर स्वाति के तृतीय चरण में उत्पन्न हुआ है तो वह रोगी के लिए मृत्यु-कारक होता है।

विशाखा नक्षत्र के प्रथम पाद का ज्वर अड़तालिस (४८) दिनों तक एवं द्वितीय तथा तृतीय पाद का ज्वर बारह दिनों तक रहता है। अनुराधा नक्षत्र के प्रथम अंश का ज्वर सात दिनों तक द्वितीयांश का पाँच दिन तक तथा तृतीयांश का ज्वर चौसठ (६४) दिनों तक रहता है। ज्येष्ठा के प्रथमांश का ज्वर एक पक्ष (१५ दिन) तथा द्वितीय एवं तृतीयांश का ज्वर सोलह दिनों तक रहता है। मूल नक्षत्र के तृतीयांश में उत्पन्न ज्वर का भोग काल विद्वानों द्वारा एक पक्ष कहा गया है। पूर्वाषाढ़ा के प्रथमांश का ज्वर तीन मास तथा द्वितीयांश का सोलह दिनों तक रहता है। तृतीयांश में ज्वर होने पर कुछ दिनों बाद रोगी की मृत्यु हो जाती है।

वैश्वे च प्रथमे पक्षं मध्ये द्वादश रात्रिकम्।।
दिनानां विंशतिः प्रोक्ता तृतीयांशे महामुने।
सप्ताहमादौ श्रवणे विंशतिर्मध्यमे मता।।
षोडशाहं तृतीयांशे सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्।
विंशतिर्वासरः पूर्वा मध्यमे मासयुग्मकम्।।
मासतृतीये विज्ञेया दैवेज्ञे च निवेदितम्।
वारुणो दारुणो रोगस्त्रिपक्षं प्रथमांशके।।
द्वितीये मासषटकन्तु षोडशाहं तृतीयके।
अहिव्रघ्ने पक्षमादौ मध्यमांशं विनिर्दिशेत्।।
अन्तेऽष्टाविंशतिर्ज्ञेया पीडा स्यात् पापकर्मणि।
रेवत्याः प्रथमे चाष्टो द्विभागे चैव षोडशः।।
दश पर्वाह पूर्वांशे मध्ये सप्तदशस्तथा।
अन्ते त्रिंशद्दिनान्येवं प्रोक्तं वै पूर्वसूरिभिः।।
अश्विन्या प्रथमे भागे दिनमेकं प्रकीर्तितम्।
द्वितीये पञ्चरात्रन्तु तृतीये सप्तकं तथा।।
भरण्याः प्रथमे चांशे सप्तवासरमेव च।
मध्ये मृत्युस्तथा चान्ते रोगो मासत्रयावधिः।।
एवं ज्ञात्वा सुधीः सम्यक् कुर्यात् प्रशमनक्रियाम्।

नक्षत्रस्य त्रयो भागा आत्रेयेण प्रकाशिता:।।

उत्तराषाढ़ के प्रथम पाद में ज्वरोत्पन्न होने पर उसका भोगकाल एक पक्ष, द्वितीयांश के ज्वर का बारह रात्रि तथा तृतीयांशोत्पन्न ज्वर का भोगकाल बीस दिन कहा गया है। श्रवण नक्षत्र के प्रथमांश में उत्पन्न ज्वर सात दिन, द्वितीयांश का बीस दिन तथा तृतीयांश का ज्वर सोलह दिनों तक रहता है। पूर्वा भाद्रपद के प्रथम चरण का ज्वर बीस दिन, द्वितीय चरण का दो मास तथा तृतीय चरण का ज्वर एक मास तक भोग कराता है। शतभिषा नक्षत्र के प्रथम पाद का ज्वर डेढ़ मास, द्वितीय पाद का छः मास तथा तृतीय पाद का ज्वर सोलह दिनों तक रोगी को भयंकर पीड़ा देता है। उत्तराभाद्रपद के प्रथम तथा द्वितीय चरण का ज्वर एक पक्ष एवं तृतीय चरण का ज्वर अट्ठाईस (२८) दिनों तक पापकर्मों के कारण पीड़ित करता है। रेवती नक्षत्र के प्रथम पाद का ज्वर आठ या दशदिन, द्वितीय पाद का सोलह-सत्तरह दिन दिन तथा तृतीय पाद का ज्वर तीस दिनों तक रहता है। अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण का ज्वर एक दिन, द्वितीय चरण का पांच रात्रि तथा तृतीय चरण का ज्वर सात रात्रियों तक अपना भोग कराता है। भरणी के प्रथम पाद का ज्वर सात दिनों तक तथा तृतीय पाद का ज्वर तीन मास तक रहता है। परन्तु द्वितीय पाद में ज्वरोत्पत्ति होने पर रोगी की अवश्य ही मृत्यु हो जाती है। महर्षि आत्रेय ने प्रत्येक नक्षत्र काल को तीन भागों में विभक्त करके प्रत्येक भाग (चरण या अंश) में उत्पन्न होने वाले ज्वरों के भोगकाल का इस प्रकार से विवेचन कर प्रकाशित किया है। विद्वान वैद्य को इसे भली-भाँति समझकर ही रोगी के उपचार के लिए सम्यक् रुप से प्रयत्न (चिकित्सा) करनी चाहिए।

।। इति श्री महर्षि आत्रेय-प्रोक्त हारीत संहितायां नक्षत्रांशभेदेन ज्वरभोगकालविधि:।।

हारीत संहितोक्त नक्षत्रदोष शान्तिः

।। शान्ति-विधाने समिद्गन्ध-पुष्प-वर्गाणि।।

अर्क खदिर पालाशो वदरी पारिभद्रकः।
दूर्वा शमी कुशः काशः पिप्पलो वटसम्भवः।।
जम्ब्वाम्र कराहाटश्च सोमवल्ली कलिद्रुमः।
रक्तसारश्चन्दनश्च जयन्ती वृद्धदारकम्।।
शतावरी सहचरी स्वर्णक्षीरी निशायुगम्।
उदुम्बरस्तथा विल्वः समिद्वर्गः प्रकीर्तितः।।

रक्तचन्दन-गोरोचना-गैरिक-निम्ब-विल्व-पतङ्ग-कुङ्कुम्-कस्तूरिका-घनसार-श्रीपर्णी-सुरदारु-हरिचन्दन-पद्मक-हरिद्राद्वय-कालीयकागुरु-शिंशपा-साल-सरल-कुकुभेङ्गुदी-शैनेयक-मनोह्वा-पिप्पलज-न्यग्रोध-पलाश गन्धानि।

पदम्-विल्व-सुरसेङ्गुदी-नागकेशर-जयन्ती-शमी-चम्पकार्क-किंशुक-कर्णिकार-गिरिकर्णिक-सहचरी-शैलूय-जम्बू-आम्र-अर्जुन-पियालोत्पल-केतकी-यूथिका-काञ्चनार-पाटना-वर्वरी-अगस्तिका-कह्लार-अशोकानि पुष्पाणि।

हारीतसंहितोक्त नक्षत्रजन्य-ज्वर-शान्ति विधान में आवश्यक निम्न प्रकार की समिधाओं, गन्धों तथा पुष्पों का सर्वप्रथम संग्रह करना चाहिए।

समिद्वर्ग - अर्क(मदार), खैर, पलाश, बेर, देवदार, दूर्वा, शमी, कुश, काश, पीपल, वट, जामुन, आम, कमल नाल या जड़, गुरुची (गिलोय), बहेड़ा, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, जयन्ती, वृद्धदारक (तीज तारक), शतावरी, सहदेई (पीत पुष्पा), स्वर्णक्षीरी (स्वार्ण वल्ली), हरिद्रा, दारु हरिद्रा, गूलर तथा बेल की समिधाएं।

गन्ध वर्ग - रक्त चन्दन, गोरोचन, गैरिक, नीम, बेल, पतङ्ग, कुकुम, कस्तूरी, कपूर, श्रीपर्णी(गम्भारी), देवदारु, हरिचन्दन, पद्ममूल, हरिद्रा, दारु हरिद्रा, कालीयक (काला चन्दन या काली हल्दी), अगुरु, शिंशपा, साल, सरल, चम्पक, इंगुदी, शिलाजीत, मनः शिला, पीपल, बरगद तथा पलाश।

पुष्प वर्ग - पद्म, विल्व, सुरसा (सिन्दुवार), इंगुदी, नागकेशर, जयन्ती, शमी, चम्पक, अर्क, पलाश, कनेर, गिरिकर्णिका, सहदेई, जामुन, आम, अर्जुन, पियाल(चिरौंजी), उत्पल, केतकी, यूथिका, रक्तकचनार, लाल लोध, वन तुलसी, अगस्तिका, कह्लार (श्वेत कमल) तथा अशोक पुष्प।

धूप दीपादिभिरलङ्कारैलङ्कृतं वास्तुमण्डलं कृत्वा ईशानादि-क्रमेण नक्षत्रमण्डले यथोक्तगन्धपुष्पैरर्चयेत्। तन्मण्डलमध्ये आदित्यादि नवग्रहान् समभ्यर्च्य क्रमेण समिद्भिर्होमं कुर्यात्। दधिमधुघृताक्ताभिः समिद्भिरश्विन्यादि क्रमेण जुहुयात्। आकृष्णेति अर्कसमिधा इदमश्विन्यै। विष्णोरराटमसीति खदिरसमिधा

इदं भरण्यै। मधुमधिवति पलाश समिधा इदं कृतिकायै एवं काण्डात् काण्डादिति वदरी समिधा रोहिणीम्। इमन्मे गंगे इति पारिभद्रसमिधा मृगशिराम्। श्रीश्चते इति दूर्वासमिधा आर्द्राम्। याः फलिनीरिति शमीसमिधा पुनर्वसुम्। अम्बे अम्बिके इति कुश समिधा पुष्याम्। इमं देवं इति काश समिधा आश्लेषाम्। त्र्यम्बके यजामहे इति पिप्पलसमिधा मघाम्। याते रुद्र इति वटसमिधा पूर्वफल्गुनीम्। सद्योजातेन इति जम्बूसमिधा उत्तरफल्गुनीम्। शन्नो देवीरिति आम्रसमिधा हस्ताम्। कंयानश्चित्रेति करहाट समिधा चित्राम्। द्रुपदादिवेति सोमवल्ली समिधा स्वातीम्। सोमं राजानमिति विभीतक समिधा विशाखाम्। मूर्धानन्दिवमिति रक्तसारसमिधा अनुराधाम्। अभीषुण इति चन्दन समिधा ज्येष्ठाम्। आतून इति जयन्ती समिधा मूलाम्। भद्रं कर्णेभिरिति वृद्धदारकसमिधा पूर्वाषाढाम्। आयाहीति सतावरीसमिधा उत्तराषाढाम्। सर्वतः पाणि पादाण्डः इति सहचर समिधा श्रवणाम्। आप्यायश्वेति स्वर्णक्षीरी समिधा धनिष्ठाम्। मातारुद्राणामिति हरिद्रा समिधा शतभिषाम्। देवोव इति दारुहरिद्रा समिधा पूर्वभाद्रपदाम्। स्वस्तिन इति उदुम्बरसमिधा उत्तर भाद्रपदाम्। योवः शिव इति विल्व समिधा रेवतीम् होमयेत्। घृतेन पूर्णाहूतिं दद्यात्। नवग्रहान् हुत्वा तस्मात् समिद्भिः स्नानमाचरेत्। शुक्लवस्त्रोत्तरीयं यज्ञोपवीत सहितं रोगिणं कृत्वा वेदादिमन्त्रैरभिषिञ्च्य ब्राह्मणेभ्यो भूवस्त्रहिरण्यादिदानं कुर्यात। इति विधाने कृते सम्यक् शान्तिर्भवति।

धूप दीप पुष्प मालादि विभिन्न अलङ्कारों से सज्जित एक वास्तुमण्डल की साधक रचना करे। ईशानादि क्रम से नक्षत्र-मण्डल में पूर्वोक्त गन्ध-पुष्प द्वारा अर्चन करे। तत्पश्चात् उसी मण्डल के मध्य में आदित्यादि नवग्रहों की अर्चना करके क्रम से समिधा द्वारा हवन करे। दधि मधु तथा घृत से सिक्त समिधा द्वारा अश्विन्यादि क्रम से हवन करना चाहिए।

१. अर्क समिधा से हवन करे, यथा – **ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च। हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् स्वाहा-इदमश्विन्यै न मम।**

२. खदिर (खैर) की समिधा से हवन करे, यथा – **ॐ विष्णोरराटमसि विष्णोः श्नपत्रेस्थो विष्णोः स्युरसि विष्णोर्ध्रुवोसि। वैष्णवमसि विष्णवे त्वा स्वाहा-इदं भरण्यै न मम।**

३. पलाश समिधा से, यथा – **'मधुमधिवति'** इत्यादि मन्त्र से कृत्तिका के लिए।

४. बदरी (बेर) समिधा से, यथा – **ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवानो दूर्वेप्रतनु सहस्रेण शतेन च स्वाहा-इदं रोहिण्यै न मम।**

५. देवदार की समिधा से, यथा – **ॐ इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शतुद्रिस्तोमं स च तापरुष्णिया। असिक्नि या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणु ह्यासुषोमया स्वाहा – इदं मृगशिरायै न मम।**

६. दूर्वा समिधा से, यथा – **ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि**

रुपमश्विनौ व्यात्तम। इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण स्वाहा-इदं आर्द्रायै न मम।

७. शमी समिधा से, यथा - **ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः स्वाहा-इदं पुनर्वसवे न मम।**

८. कुश समिधा से, यथा - **ॐ अन्वे अन्विके** इत्यादि मन्त्र द्वारा पुष्य नक्षत्र के लिए।

९. काश समिधा से, यथा - **इमं देवं** इत्यादि मन्त्र से आश्लेषा के लिए।

१०. पीपल समिधा से, यथा - **ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं। उर्वारुक मिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वाहा - इदं मघायै न मम।**

११. वट समिधा से, यथा - **ॐ याते रुद्रशिवातनूः शिवा विश्वाहाभेषजी। शिवारुतस्य भेषजी तयानोमृडजीवसे स्वाहा - इदं पूर्वफाल्गुन्यै न मम।**

१२. जामुन की समिधा से, यथा - **ॐ सद्योजातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः। अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचिस्वाहा कृतꣳहविरदन्तुदेवाः स्वाहा-इदं उत्तराफाल्गुन्यै न मम।**

१३. आम की समिधा से, यथा - **ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः स्वाहा - इदं हस्ताय न मम।**

१४. कमलनाल की समिधा से, यथा - **ॐ कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता स्वाहा - इदं चित्रायै न मम।**

१५. सोमवल्ली समिधा से, यथा - **ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विनः स्नातोमलादिव। पूतम्पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तुमनैसः स्वाहा - इदं स्वात्यै न मम।**

१६. बहेड़ा की समिधा से, यथा - **ॐ सोमꣳराजानवमसेग्निमन्वारभामहे। आदित्यान् विष्णुꣳसूर्यम्ब्रह्माणञ्च बृहस्पतिꣳस्वाहा - इदं विशाखायै न मम।**

१७. लाल चन्दन की समिधा से, यथा - **ॐ मूर्धानन्दिवो अरतिम्पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम्। कविꣳसमाजमतिथिञ्जनानामासन्नापात्रञ्जनयन्त देवाः स्वाहा - इदं अनुराधायै न मम।**

१८. चन्दन (श्वेत) समिधा से, यथा - **ॐ अभीषुणः सखी नामविताजरितृणाम्। शतम्भवास्यूतये स्वाहा - इदं ज्येष्ठायै न मम।**

१९. जयन्ती समिधा से, यथा - **ॐ आतून इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमागहि। महान् महीभिरुतिभिः स्वाहा - इदं मूलायै न मम।**

२०. वृद्धदारक समिधा से, यथा - **ॐ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्ट्वाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः स्वाहा - इदं पूर्वाषाढायै न मम।**

२१. सतावरी समिधा से, यथा - **ॐ आयाहि** इत्यादि मन्त्र द्वारा उत्तराषाढ़ा के लिए।

२२. सहदेवी की समिधा से, यथा - **सर्वतः पाणि पादाण्डः** इत्यादि मन्त्र से श्रवण नक्षत्र के लिए।

२३. स्वर्णक्षीरी समिधा से, यथा - **ॐ आप्यायस्व समेतुते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।**

भवावाजस्य सङ्गथे स्वाहा – इदं धनिष्ठायै न मम।

२४. हरिद्रा समिधा से, यथा – **माता रुद्राणाम्** इत्यादि मन्त्र से शतभिषा के लिए।

२५. दारु हरिद्रा समिधा से, यथा – **ॐ देवोवनस्पतिर्देवोमिद्रं वयोधसन्देवो देव मवर्द्धयय। द्विपदाच्छन्दसेन्द्रियम्भगमिन्द्रे वयोदधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतुयज स्वाहा-इदं पूर्व भाद्रपदायै न मम।**

२६. गूलर की समिधा से, यथा – **ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति न पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु स्वाहा – इदं उत्तर भाद्रपदायै न मम।**

२७. विल्व समिधा से, यथा – **ॐ योवः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते हनः। उशतीरिवमातरः स्वाहा – इदं रेवत्यै न मम।**

इसके पश्चात् नवग्रहों के लिए, प्रत्येक ग्रह की निश्चित समिधा द्वारा हवन करके घृत से पूर्णाहूति प्रदान कर उपर्युक्त समिधाओं से युक्त जल द्वारा रोगी को स्नान कराये। तदुपरान्त उसे श्वेत वस्त्र, उत्तरीय तथा यज्ञोपवीत पहनाकर वेदादि मन्त्र से उसका अभिषिञ्चन करे।

ऋग्वेदमन्त्रः – **ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्व धातमम्।।**

शुक्लयजुर्वेद मन्त्रः – **इषे त्वोर्जे त्वावायवस्थ देवोवः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमन्यागइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माऽघशर्ठ सोद्ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौस्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।।**

सामवेद मन्त्रः – **अग्रन आयाहि वीतये गृणानोहव्यदातये। निहोता सत्सिवर्हिषि।।**

अथर्ववेद मन्त्रः – **शन्नो देवीरभिष्टय आपोभवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः।।**

अभिसेचन के बाद ब्राह्मणों को सामर्थ्यानुसार भूमि, वस्त्र, स्वर्णादि का दान करे। इस प्रकार विधि का सम्यक पालन करने से पूर्ण शान्ति की प्राप्ति होती है।

।। हारीतसंहिताप्रोक्त–योगजन्य ज्वर भोग कालः।।

आदित्य योगेन मघा विशाखा
चन्दने युक्त कुज आर्द्रया तु।
मूलं बुधे सुरगुरो यदि कृतिका स्यात्
शुक्रेण रोहिण्यसितेन हस्तः।।

एतान् वदन्ति निपुणा यमघण्टयोगान्, व्याधिप्रपन्नमनुजो यदि पुण्ययोगात्। जीवेत् यदा कथमसौ करणेन हीनो घोरां तरन् सुविपदञ्च कथं सुखं स्यात्। आदित्येनानुराधा भवतिहिमरुचिश्चोत्तरासं प्रयुक्तो भोमः सप्तर्षियुक्ता बुध इह तूरगी योग एषोऽशुभाय। जीवो वाचेन्मृगशिरसि गतोऽश्लेषया भार्गवो वा। हस्तेनात्यिपुत्रः प्रवदति न शुभः शास्त्रविद् योगयुक्तः। (इति मृत्युयोगः)

दिनकरे करयुक्तः सौम्ययुक्तोऽपि सोम–
स्तुरगसहितभौमः सोमपुत्रोऽनुराधा।
सुरगुरुरपि पुष्य रेवती शुक्रवारे

दिनकर सुतयुक्ता रोहिणी सौख्यहेतुः। इति अमृतयोगः।।
मूले व्रजेतिऽगण्डे वा व्याधाते व्यातिपातके।
विष्कुम्भयोगयुक्ते च नक्षत्रे क्रूरदेवते।।
एतेरसाध्या ज्वरिणस्तस्माद्योगान् परीक्षयेत्।
योगे ऋक्षे तथा वारे क्रूरे प्राप्ते न जीवति।। इति क्रूरयोगः।
सिद्धः शुक्लः शुभः प्रीतिरायुष्मांश्च सुकर्मणः।
धृतिर्वृद्धिर्ध्रुवो हर्षः सुखसाध्या इमे स्मृताः।।

अब हारीत संहिता में कहे गये ग्रह नक्षत्र-योग जन्य ज्वर भोगकाल के विषय में कहते हैं।

आदित्य (सूर्य) युक्त मघा, चन्द्र युक्त विशाखा, मंगलयुक्त आर्द्रा, बुध युक्त मूल, बृहस्पति युक्त कृतिका, शुक्रयुक्त रोहिणी तथा शनि युक्त हस्त नक्षत्र होने पर विद्वानों ने इसे यमघण्ट योग कहा है। इन योगों में व्याधिग्रस्त मनुष्य यदि अपने पुण्ययोग से जीवित भी रह जाय तो घोर विपत्ति में पड़ा हुआ इन्द्रिय रहित (क्षीण इन्द्रियों के कारण) वह कैसे सुखी हो सकता है अर्थात् जब तक वह जीता है दुख ही भोगता है। आदित्ययुक्त अनुराधा, चन्द्रमायुक्त उत्तरा वाले नक्षत्र, मङ्गलयुक्त सप्तर्षि तथा अश्विन युक्त बुध होने पर उत्पन्न व्याधि मनुष्य के लिए अशुभ कारक कहा गया है। बृहस्पति युक्त मृगशिरा, शुक्र युक्त आश्लेषा तथा शनि युक्त हस्त नक्षत्र होने पर उत्पन्न रोग को शास्त्रज्ञों ने अशुभ ही कहा है। ये सभी मृत्यु योग कहे गये हैं।

सूर्य युक्त हस्त, चन्द्र युक्त बुध, अश्विनी मङ्गल युक्त, बुध सहित अनुराधा, बृहस्पति युक्त पुष्य, रेवती युक्त शुक्र तथा रोहिणी के शनियुक्त होने पर उत्पन्न ज्वर सुखकारक (अशुभ रहित) होता है अर्थात् रोगी व्याधि से सुख पूर्वक मुक्त हो जाता है। इन योगों को अमृत योग कहा जाता है।

मूल, वज्र, अतिगण्ड, व्याघात्, व्यतिपात तथा विष्कुम्भ योग के साथ क्रूर दैवत नक्षत्रों का योग होने पर उत्पन्न रोग असाध्य होते हैं। इसी प्रकार क्रूर योग, नक्षत्र तथा दिनों में रोग होने पर रोगी जीवित नहीं रहता। अतः रोगी की चिकित्सा करते समय वैद्य को इन योगों आदि का भली भाँति विचार कर लेना चाहिए।

सिद्ध, शुक्ल, शुभ, प्रीति, आयुष्मान्, सुकर्मण, धृति, वृद्धि, ध्रुव तथा हर्ष इन योगों में उत्पन्न ज्वर (व्याधि) सरलता से साध्य होते हैं।

पार्थिवेश्वर - पूजनम्

कार्तिक, मार्गशीर्ष (अगहन), माघ, वैशाख तथा श्रावण मास के कृतिका नक्षत्र युक्त पक्ष में इस 'पार्थिव-शिव-पूजन' को करना अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सम्पत्ति प्रदायक कहा जाता है।

जिस दिन पार्थिवेश्वर पूजन करना अभीष्ट हो उसके एक दो दिन पहले प्रातः उठकर शौच-स्नानादि क्रिया करके शिव का ध्यान कर शुद्ध होकर तथा त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्ष माला एवं श्वेत वस्त्र धारण कर स्वगृह ग्रामादि से उत्तर दिशा की ओर जाकर शमीं-पीपलादि पवित्र वृक्षों के पास की अथवा वल्मीक (दीमक) युक्त भूमि जो बालू, पत्थर, कीड़े-मकोड़े, अस्थि-केशादि से रहित हो, ऐसी शुद्ध भूमि का चयन करे। हाथ जोड़ कर भूमि से प्रार्थना करे-

ॐ सर्वाधारधरे देवि! त्वद्रूपां मृत्तिकामिमाम्।
ग्रहीष्यामि प्रसन्ना त्वं लिङ्गार्थं भव सुप्रभे॥

"ह्रां पृथिव्यै नमः" इस मन्त्र से भूमि को अभिमन्त्रित करे। पुष्प-गन्धादि से पृथिवी का पूजन करके प्रणाम कर ईशान कोण में आठ अङ्गुल भूमि खोदकर मिट्टी अलग कर दे। इसके बाद शुद्ध, साफ चिकनी मिट्टी निम्न मंत्र पढ़ते हुए ग्रहण करे -

ॐ उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबहुना।
मृत्तिके त्वाञ्चगृह्णामि प्रजया च धनेन च॥

मिट्टी को ग्रहण कर चुप-चाप (मौन होकर) अशुद्ध व्यक्तियों के स्पर्श से स्वयं को रक्षित करते हुए घर आकर, मिट्टी को भली-भाँति छानकर, शुद्ध, स्वच्छ, महीन मिट्टी को किसी ताँबे के पात्र में, नित्य अथवा विशेष दिन पूजन के लिए रख लें।

तत्पश्चात् जिस शुभ दिन पूजन करना अभीष्ट हो उस दिन प्रातः कालीन नित्य कर्म स्नान-सन्ध्यादि करके शुभ मुहूर्त में किसी पुण्य क्षेत्र शिवालय अथवा नदी तटादि पर जाकर भू-शुद्धि, आसन-शुद्धि आदि करके यथोचित आसन पर उत्तर मुख बैठकर यज्ञीय भस्म से त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्ष (यदि पूर्व धारित न हो तो) धारण करे। इसके बाद पञ्चाक्षरी मन्त्र (नमः शिवाय) से आचमन करके माङ्गलिक श्लोकों (गणपति द्वादश नाम, सर्वमङ्गल माङ्गल्ये इत्यादि) का पाठ करके सङ्कल्प करे। यथा -

ॐ अद्येत्यादि अमुक गोत्रोत्पन्नो अमुक शर्माऽहं (वर्मा, गुप्तो, दासोऽहं वा) श्रुतिस्मृति पुराणादि शात्रोक्त फल प्राप्त्यर्थे (अमुक कामना सिद्ध्यर्थे, अमुक रोग, ग्रह दोष, विपदादि शमनार्थे वा) श्री उमा महेश्वर प्रीत्यर्थे च पार्थिव-लिङ्ग पूजनं करिष्ये। (अथवा एतावत काल पर्यन्तं प्रतिदिने अमुक संख्याया पार्थिव लिङ्गानि पूजनं करिष्ये ब्राह्मण द्वारा कारयिष्ये वा)

सङ्कल्प के बाद आसन का एक कोना उठाकर नीचे पृथिवी पर अधोमुख त्रिकोण जलादि के द्वारा बनाकर पूजन करें -

ॐ कूर्माय नमः। ॐ ह्रीं आधारशक्ति कमलासनाय नमः। ॐ पृथिव्यै नमः।

सर्वोपचारार्थे गंधाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि, नमस्करोमि।

ॐ पृथ्वि! त्वया धृताः लोकाः देवि! त्वञ्च विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां देवि! पवित्रं कुरु चाऽऽसनम्।।

कृताञ्जलि प्रार्थना कर आसन पर थोड़ा जल छिड़के।

(उपर्युक्त क्रिया यदि आसन पर बैठते समय कर ली गई हो तो इस समय आवश्यक नहीं)

तत्पश्चात् - **ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।**
ये भूता विघ्नकर्तारः ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।

मन्त्र का उच्चारण करके बांये द्वारा पृथ्वी पर तीन बार आघात कर विघ्नोत्सारण करें। पुनः -

ॐ 'रं' अग्नि प्रकाराय नमः। ॐ सहस्रार हुं फट् सुदर्शन प्रकाराय नमः। ॐ श्लीं पशुं हुं फट् पाशुपत प्राकाराय नमः। मन्त्रों का उच्चारण कर अपने चारों ओर चुटकी बजाकर दिग्रक्षण करें।

इसके पश्चात् भूत-शुद्धि तथा स्वयं की प्राण-प्रतिष्ठा करके शिव दशाक्षर मंत्र का (ॐ नमो भगवते रुद्राय) न्यास करे। यथा -

ॐ नमः (मूर्ध्नि)। नं नमः (नासिकाग्रे)। मों नमः (ललाटे)। भं नमः (मुखमध्ये)। गं नमः (कण्ठे)। वं नमः (हृदि)। तें नमः (दक्षिण हस्ते)। रूं नमः (वामहस्ते)। द्रां नमः (नाभौ)। यं नमः (पादयोः)।

न्यासोपरान्त सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर लिङ्ग निर्माण हेतु लाई गई मिट्टी को पात्र सहित सम्मुख रखकर दृष्टि अवलोकन द्वारा शोधित कर अमृत बीज 'वं' का उच्चारण कर उसे जल से सिञ्चित कर गोल पिण्ड बना ले। इस पिण्ड से थोड़ी सी मिट्टी लेकर एकादशाक्षर मन्त्र ''ॐ ह्रीं ग्लौं गं गणपतये ग्लौं गं ह्रीं'' मन्त्रोच्चारण सहित वराभय मुद्रायुक्त द्विभुज बाल गणपति की रचना कर पीठ पर स्थापित करे।

तत्पश्चात् मृद् पिण्ड से ''ॐ नमो हराय'' मन्त्र का उच्चारण करते हुए बहेड़े के फल के बराबर (लगभग १२ ग्राम) मिट्टी लेकर ''ॐ नमो महेश्वराय'' मन्त्र का जप करके अंगूठे की लम्बाई से अधिक तथा एक बालिश्त से कुछ कम लम्बाई का सुन्दर शिव लिङ्ग बनाये। इस लिङ्ग के ऊपर एक, तीन, पाँच, तीन तथा दो गुटिका (गोली) क्रमशः गंगा, गणेश, उमा, शिव तथा कुमार के नाम से स्थापित करें अथवा केवल एक गुटिका (वज्र नामात्मक) स्थापित करे।

इस शिव लिङ्ग को पुष्पाक्षत विल्वपत्रादि युक्त किसी कांसे या ताँबे के पात्र में मध्य पीठ में स्थापित (ॐ नमो शूलपाणये हे शिव! इह प्रतिष्ठितो भव'' मन्त्रोच्चारण सहित) करके कामनानुसार अन्य लिङ्गों का निर्माण करे। फिर शेष बची हुई मिट्टी से ''**ॐ ऐं हुं क्षुं क्लीं कुमाराय नमः**'' इस मन्त्रोच्चारण पूर्वक षणमुख स्कन्द विग्रह की रचना कर लिङ्ग-पक्तियों के अन्त में स्थापित करे।

इसके बाद पुनः आचमन, प्राणायाम कर पञ्चाक्षरी मन्त्र का विनियोग न्यासादि करके ध्यान कर मानस पूजन करे। यथा –

विनियोग – **ॐ अस्य श्री शिव पञ्चाक्षर मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पङ्क्तिश्छन्दः श्री सदाशिवो देवता, ॐ बीजं, नमः शक्तिः, शिवाय कीलकं श्री साम्बसदाशिव प्रीत्यर्थे पार्थिवलिङ्ग पूजने च विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यास – **ॐ वामदेव ऋषये नमः** (शिरसि)। **पंक्तिश्छन्दसे नमः** (मुखे)। **श्री सदाशिव देवतायै नमः** (हृदि)। **ॐ बीजाय नमः** (गुह्ये)। **नमः शक्तये नमः** (पादयोः)। **शिवाय कीलकाय नमः** (सर्वाङ्गे)।

कर षडङ्ग न्यासः

ॐ	**ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः**	**हृदयाय नमः**
	नं तर्जनीभ्यां स्वाहा	**शिरसे स्वाहा**
	मं मध्माभ्यां वषट्	**शिखायै वषट्**
	शिं अनामिकाभ्यां हुं	**कवचाय हुम्**
	वां कनिष्ठाभ्यां वौषट्	**नेत्रत्रयाय वौषट्**
	यं करतल-कर पृष्ठाभ्यां फट्	**अस्त्राय फट्**

ध्यानम्

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं,
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृतिं वसानं,
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

इस प्रकार सदाशिव का ध्यान करके मानसोपचार पूजन करे।

ॐ लं पृथ्वी तत्वात्मकं गन्धं समर्पयामि श्री सदाशिव देवताभ्यो नमः। (कनिष्ठा+अंगु० अधो मुद्रा)

ॐ हं आकाश तत्वात्मकं पुष्पं समर्पयामि श्री सदाशिव देवताभ्यो नमः। (तर्जनी+अंगु० अधो मुद्रा)

ॐ यं वायु तत्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि श्री सदाशिव देवताभ्यो नमः। (तर्जनी+अंगु० ऊर्ध्व मुद्रा)

ॐ रं अग्नि तत्वात्मकं दीपं दर्शयामि श्री सदाशिव देवताभ्यो नमः। (मध्यमा+अंगु० ऊर्ध्व मुद्रा)

ॐ वं जल तत्वात्मकं (अमृतात्मकं) नैवेद्यं निवेदयामि श्री सदाशिव देवताभ्यो नमः। (अनामिका+अंगु० ऊर्ध्व

मुद्रा)

ॐ शं शक्त्यात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि श्री सदाशिव देवताभ्यो नमः।

(सर्वांगुलिभिः ऊर्ध्व मुद्रा)

ॐ सं सर्वमन्त्रात्मकं मन्त्र पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि श्री सदाशिव देवताभ्यो नमः।

(अञ्जलि मुद्रा)

।। लिङ्ग प्राण-प्रतिष्ठा।।

विनियोगः - **ॐ अस्य श्री प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वर ऋषयः, ऋग्यजुः सामानि छन्दासि, क्रियामयवपुः प्राणाख्या देवता, आँ बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्रौं कीलकं देवे (लिङ्गे) प्राण प्रतिष्ठापने विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यासः - हाथ में पुष्प लेकर उससे लिङ्ग का स्पर्श करते हुए न्यास करें - **ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्र ऋषिभ्यो नमः** - शिरसि। **ॐ ऋग्यजुः सामच्छन्दोभ्यो नमः** - मुखे। **ॐ प्राणाख्य देवतायै नमः** - हृदि। **ॐ आँ बीजाय नमः** - गुह्ये। **ॐ ह्रीं शक्तये नमः** - पादयोः। **ॐ क्रौं कीलकाय नमः** - सर्वाङ्गेषु।
ॐ आँ ह्रीं क्रौं यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हंसः सोऽहं शिवस्य प्राणाः इह प्राणाः।
ॐ आँ ह्रीं क्रौं यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हंसः सोऽहं शिवस्य जीव इह स्थितः।
ॐ आँ ह्रीं क्रौं यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हंसः सोऽहं शिवस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्-चक्षुः श्रोत्र घ्राण जिह्वापाणिपादपायूपस्थानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इन प्राण प्रतिष्ठा मन्त्रों को मन ही मन उच्चारण करे। इसके बाद लिङ्ग पर अक्षत निक्षेप द्वारा आवाहन करे -

ॐ भूः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि।
ॐ भुवः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि।
ॐ स्वः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि।
ॐ स्वामिन् सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकम्।
तावत् त्वं प्रीतिभावेन लिङ्गेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

ॐ पिनाकधृषे नमः, श्री साम्बसदाशिव पार्थिवेश्वर इहागच्छ, इह प्रतिष्ठ, इह सन्निहितो भव। श्री भगवते साम्बसदाशिवपार्थिवेश्वराय नमः, आवाहनार्थे पुष्पं समर्पयामि।

उपर्युक्त मन्त्रों को बोलकर लिङ्ग पर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। इसके बाद हाथ जोड़कर ध्यान तथा प्राणायाम करे। यथा -

ध्यानम् - **दक्षाङ्कस्थं गजपति मुखं प्रामृशन्दक्षदोष्णा**
वामोरुस्थागपतितनयाङ्के गुहं चापरेण।
इष्टाभीतीपरकरयुगे धारयन्निन्दुकान्तिः
सीव्यादस्मांस्त्रिभुवननतो नीलकण्ठस्त्रिनेत्रः।।

प्रणाम - **नमोऽस्तु स्थाणुरूपाय ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने।**
चतुमूर्तेश्च पुंशक्त्या भासिताङ्गाय शम्भवे॥
सर्वज्ञ ज्ञान विज्ञान - प्रदानैक महात्मने।
नमस्ते देव देवेश! सर्वभूत हितेरतः!॥

प्रणाम कर पुष्पाञ्जलि अर्पित करके पूर्वोक्त एकादशाक्षर मन्त्र से गणपति तथा दशाक्षर मन्त्र से कुमार कार्तिकेय का पूजन करे।

॥ शिव (लिङ्ग) पूजनम्॥

गणपति-कुमार पूजनोपरान्त लिङ्ग पूजन प्रारम्भ करे। सर्वप्रथम लिङ्ग में शिव का ध्यान कर ''ॐ नमो पशुपतये'' मन्त्र द्वारा उसे स्नान करायें। इसके बाद पञ्चाक्षर मन्त्र अथवा दशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते रुद्राय) द्वारा पञ्चोपचार (गंध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य), अष्टोपचार (गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, नमस्कार तथा प्रदक्षिणा) अथवा षोडशोपचार पूजन करे। अथवा वैदिक मन्त्रों द्वारा निम्नवत शिव (लिङ्ग) पूजन करे। यथा -

पहले लिङ्ग में गणेश, कुमार तथा उमा सहित प्रसन्न मुख शिव का ध्यान करे -

ॐ दक्षोत्सङ्गनिषण्ण कुञ्जरमुखं प्रेम्णा करेण स्पृशन्,
वामोरुस्थितवल्लभाङ्कनिलयं स्कन्दं परेणामृशन्।
इष्टाभीतिमनोहरं करयुगं विभ्रत प्रसन्नाननो,
भूयान्नः शरदिन्दुसुन्दरतनुः श्रेयस्करः शङ्करः॥
ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः॥

(अथवा ''ध्यायेन्नित्यं महेशं'' इत्यादि रूप से ध्यान करे।)

ॐ साम्बसदाशिवाय पार्थिवेश्वराय नमः, ध्यानार्थे विल्वपत्रं समर्पयामि।

आसनम् - **ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।**
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि॥

ॐ साम्बसदाशिवाय पार्थिवेश्वराय नमः, आसनार्थे अक्षतान् (पुष्पाणि, विल्वपत्राणि वा) समर्पयामि।

पाद्यम् - **ॐ यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे।**
शिवां गिरत्र तां कुरु मा हि ँ सीः पुरुषं जगत्॥

ॐ साम्ब0 नमः, पादयोः पाद्यं समर्पयामि।

अर्घ्यम् - **ॐ शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि।**
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्म ँ सुमना असत्॥

ॐ साम्ब0 नमः, हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि।

आचमनीयम् - **ॐ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।**
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव॥

ॐ साम्ब0 नमः, आचमनीयं जलं समर्पयामि।

स्नानम् - **ॐ असौ यस्ताम्रो अरुण उत वभ्रुः सुमङ्गलः।**
ये चैन ँ् रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषा ँ् हेड ईमहे॥

ॐ साम्ब0 नमः, स्नानार्थे जलं समर्पयामि। स्नानान्ते आचमनीयं जलं पुनः समर्पयामि।

पयः स्नानम् - **ॐ पयः पृथिव्याँ पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।**
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥

ॐ साम्ब0 नमः, पयः (दुग्धं) स्नानम् समर्पयामि।

शुद्धोदकस्नानम् - **ॐ आपोहिष्ठा मयो भुवस्तान अर्जेदधातन।**
महेरणाय चक्षसे॥

ॐ साम्ब0 नमः, शुद्धोदक स्नानार्थे जलं समर्पयामि। स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

दधि-स्नानम् - **ॐ दधिक्राण्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।**
सुरभि नो मुखाकरत् प्रण आयू ँ् षि तारिषत्॥

ॐ साम्ब0 नमः, दधि स्नानं समर्पयामि। दधि स्नानान्ते शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि। शुद्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

घृत-स्नानम् - **ॐ घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिघृते श्रितो घृतंवस्य धाम।**
अनुष्वधमावहमादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम्॥

ॐ साम्ब0 नमः, घृत-स्नानं समर्पयामि। घृत स्नानान्ते शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि। शुद्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

मधु स्नानम् - **ॐ मधु वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥**

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ् रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँश अस्तु सूर्याः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥

ॐ साम्ब0 नमः, मधुस्नानं समर्पयामि। मधुस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

शर्करास्नानम् - **ॐ अपा ँ् रसमुद्वयस ँ् सूर्ये सन्त ँ् समाहितम्।**
अपा ँ् रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥

ॐ साम्ब0 नमः, शर्करास्नानं समर्पयामि। शर्करास्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। शुद्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

पञ्चामृतस्नानम् - **ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।**
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥

ॐ साम्ब0 नमः, पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि। पञ्चामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं

समर्पयामि। शुद्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

गन्धोदकस्नानम्- **ॐ अँशुना ते अँशुः पृच्यनां परुषा परुः।**
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः॥

ॐ साम्ब0 नमः, गन्धोदक स्नानं समर्पयामि। गन्धोदक स्नानान्ते शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि। शुद्धोदक स्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

शुद्धोदकस्नानम्- **ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त अश्विनाः**
श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा
अवलिप्ता रौद्रा नभोरुपाः पार्जन्याः॥

ॐ साम्ब0 नमः, शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि।

आचमनीयम् - **ॐ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।**
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव॥

ॐ साम्ब0 नमः, आचमनीयं जलं समर्पयामि।

अभिषेक - शुद्ध जल, गंगा जल अथवा दुग्धादि से निम्न मन्त्रों (रुद्र-सूक्त) का पाठ करते हुए लिङ्ग का अभिषेक करें। लिङ्ग को पत्र-पुष्पादि से आच्छादित कर ही अभिषेक करना चाहिए, जिससे पार्थिव लिङ्ग की मिट्टी क्षरित न हो।

रुद्र-सूक्तम्

नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः॥१॥
या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि॥२॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्॥३॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत्॥४॥
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च
यातुधान्योधराचीः परा सुव॥५॥
असौ यस्ताम्रो अरूण उत वभ्रुः सुमङ्गलः।
ये चैनं रूद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः
सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे॥६॥
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः
स दृष्टो मृडयाति नः॥७॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योकरन्नमः॥८॥

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्न्योर्ज्याम।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप॥९॥
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ उत।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः॥१०॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।
तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज॥११॥
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम्॥१२॥
अवतत्य धनुष्ट्वं सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव॥१३॥
नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने॥१४॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं
मा नः प्रियास्तन्वो रूद्र रीरिषः॥१५॥
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान् रूद्र भामिनो वधी
र्हविष्मन्तः सद्मित् त्वा हवामहे॥१६॥

॥ इति रूद्रसूक्तम्॥

शुद्धोदकस्नानम्- **ॐ योव शिव तमो रसस्तस्य भाजयहेतनः। उशतीरिव मातरः।**
आपोऽमान् मातरः शुंधयंतु घृतेन नो घृतस्व पुनन्तु।
विश्व ँ् हिरि प्रंप्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरापूतएभि।

ॐ साम्ब0 नमः, शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि।

शान्त्यभिषेक - **‘ॐ द्यौः शान्तिः’** इत्यादि शान्तिक मन्त्रों का पाठ करते हुए शान्त्यभिषेक करे।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ् शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व ँ् शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥

दृतेदृ ँ् हमा मित्रस्य मा चक्षुसा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

दृतेदृ ँ् हमा ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्तवर्चिषे। अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोःऽअस्मभ्य ँ् शिवो भव॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे।।
यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः।।
सुमित्रिया नऽआप औषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु। योऽस्मान्द्वेष्टियं च वयं द्विष्मः।।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ँ् श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।

ॐ साम्ब0 नमः, अभिषेकान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

वस्त्रम् - **ॐ असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।**
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदश्रन्नृदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः।।

ॐ साम्ब0 नमः, वस्त्रं (श्वेतं) समर्पयामि। वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

उपवस्त्रम् - **ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरुथमाऽसदत्स्वः।**
वासो अग्रे विश्वरूप ँ् सं व्ययस्व विभावसो।।

ॐ साम्ब0 नमः, उपवस्त्रं समर्पयामि। उपवस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

कौपीनम् - **ॐ नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च।**
नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च नमो ह्रस्वाय।। ॐ साम्ब0 नमः, कौपीनं (कौशेय वस्त्रं) समर्पयामि। आचमनीयं जलं समर्पयामि।

यज्ञोपवीतम् - **ॐ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।**
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः।।

ॐ साम्ब0 नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि। यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

आभरणम् - **ॐ विज्यं धनुः कपर्दिनी विशल्यो बाणवा ँ् उत।**
अन्नेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः।।

ॐ साम्ब0 नमः, आभरणानि समर्पयामि।

गन्धम्- **ॐ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयो शर्त्न्योर्ज्याम्।**
याश्चते हस्त इषवः परा ता भगवो वप।।

ॐ साम्ब0 नमः, गन्धं (गन्धानुलेपनं) समर्पयामि।

अक्षताः- **ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च।**
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।

ॐ साम्ब0 नमः, अक्षतान् समर्पयामि।

पुष्पम्:- **ॐ नमः वार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च।**
नमस्तीर्थ्याय च कूल्यायं च नमः शष्प्याय च फेन्याय च नमः।।

ॐ साम्ब० नमः, पुष्पाणि (पुष्पमालां) समर्पयामि।

सुगन्धित द्रव्याणि-**ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

ॐ साम्व0 नमः, सुगन्धित द्रव्याणि समर्पयामि।

बिल्व-पत्रम्- **ॐ नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरुथिने च।**
नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च॥
त्रिगुणं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रिधायुतम्।
त्रिजन्मपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम्॥

ॐ साम्व0 नमः, बिल्व पत्राणि समर्पयामि।

नानापरिमल द्रव्याणि-

ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्यान् पुमान् पुमाँ्सं परि पातु विश्वतः॥

ॐ साम्व0 नमः, नाना परिमल द्रव्याणि समर्पयामि।

इसके पश्चात् आवरणार्चन-क्रम में गन्धाक्षत-पुष्प द्वारा एकादश रुद्रों का पूजन करें। यथा -

१. ॐ अघोराय नमः। २. ॐ पशुपतये नमः। ३. ॐ शिवाय नमः। ४. ॐ विरूपाय नमः। ५. ॐ विश्वरूपाय नमः। ६. ॐ भैरवाय नमः। ७. ॐ त्र्यम्बकाय नमः। ८. ॐ शूलपाणये नमः। ९. ॐ कपर्दिने नमः। १०. ॐ ईशानाय नमः। ११. ॐ महेशाय नमः।

तत्पश्चात् एकादश रुद्र-शक्तियों का पूजन करे। यथा -

१. ॐ भगवत्यै नमः। २. ॐ उमादैव्यै नमः। ३. ॐ शंङ्करप्रियायै नमः। ४. ॐ पार्वत्यै नमः। ५. ॐ गौर्ये नमः। ६. ॐ कालिन्द्यै नमः। ७. ॐ काटिव्यै नमः। ८. ॐ विश्वधारिण्यै नमः। ९. ॐ विश्वेश्वर्यै नमः। १०. ॐ विश्वमात्रे नमः। ११. ॐ शिवायै नमः।

इसके बाद शिव की अष्ट-मूर्तियों का पूजन पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर वामावर्त क्रम से करें। यथा -

प्राच्याम् - ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः॥१॥ ईशान्याम् - ॐ भवाय जल मूर्तये नमः॥२॥ उदीच्याम् - ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः॥३॥ वायव्याम् - ॐ उग्राय वायु मूर्तये नमः॥४॥ प्रतीच्याम् - ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः॥५॥ नैर्ऋत्याम् - ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः॥६॥ दक्षिणस्याम् - ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः॥७॥ आग्नेय्याम् - ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः॥८॥

"**ह्रीं उमायै नमः**" से प्रणालिका में उमा का पूजन करे।

तदुपरान्त लिङ्ग-पीठ के चारों ओर दक्षिणावर्त क्रम से पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करे। यथा -

(१) ॐ लं इन्द्राय सायुधाय सशक्तिकाय नमः। पूर्वे
(२) ॐ रं अग्नये सायुधाय सशक्तिकाय नमः। आग्नेये

(३) ॐ मं यमाय सायुधाय सशक्तिकाय नमः। दक्षिणे
(४) ॐ क्षं निर्ऋतये सायुधाय सशक्तिकाय नमः। नैर्ऋत्ये
(५) ॐ वं वरुणाय सायुधाय सशक्तिकाय नमः। पश्चिमे
(६) ॐ यं वायवे सायुधाय सशक्तिकाय नमः। वायव्ये
(७) ॐ सं सोमाय सायुधाय सशक्तिकाय नमः। उत्तरे
(८) ॐ हं ईशानाय सायुधाय सशक्तिकाय नमः। ईशाने
(९) ॐ आं ब्रह्मणे सायुधाय सशक्तिकाय नमः। ईशान-पूर्व मध्ये
(१०) ॐ ह्रीं अनन्ताय सायुधाय सशक्तिकाय नमः। पश्चिम नैर्ऋत्य मध्ये

धूपम् - **ॐ या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।**
तथाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज।।

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, धूपमाघ्रापयामि।

दीपम् - **ॐ परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विश्वतः।**
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम्।।

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, दीपं दर्शयामि। (दीप दिखाने के बाद हाथों को धो लें।)

नैवेद्यम् - **ॐ अवतत्य धनुष्ट्वँ सहस्राक्ष शतेषुधे।**
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव।।

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, नैवेद्यं निवेदयामि। नैवेद्यान्ते ध्यानम्। ध्यानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि।

करोद्वर्तनम् - **ॐ सिञ्चति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च।**
सुरायै बभ्रूवै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः।।

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, करोद्वर्तनार्थे चन्दनानुलेपनं समर्पयामि।

ऋतुफलम् - **ॐ याः फलीनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।**
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वँ हसः।।

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, ऋतु फलानि समर्पयामि।

ताम्बूलम् - **ॐ नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे।**
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने।।

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, मुखवासार्थे सपूगीफलं ताम्बूलपत्रं समर्पयामि।

दक्षिणा -**ॐ यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः।**
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत्।।

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थे द्रव्य-दक्षिणां समर्पयामि।

इसके पश्चात् साक्षत-जल द्वारा तर्पण करे। यथा-

१. ॐ भवं देवं तर्पयामि। २. ॐ शर्वं देवं तर्पयामि। ३. ॐ ईशानं देवं तर्पयामि।
४. ॐ पशुपतिं देवं तर्पयामि। ५. ॐ उग्रं देवं तर्पयामि। ६. ॐ रुद्रं देवं तर्पयामि।
७. ॐ भीमं देवं तर्पयामि। ८. ॐ महान्तं देवं तर्पयामि।

१. ॐ भवस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि। २. ॐ शर्वस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
३. ॐ ईशानस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि। ४. ॐ पशुपतेर्देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
५. ॐ उग्रस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि। ६. ॐ रुद्रस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
७. ॐ भीमस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि। ८. ॐ महतो देवस्य पत्नीं तर्पयामि।

नीराजनम् – ॐ आ रात्रि पार्थिव ँ् रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदा ँ् सि बृहती वितिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः।।
ॐ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याँ पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टाग्निः स नो दिवा स रिषस्पातुनक्तम्।।

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, कर्पूरार्तिक्यदीपं दर्शयामि।

कर्पूर गर्भित एकादश वर्तिकाओं द्वारा अथवा केवल कर्पूर द्वारा आरती करें।

आरती के समय कुछ स्तोत्रों तथा आरती स्तुतियों का पाठ भी करना चाहिए।

नील प्रवाल रुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं पाशारुणोत्पलकपालत्रिशूल हस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम्।।

कृपाललितवीक्षणं स्थितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं, शशाङ्ककलयोज्जवलं शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपुर्धराधरसुताभुजो द्वलयितं महो मङ्गलम्।।

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमति प्रेमप्रियं प्रेमदं,
पूर्ण पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं,
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीय कृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्।।
यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्रष्टा रजः संश्रयः,
संहर्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदम्,
नित्यं सत्वसमन्वयादधिगतं पूर्ण शिवं धीमहि।।
वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी,
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते,
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोग सुलभो निःश्रेयसायास्तु वः।।

प्रदक्षिणा -

ॐ मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रिरिषः।।

(यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिण पदे पदे।।)

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि। (प्रदक्षिणत्रयं कुर्यात्)

पुष्पाञ्जलिः -

ॐ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे।।
ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।
ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, मन्त्र-पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

साष्टाङ्ग प्रणामम् -

ॐ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात्।

(ॐ नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे। साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः।।)

ॐ साङ्गाय साम्ब0 नमः, साष्टाङ्ग प्रणामं समर्पयामि। (साष्टाङ्ग प्रणामं कुर्यात्)

इसके पश्चात् यथा शक्ति पञ्चाक्षर मन्त्र का जप कर 'ॐ गुह्यातिगुह्य'' इत्यादि मन्त्र द्वारा जप समर्पित कर के 'पापहरलिङ्गस्तोत्र', 'लिङ्गाष्ट स्तोत्र', 'द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग स्तोत्र' 'वेदसार शिवस्तव', श्री शिवापराधक्षमापन स्तोत्रादि का यथा सम्भव पाठ करें।

।। लिङ्ग स्तवम् ।।

सर्वज्ञ ज्ञान विज्ञान प्रदानैक महात्मने। नमस्ते देवदेवेश सर्वभूत हिते रत।।
अनन्त कीर्तिसम्पन्न अनन्तासनसंस्थित। अनन्तकान्तिसंभोग परमेश नमोऽस्तुते।।
बहुरूप महारूप सर्वरूपोत्तमोत्तम। पशुपाशार्णवासीन दृढव्रत नमोऽस्तुते।।
परापर परातीत उत्पत्तिस्थितिकारक। सर्वार्थ साधनोपाय विश्वेश्वर नमोऽस्तुते।।
स्वभावनिर्मलाकार सर्वव्याधिविनाशन। योगियोग महायोग योगीश्वर नमोऽस्तुते।।

।। फल-श्रुति ।।

कृत्वा लिङ्गप्रतिष्ठांतु स्तवमेनमुदीरयते। लिङ्गस्तवं महत्पुण्यं यः श्रृणोति सदा नरः।।
नोत्पद्यते हि संसारे स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रृणुयाल्लिङ्गसंस्तवम्।।

।। लिङ्गाष्टकम्।।

ब्रह्ममुरारि सुरार्चित लिङ्गं निर्मलभासित शोभित लिङ्गम्।
जन्मजदुःखविनाशक लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम्।।
देवमुनि प्रवरार्चित लिङ्गं कामदहं करुणाकर लिङ्गम्।
रावणदर्प विनाशन लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।
सर्वसुगन्धसुलेपित लिङ्गं बुद्धिविवर्धनकारण लिङ्गम्।

सिद्धसुरासुरवन्दित लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।
कनकमहामणिभूषित लिङ्गं फणिपतिवेष्टितशोभितलिङ्गम्।
दक्षसुयज्ञविनाशन लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।
कुङ्कुमचन्दनलेपित लिङ्गं पङ्कजहारसुशोभित लिङ्गम्।
सञ्चितपापविनाशन लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।
देवगणार्चितसेवित लिङ्गं भावैर्भक्तिभिरेव च लिङ्गम्।
दिनकरकोटिप्रभाकर लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।
अष्टदलोपरि वेष्टित लिङ्गं सर्वसमुद्भव कारण लिङ्गम्।
अष्टदरिद्रविनाशित लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।
सुरगुरुसुरवरपूजित लिङ्गं सुरवनपुष्पसदार्चित लिङ्गम्।
परात्परं परमात्मक लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।

।। फल-श्रुति ।।

लिङ्गाष्टकमिदं पुण्यं य पठेच्छिव सन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते।।

अपराधक्षमापन स्तोत्र पाठ के पश्चात् पुनः -

ॐ स्तुति करोमि कां प्रभो मतिस्तु कुण्ठिता मम। भवद्गुणानुवादपारमेति किं चतुर्मुखः।।
ततः प्रणाममेव ते करोमि दण्डवद्विभो। क्षमस्व मेऽपराधरूपदोषजालमीश्वर।।

गात्रं भस्मसितं सितञ्च हसितं हस्ते कपालं सितं,
खट्वाङ्गञ्च सितं सितञ्च वृषभं कर्णे सिते कुण्डले।
गंगाफेनसितं जटापयसितं चन्द्रः सितो मूर्धनि,
सोऽयं सर्वसितो ददातु विभवं पापक्षयं शङ्करः।।

पुनः साष्टाङ्ग प्रणाम करे। इसके पश्चात् सम्भव हो तो शिवमहिम्नस्तोत्रादि का पाठ-स्तुति आदि करके पुनः प्रार्थना करे।

अङ्गहीनं क्रियाहीनं विधि हीनं महेश्वर। पूजितोऽसि मया देव तत्क्षमस्व भ्रमात्कृतम्।।
यद्यप्युपहृतैः पुष्पैरपास्तैर्भावदूषितैः। केश कीटादि विद्धैश्च पूजितोऽसि मया देव।।
अन्यत्रासिक्त चित्तेन क्रियाहीनेन वा प्रभो। मनोवाक्काय दुष्टेन पूजितोऽसि त्रिलोचन।।
यच्चोपहतपात्रेण कृतमर्घ्यादिकं मया। तामसेन च भावेन तत्क्षमस्व मम प्रभो।।
मन्त्रेणाक्षरहीनेन पुष्पेण विह्वलेन च। पूजितोऽसि महादेव तत्सर्वं क्षम्यतां मम।।
नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे। नमो भवाय रुद्राय रसायाम्बुमयाय च।।
शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः। पशूनां पतये तुभ्यं पावकामिततेजसे।।
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः। महादेवाय सोमाय अमृताय नमोऽस्तुते।।
उग्राय यजमानाय नमस्ते कर्मयोगिने। पार्थिवस्य च लिङ्गस्य यन्मया पूजनं कृतम्।।
तेन मे भगवान् रुद्रो वाञ्छितार्थं प्रयच्छतु।।

इस प्रकार साञ्जलि प्रार्थना करके हाथों में अर्घ्योदक लेकर निम्न मन्त्रों को पढ़कर देवता के चरणों में अर्पित कर (गिरा) दे।

ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्कृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं अस्तु। ॐ साधु वाऽसाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया। तत्सर्वं कृपया देव गृहाणाराधनं मम॥

ॐ आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

अर्घ्यपात्र से थोड़ा सा जल लिङ्ग पर अर्पित कर पुष्पाञ्जलि ग्रहण करके निम्न मन्त्र पढ़े तथा लिङ्ग पर पुष्पाञ्जलि अर्पित कर दे।

ॐ रश्मिरूपा महादेवा अत्र पूजित देवताः। सदा शिवाङ्कलीनास्ता सन्ति सर्वाः सुखावहाः॥

विसर्जनम् – **ॐ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर।**
यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम्॥

'ॐ नमो महादेव देवाय' बोलकर संहारमुद्रा से विसर्जन करे।

इसके बाद गणेश तथा कुमार का भी विसर्जन करके ईशान कोण में जल से मण्डल (चतुरस्र के मध्य त्रिकोण) बनाकर **"ॐ व्यापक मण्डलाय नमः"** से उसका पूजन करे। इसके पश्चात् चण्डेश्वर का ध्यान करे।

चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं रक्तांशुकाढ्यं हृदि भावयामि।
ढक्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां कमण्डलुं विभ्रतमिन्दुचूडम्॥

इस प्रकार ध्यान करके **"ॐ चण्डेश्वराय नमः"** मन्त्र द्वारा मण्डल में निर्माल्य नैवेद्यादि अर्पण द्वारा चण्डेश्वर का पूजन करे।

तत्पश्चात् **"ॐ ध्व्रूं फट् चण्डेश्वर इमं बलिं गृह्ण स्वाहा"** बोलकर तत्वमुद्रा सहित धारारूप से चरणोदक समर्पित करे।

ॐ बलिदानेन सन्तुष्टश्चण्डेशः सर्वसिद्धिदः। शान्तिं करोतु मे नित्यं शिवभक्तिं ददातु च॥
लेह्यचोष्यान्नपानादि ताम्बूलं स्रग्विलेपनं। निर्माल्यं भोजनं तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया॥

उपर्युक्त मन्त्र बोलकर निर्माल्य पुष्पाञ्जलि समर्पित करके **'नाराच मुद्रा'** का प्रदर्शन करते हुए **'गच्छ गच्छ'** बोलकर विसर्जन करे।

समर्पण – हाथ में जल ग्रहण करके बोलें–

ॐ अनेन यथा ज्ञानेन यथा मिलितोपचार द्रव्यैः सावरण पार्थिव लिङ्ग पूजन कर्मणा श्री यज्ञस्वरूपः शिवः प्रीयताम् न मम।

ॐ वाणरावण चण्डीशनंदिभृंगिरिटादयः। शङ्करस्य प्रसादोऽयं सर्वे गृह्णन्तु शाम्भवाः॥
निर्माल्य सलिलं पीत्वा देवदेवस्य शूलिनः। क्षयापस्मारकुष्ठाद्यैस्सद्यो मुच्येत पातकैः॥
अकाल मृत्यु हरणं ब्रह्महत्याविनाशनम्। व्याधिघ्नं भक्तकायस्य शिवनिर्णेजनोदकम्॥

उपर्युक्त मन्त्रों को बोलकर निर्माल्य-जल (चरणोदक) का पान करे।

इसके पश्चात् समस्त निर्माल्य तथा लिङ्ग को किसी नदी या तालाब के जल में विसर्जित कर दे।

वनदुर्गा - प्रयोग विधिः

मन्त्र - ''उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा।''

विनियोग - अस्य श्री वनदुर्गायाः मन्त्रस्य आरण्यक ऋषिः (अति) अनुष्टुप् छन्दः, सर्वशत्रुघातिनी वनदुर्गा देवता, दुं बीजं, स्वाहा शक्तिः सर्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यासः

आरण्यकाय ऋषये नमः	(शिरसि)
(अति) अनुष्टुप छन्दसे नमः	(मुखे)
वनदुर्गा देवतायै नमः	(हृदये)
दुं बीजाय नमः	(गुह्ये)
स्वाहा शक्तये नमः	(पादयोः)
विनियोगाय नमः	(सर्वाङ्गे)।

	कर-न्यासः	षडङ्ग-न्यासः
उत्तिष्ठ पुरुषि	अंगुष्ठाभ्यां नमः ,	हृदयाय नमः
किं स्वपिषि	तर्जनीभ्यां स्वाहा ,	शिरसे स्वाहा
भयं मे समुपस्थितं	मध्यमाभ्यां वषट् ,	शिखायै वषट्
यदि शक्यमशक्यं वा	अनामिकाभ्यां हुं ,	कवचाय हुम्
तन्मे भगवति	कनिष्ठाभ्यां वौषट् ,	नेत्रत्रयाय वौषट्
शमय स्वाहा	करतलकर पृष्ठाभ्यां फट्,	अस्त्राय फट्

मन्त्र वर्ण न्यासः

उं नमः दक्षपादांगुलिमूले
त्तिं नमः गुल्फे
ष्ठं नमः जानुनि
पुं नमः उरुमूले
रुं नमः वामपादांगुलिमूले
षिं नमः गुल्फे
किं नमः जानुनि
स्वं नमः उरुमूले
पिं नमः गुदे
षिं नमः लिङ्गे
भं नमः मूलाधारे

यं नमः उदरे
में नमः दक्षपार्श्वे
सं नमः वामपार्श्वे
मुं नमः हृदि
पं नमः दक्षस्तने
स्थिं नमः वामस्तने
तं नमः कण्ठे
यं नमः दक्षकरांगुलिमूले
दिं नमः दक्षमणिबन्धे
शं नमः कूर्परे
क्यं नमः बाहुमूले

मं नमः	वामकरांगुलिमूले
शं नमः	मणिबन्धे
क्यं नमः	कूर्परे
वां नमः	बाहुमूले
तं नमः	मुखे
न्में नमः	दक्षनासापुटे
भं नमः	वामनासापुटे
गं नमः	दक्षगण्डे
वं नमः	वामगण्डे
तिं नमः	दक्ष नेत्रे
शं नमः	वाम नेत्रे
मं नमः	दक्ष कर्णे
यं नमः	वाम कर्णे
स्वां नमः	भ्रूमध्ये
हां नमः	शिरसि

।। वन दुर्गायाः ध्यानम् ।।

विद्युद्दाम प्रभाभां कनकसरसिजे संस्थितां सत्त्रिनेत्रां,
हस्ताम्भोजै र्वहन्तीमरिदर - वरदाभीतिसंज्ञाः क्रमेण।
स्वर्णोद्यत्कान्तिवस्त्रां शशिकलित लसद्रत्नचूडां प्रसन्नां,
पार्श्वोद्यत्सन्मृगेन्द्रां हृदि वनवसतिं दाव दुर्गा स्मरेऽहम्।।

भक्त के हृदयरूपी वन में सदा निवास करने वाली भगवती वनदुर्गा की देह कान्ति बिजली के समान है। वे प्रसन्न मुख स्वर्ण रचित कमल पर विरजमान हैं। स्वर्ण की आभा के समान उज्जवल पीत-वस्त्र धारण की हुई तीन नेत्रों वाली भगवती के शीर्ष पर चन्द्रकला तथा अनेक रत्न (रत्नों से निर्मित आभूषण) सुशोभित हैं। वे अपने कर-कमलों में क्रमशः चक्र, शंख (दाहिनी दो भुजाओं में) वर तथा अभय मुद्रा (बायी दो भुजाओं में) धारण की हुई है एवं उनके पार्श्व में ही उनका वाहन सिंह स्थित है। ऐसी देवी वनदुर्गा का मैं सदा स्मरण (ध्यान, चिन्तन) करता हूँ।

अथवा कर्म के अनुसार देवी का सात्विक, राजस या तामस स्वरुप का ध्यान करे -

।। वन दुर्गायाः सात्विक ध्यानम्।।

हेम प्रख्यामिन्दुखण्डात्तमौलिं शंखारिष्टाभीतिहस्तां त्रिनेत्रां।
हेमाब्जस्थां पीतवस्त्रां प्रसन्नां देवीं दुर्गां दिव्यरूपां नमामि।।

जिनके शरीर की आभा स्वर्ण के समान पीत-गौर है, शिर पर अर्द्धचन्द्र शोभित है, चार हाथों में शंख, चक्र, इष्ट (वर) तथा अभय मुद्रा धारित है, जो तीन नेत्र वाली, प्रसन्न मुख, पीत वस्त्र धारण की हुई तथा स्वर्ण-कमल पर बैठी हुई हैं ऐसी दिव्य स्वरूप वाली देवी वनदुर्गा को मैं प्रणाम करता हूँ।

।। वन दुर्गायाः राजस ध्यानम्।।

अरिशंखकृपाण खेटबाणान् सधनुः शूलक तर्जनीर्दधाना।
भवतां महिषोत्तमाङ्गसंस्थां नवदूर्वा सदृशी श्रियेस्तु दुर्गा।।

दूर्वा की नवीन कोपलों के समान आभा (श्याम-हरित) वाली, भैंसे की पीठ पर बैठी हुई, अपनी आठों भुजाओं में चक्र, शंख, कृपाण, खेटक, बाण, धनुष, शूल (त्रिशूल) तथा उद्यत्तर्जनी मुद्रा धारण की हुई देवी वनदुर्गा (का रक्षादि कर्मों में

ध्यान करना चाहिए, वे) आप सभी के लिए समृद्धिदायिनी हों।

।। वन दुर्गाया: तामस ध्यानम्।।

चक्रदरखड्गखेटकशरकार्मुकशूल संज्ञककपालैः।
ऋष्टि मुसलकुन्तनन्दकवलयगदाभिन्दिपालशक्त्याख्यैः॥
उद्यद्विकृतिभुजाढ्या माहिषके सजलजलदसंकाशा।
सिंहस्था वाऽग्निनिभा पद्मस्था वाथ मरकतश्यामा।।
व्याघ्रत्वक्परिधाना सर्वाभरणान्विता त्रिनेत्रा च।
अहिकलित नील कुञ्चित कुन्तलविलसत्किरीटशशिकला॥
सर्पमयवलयनूपुरकाञ्ची केयूरहारसम्भिन्ना।
सुरदितिजाभयभयदा ध्येया कात्यायिनी प्रयोगविधौ।।

युद्ध-मारणादि कर्मों के समय वनदुर्गा का तामसी स्वरूप में ध्यान करना चाहिए। भगवती वन दुर्गा महिष के पीठ पर स्थित हैं, इनके शरीर की आभा जल से भरे बादल के समान कृष्ण वर्ण है अथवा सिंह पर सवार अग्नि के समान देह कांति वाली या कमल पर विराजमान पन्ना के समान हरित श्याम वर्णी वन दुर्गा का ध्यान करे। देवी की उठी हुई सोलह भुजाओं में क्रमशः चक्र, शंख, खड्ग, खेटक, बाण, धनुष, त्रिशूल, कपाल (दाहिने हाथों में ऊपर से नीचे के क्रम से) ऋष्टि, मुसल, कुन्त नन्दक, वलय, गदा, भिन्दिपाल तथा शक्ति (बांये हाथ में नीचे से ऊपर क्रम से)धारित हैं। वे शरीर पर व्याघ्र चर्म पहने हुए हैं तथा सारे अंग यथोचित सभी आभूषणों से भूषित हैं। इनके तीन नेत्र हैं, काले घुंघराले केश सर्पों से बद्ध हैं तथा चन्द्रकला शिर पर मुकुट की भांति सुशोभित हैं।

मारणोच्चाटनादि की प्रतिलोम साधना की विधियों में सर्पों से निर्मित कङ्गन, नूपुर, करधनी, बाहुबन्ध, हारादि से सुशोभित शरीर वाली, देवों को अभय तथा दैत्यों को भय प्रदान करने वाली भगवती कात्यायनी दुर्गा (वनदुर्गा) का ध्यान करना चाहिए।

रक्षादि कर्मों के समय सिंहस्थाष्टभुजा सर्वाभरण भूषिता अथवा पद्मस्था द्विभुजा वरदाभयकरा सहस्राक्षी शाकम्भरी रूपा ध्यान करना उत्तम है।

ध्यान के पश्चात् 'लं' इत्यादि से मानसोपचार पूजन करके मन्त्र का जप करे।

वेदलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्तिलैः।
ब्राह्मद्यास्तिलदुग्धान्नैर्दुर्गा सञ्चित्यचानले।।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधन तथा।
धन-धान्यादिभिः सम्यक्तोषयित्वा निजं गुरूम्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री वाञ्छितार्थान् प्रसाधयेत्।।

मन्त्र का चार लाख जप करके चावल, तिल तथा घी के मिश्रण से निर्मित हवि द्वारा जप का दशांश (चालीस हजार) आहुतियों से हवन करे। अग्नि में वन दुर्गा का चिन्तन कर ब्राह्मी आदि मातृकाओं के लिए भी तिल, दुग्ध तथा अन्न द्वारा

आहुतियाँ प्रदान करे। इसके बाद विधिवत् यथा संख्य तर्पण, मार्जन करके ब्राह्मणों को भोजनादि प्रदान कर स्वगुरु को भी भली भाँति धन-धान्यादि अर्पण द्वारा संतुष्ट करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्धि के पश्चात् ही साधक कामनानुसार मन्त्रों के द्वारा प्रयोग करे।

साधक को प्रतिदिन सामान्य जप कार्य, मानसोपचार पूजन (अथवा यथाशक्ति विग्रह पूजन) के बाद ही करना चाहिए, परन्तु विशेष काल तथा प्रयोगों के समय वनदुर्गा यन्त्र का आवरण पूजन करके ही मन्त्र जप करना चाहिए।

।। वन दुर्गाया: प्रयोग (आवरण-पूजन) विधि:।।

साधक प्रात: कालीन नित्य क्रिया संध्यादि करके आसन पर बैठ कर योगपीठ न्यासादि के पश्चात् मूल मन्त्र से तीन बार प्राणायाम करके उपर्युक्त विनियोग से लेकर मानसोपचार पूजन तक सम्पूर्ण क्रिया सम्पन्न करे। इसके पश्चात् तीन अष्टदल कमलाकृति से युक्त यन्त्र की रचना कर (अथवा पूर्व निर्मित) उसे पीठ पर सम्मुख स्थापित कर अर्घ्य स्थापन करके यन्त्र का षडङ्ग पूजन करे। इसके बाद प्रथम अष्ट दल कमल में पूर्वादि क्रम से अष्ट-शक्तियों का पूजन करे। यथा - आर्यायै नम:। दुर्गायै नम:। भद्रायै नम:। भद्रकाल्यै नम:। अम्बिकायै नम:। क्षेम्यायै नम:। वेदगर्भायै नम:। क्षेमङ्कर्यै नम:। द्वितीय अष्ट दल में आयुधों का पूजन करे। यथा- चक्राय नम:। शंखाय नम:। खड्गाय नम:। खेटकाय: नम:। बाणाय नम:। चापाय नम:। शूलाय नम:। कपालाय नम:।

तीसरे अष्ट दल कमल में - ब्राह्मयै नम:। माहेश्वर्यै नम:। कौमार्यै नम:। वैष्णव्यै नम:। वराह्यै नम:। इन्द्राण्यै नम:। चामुण्डायै नम:। महालक्ष्म्यै नम:।

अष्ट मातृकाओं का पूजन कर पूर्वादि क्रम से ही दशों दिक्पालों का भी पूजन करें। षडङ्ग पूजन के पूर्व तथा दिक्पालों के पूजन के पश्चात् भी मध्य में देवी का पुष्पाञ्जलि प्रदान करते हुए पूजन करना चाहिए।

इसके पश्चात् साधक वनदुर्गा मन्त्र का एक सौ आठ या एक हजार आठ जप (प्रतिदिन स्वरक्षा हेतु) करे अथवा प्रयोग कर्म की आवश्यकतानुसार मन्त्र जप करे।

।। वन दुर्गा मन्त्र-प्रयोग:।।

उद्दिश्य यद्यदेनं मनुं जपेदथ सहस्रमयुतं वा।
तत्तन्मन्त्री लभ्येदचिरात्तदनुग्रहादसाध्यमपि।।
स्नात्वार्काभिमुख: सन्नाभिसमकेऽम्भसि स्थितो मन्त्री।
अष्टोर्ध्वशतं प्रजपेन्निजवाञ्छितसिद्धये च लक्ष्म्यै च।।

जिन-जिन कार्यों की सिद्धि के लिए साधक इस वनदुर्गा मन्त्र का एक हजार या दश हजार जप करता है, वे कार्य असाध्य होने पर भी भगवती की कृपा से साध्य होकर शीघ्र ही साधक को अपना फल प्रदान करते हैं।

मन्त्र जापक (साधक) किसी तालाब या नदी में नाभि बराबर जल में खड़ा होकर सूर्य की ओर मुख करके इस मन्त्र का एक सौ आठ बार नित्य जप करे तो उसके अभीष्ट की सिद्धि तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

।। ज्वरादि विपन्नाशक - प्रयोगः।।

ध्यात्वा त्रिशूलहस्तां ज्वरसर्पग्रहविपत्सु जन्तूनाम्।
संस्पृश्य शिरसि जप्यात् तज्जन्योपद्रवं द्रुतं शमयेत्।।

ज्वर, सर्प (विष) ग्रह, विपत्ति आदि से पीड़ित प्राणियों के सिर पर हाथ रखकर त्रिशूल धारिणी वन दुर्गा का ध्यान करते हुए इस मन्त्र का जप करने से उन प्राणियों के समस्त कष्टों का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

।। अपस्मारादि रोग नाशक प्रयोगः।।

अयुतं तिलैर्वनोत्थैः राजिभिर्वा हुनेत्समिद्भिर्वा।
मायूरकीभिरचिरात्सापस्मारादिकांश्च नाशयति।।

वन-तिल अथवा राई अथवा अपामार्ग की समिधा द्वारा दश हजार आहुतियों के प्रदान से हवन करने पर अपस्मार (मिरगी) आदि सहित सभी रोगों की शांति शीघ्र ही हो जाती है।

।। ग्रहाभिचारादि शमन प्रयोगः।।

जुहुयाद्रोहिण-समिधामयुतं मन्त्री पुनः सशुङ्गनाम्।
ग्रहाभिचारापदां विमुक्त्यै सर्वसमृद्ध्यै च तथा।।

ग्रह, अभिचार तथा आपदाओं से मुक्ति एवं सर्वसमृद्धि की प्राप्ति के लिए साधक को शुङ्ग (अग्रभाग-वरोह) सहित वट की समिधा (अथवा चन्दन की समिधा सहित वट की समिधा) से दश हजार हवन करना चाहिए।

।। वाञ्छितार्थ-सिद्धि-प्रयोगः।।

आर्कैः समित्सहस्रैः प्रतिजुहुयादर्कवारमारभ्य।
दशदिनतोऽर्वाग्वाञ्छित सिद्धिर्देव्याः प्रसादतो भवति।।

रविवार से प्रारम्भ करके आक की समिधाओं द्वारा प्रतिदिन एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करे। देवी की कृपा से दश दिनों में अथवा इससे पहले ही साधक की अभीष्ट सिद्धि हो जायेगी।

शुद्धैः सारैरिध्यैस्त्रिदिनं वा सप्तरात्रकं वापि।
प्रतिशकलं प्रतिजुहुयान्मनुना निजवाञ्छिताप्तये मन्त्री।।

शुद्ध खदिर (खैर) की छिलकायुक्त समिधाओं के एक-एक खण्ड द्वारा पृष्ठ भाग की तरफ से तीन दिनों अथवा सात रात्रियों (प्रतिदिन सहस्र आहुतियों द्वारा) तक हवन करने से साधक को अपने अभीष्ट की प्राप्ति होती है।

।। शत्रु सैन्य-पलायन प्रयोगः।।

विशिखानां त्रिंशत्कं पुरो निधायाऽथ तीक्ष्णतैलेन।
जुहुयात्सहस्रकं वाऽयुतमपि संख्यासु पूरितासु पुनः।।
सम्पातिततैलेन च शरान् समभ्युक्ष्य पूर्ववज्जुहुयात्।
तानथ शूरो धन्वी शुद्धाचारः प्रवेशयेद् बाणान्।।
प्रतिसेनाया मध्ये सा धावाति सद्य एवं सम्भ्रान्ता।

भूयो गुरुं धनैरपि धान्यैः परिपूजयेच्च कारयिता।।

तीक्ष्ण शिरों वाले तीस बाणों को सम्मुख रखकर साधक कटु (सरसो के) तेल द्वारा एक हजार अथवा दश हजार हवन मन्त्रोच्चारण सहित करे। इसके बाद हवन के समय किसी पात्र में सम्पातित तेलों से सभी बाणों को भली भाँति लिप्त कर पुनः पूर्ववत् उतनी ही संख्या में हवन करे। तत्पश्चात् पराक्रमी, धनुषधारी तथा पवित्राचरण वाला साधक (राजा या सैनिक) शत्रु सेना के मध्य में इन बाणों की वर्षा (प्रहार) करे। इससे शत्रु सेना शीघ्र ही घबड़ा कर भाग खड़ी होती है। तदुपरान्त प्रयोगकर्ता प्रचुर धन-धान्य समर्पण सहित अपने गुरु का पूजन कर उन्हें संतुष्ट करे।

।। विद्वेषण प्रयोगः।।

अष्टोत्तरशतजप्तं यच्छिरसि प्रच्छिपेच्चिताभस्म।
स तु विद्विष्टो लोकैर्देशात् देशान्तरं परिभ्रमति।।

एक सौ आठ बार वनदुर्गा मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित चिताभस्म को जिस किसी के सिर पर डाल दिया जाय वह मनुष्यों (समाज) द्वारा विद्वेषित (तिरस्कृत) होकर एक स्थान से दूसरे स्थान को इधर-उधर भटकता रहता है।

।। उच्चाटन प्रयोगः।।

कारस्करस्य पत्रैष्ट सहस्रैर्निपातितैर्मरुता।
जुहुयात्सपादपांशुभिरुच्चाटकरं भवेद्रिपो सद्यः।।

शत्रु के पैरों की धूलि युक्त कारस्कर के आठ हजार पत्तों द्वारा, जो वायु के झोकों द्वारा स्वयं ही जमीन पर गिरे हों, हवन करने से शीघ्र ही उसका (शत्रु का) उच्चाटन हो जाता है।

।। स्तम्भन प्रयोगः।।

सेनां संस्तम्भयितुं विषतरुसुमनः सहस्रके जुहुयात्।
तावद्भिस्तत्पत्रैर्मन्त्री च तां निवर्तयति।।

शत्रु सेना को स्तम्भित करने के लिए कुचला वृक्ष के एक हजार पुष्पों द्वारा तथा सेना को वापस पीछे लौटा देने के लिए कुचला के इतने ही पत्रों द्वारा साधक को हवन करना चाहिए।

।। मारण प्रयोगः।।

विषतरुमयीञ्च शत्रोः प्रतिकृतिमसकृत्प्रतिष्ठित प्राणान्।
छित्वा-छित्वा काकोलूकवसाक्तैः सहस्रमष्टौ च।।
असित चतुर्दश्यां तद्गात्रैर्जुहुयादरण्यकेऽर्धनिशि।
त्रिचतुर्दशीप्रयोगादर्वाङ्म्रियते रिपुर्न सन्देहः।।

कुचला वृक्ष की लकड़ी से शत्रु की पुतली बनाकर उसके नाम से कई बार प्राण-प्रतिष्ठा करे। इस पुतली के शरीर को एक हजार आठ खण्डों में विभक्त कर उसमें कौवे तथा उल्लू की चर्बी मिलाकर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को एकान्त वन में आधी रात में, एक-एक अङ्ग खण्ड द्वारा हवन करे। इस प्रयोग को तीन चतुर्दशियों

में करें। प्रयोग पूर्ण होने से पहले ही निःसन्देह शत्रु की मृत्यु हो जायेगी। शत्रु के मरने के बाद भी साधक प्रयोग को अवश्य पूरा करे।

स्ववसारक्तोपेतैर्जुहुयात्पक्षैरुलूक वायसयोः।
म्रियतेऽरातिर्मत्तः स्यादुन्मत्तसमित्सहस्रहोमेन॥

कौवे तथा उल्लू के पंखों द्वारा, उन्हीं के रक्त तथा वसा से लिप्त करके एक हजार (आठ) बार हवन करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। इतनी ही संख्या में धतूरे की समिधाओं से हवन करने पर शत्रु निश्चय ही पागल हो जाता है। इस प्रयोग को कम से कम एक पक्ष (पन्द्रह दिनों) तक करना चाहिए।

स्थापितानिलां तां प्रतिकृतिमुष्णोदके विनिक्षिप्य।
प्रजपेदुन्मादः स्याच्छत्रोर्दुग्धाभिषेकतः शान्तिः॥

विष-वृक्ष (कुचला) की लकड़ी द्वारा शत्रु की पुतली बनाकर, उसके नाम से प्राण-प्रतिष्ठा करके, उसे (पुतली को) गर्म पानी में डालकर वन-दुर्गा मन्त्र का जप करने से वह शत्रु पागल हो जाता है। वन दुर्गा मन्त्र से ही अभिमन्त्रित दूध द्वारा उस शत्रु का अभिषेक करने से उसका पागलपन शान्त (दूर) हो जाता है।

रविबिम्बगतामरुणां करयुगपरिक्लृप्त शूल तर्जनिकाम्।
ध्यात्वाऽयुतं प्रजप्यान्मारयिंतु सद्य एव रिपुनिवहम्॥

शत्रू-समूह के शीघ्र विनाश के लिए सूर्य मण्डल में स्थित अरुण वर्णा, द्विभुजा, एक में त्रिशूल तथा दूसरे में उद्यत तर्जनी मुद्रा धारण की हुई वन दुर्गा का ध्यान करके दश हजार मन्त्र-जप करे।

॥ उच्चाटन प्रयोगः॥

असिखेटकराऽर्कस्था क्रुद्धा मारयति सैव जपविधिना।
सिंहस्था वाणधनुः करा समुच्चाटयेदरीनचिरात्॥

सूर्य मण्डल में स्थित, हाथों में तलवार तथा खेटक धारण किये हुए तथा क्रोधित मुखाकृति वाली वनदुर्गा का ध्यान करके यदि साधक मन्त्र का जप करे तो वह देवी शीघ्र ही शत्रुओं को मार डालती है। इसी प्रकार अपने दोनों हाथों में बाण तथा धनुष धारण किये हुए तथा सिंह पर सवार वन दुर्गा का ध्यान करके जप करने से शीघ्र ही शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है।

विषतरुसमिदयुतहुतादथ करिणो रोगिणो भवन्त्यचिरात्।
तत्पर्णैश्च विनाशस्तेषामुच्चाटनं च तत्पुष्पैः॥

कुचला की समिधा से दश हजार आहुतियाँ प्रदान द्वारा हवन करने से शत्रु के सभी हाथी रोगी हो जाते हैं। इतनी ही संख्या में पत्रों द्वारा हवन करने से उनका विनाश तथा पुष्पों द्वारा हवन करने से उच्चाटन (हाथियों का) होता है।

॥ हस्तिवशीकरण-रोगशमनक-प्रयोगः॥

आनित्यकसमिद्धोमाद्रोगा नश्यन्ति दन्तिनामचिरात्।
तत्पुष्पैर्मधुराक्तैर्होमाच्च वशीभवन्ति मातङ्गा॥

त्रिमधुरयुतैरानित्यकपत्रैर्मत्ता भवन्ति ते सद्यः।
रक्षाकस्तुकारिणां तज्जापितपञ्चगव्यलेपः स्यात्॥
आज्यतिलराज्यानित्यकदुग्धौदनपञ्चगव्यतण्डुलकैः।
सघृतैश्च प्रत्येकं सहस्रहवनं गजाश्ववर्धनकृत्॥

आनित्यक की समिधा से हवन करने पर शीघ्र ही हाथियों के रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके फूलों में त्रिमधु मिलाकर होम करने से हाथियों का वशीकरण होता है। त्रिमधुयुक्त इसी आनित्यक के पत्रों के द्वारा हवन करने से हाथी पागल हो जाते हैं। वनदुर्गा मन्त्र से अभिमन्त्रित पञ्चगव्य के लेप से हाथियों की रक्षा होती है।

घी द्वारा तथा तिल, राई, आनित्यक समिधा, दुग्ध (भात अथवा खीर) पञ्चगव्य तथा चावल प्रत्येक को पृथक-पृथक घृत युक्त करके एक-एक हजार हवन करने से हाथी घोड़ों की वृद्धि होती है।

॥ राष्ट्रपुरादिरक्षा श्रीवृद्धिकर-प्रयोगः॥

द्विभुजरुहं महान्तं छित्वा निर्भिद्य पञ्चधा भूयः।
आशाक्रमेण पञ्चायुधा विधेयाश्च साधु शिल्पविदा॥
शंखः सनन्दकोऽरिः शार्ङ्गः कौमोदकी दिशां क्रमशः।
पञ्चेति पञ्चगव्ये निधाय जप्याच्च पञ्चसाहस्रम्॥
तावद् घृतेन जुहुयात् तेष्वथ सम्पात्य साधु सम्पातम्।
पुनरपि तावज्जप्तवा मध्याद्यवटेषु पञ्चगव्ययुतम्॥
संस्थाप्य समीकृत्य च बलिं हरेत् तत्र-तत्र तन्मन्त्रैः।
पुरराष्ट्र ग्रामाणां कार्या रक्षैवमेव मन्त्रविदा॥
यस्मिन् देशे विहिता रक्षेयं तत्र वर्धते लक्ष्मीः।
धन धान्य समृद्धिः स्याद्रिपुचोराद्याश्च नैव वाधन्ते॥

एक पलाश वृक्ष जिसका मुख्य तना काफी मोटा हो काटकर फिर उस तने को पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा मध्य भाग से काटकर पाँच खण्ड करे। इसके पश्चात् किसी कुशल शिल्पी द्वारा उसके पूर्व खण्ड से शंख , दक्षिण खण्ड से नन्दन (नामक तलवार), पश्चिम खण्ड से चक्र, उत्तर खण्ड से शार्ङ्ग (नामक धनुष) तथा मध्य खण्ड से कौमोदकी (नामक गदा) इन पाँच विष्णु आयुधों का निर्माण कराये। इन आयुधों को पञ्चगव्य में रखकर साधक वनदुर्गा मन्त्र का पाँच हजार जप करे। इसके बाद इतनी ही संख्या में घी द्वारा हवन करे। हवन करते समय प्रत्येक आहुति के पश्चात् स्रुवा द्वारा घी की बूँदों को इन आयुधों पर गिराता रहे। पाँच हजार आहुतियों द्वारा हवन सम्पूर्ण कर पुनः मन्त्र का पाँच हजार जप करे। तत्पश्चात् विष्णु पञ्जर सिद्ध शंखादि आयुधों के स्व-स्व मन्त्रों का एक-एक हजार जप (आयुधों का ध्यान-पूजनादि करके) करे। फिर साधना स्थल पर ही एक गड्ढा खोदकर उसके चारों ओर चार दिशाओं में चार और गड्ढे खोदकर कौमोदकी को मध्य में तथा शंखादि आयुधों को क्रम से पूर्वादि गड्ढों में पञ्चगव्य सहित रखकर उन्हें मिट्टी से भरकर समतल कर

दे। इसके बाद आयुधों के स्व-स्व मन्त्रों द्वारा उन्हें बलि प्रदान करे। मन्त्रज्ञ साधक को इस प्रकार अपने राष्ट्र, नगर अथवा ग्राम की रक्षा करनी चाहिए। जिस देश में इस प्रकार से रक्षा विधान सम्पन्न किया जाता है वहाँ लक्ष्मी की वृद्धि एवं धन-धान्य की प्रचुरता होती है तथा वह देश चोरों लुटेरों आदि के उपद्रवों से मुक्त रहता है।

।। वशीकरण प्रयोगः।।

पद्मोत्पलकुमुदहुतैर्नृपपत्नी ब्राह्मणान् वशीकुरुते।
कह्लार लवण होमैर्विटशूद्रो जातिभिस्तथा ग्रामम्।।

कमलों के द्वारा हवन करने से राजा, उत्पल द्वारा हवन करने से नृप-पत्नी (रानी), कुमुदों के हवन से ब्राह्मण, कह्लार पुष्पों के हवन से वैश्य, लवण के द्वारा हवन करने से शूद्र तथा जातीपुष्पों के द्वारा हवन करने से पूरा ग्राम (ग्राम के सभी प्राणी) साधक के वशीभूत हो जाते हैं।

साध्याक्षरदर्भितं मनुमिमं पत्रे लिखित्वा च तत्,
चक्रीहस्तमृदा कृतप्रतिकृतेर्विन्यस्य मन्त्री हृदि।
सप्ताहं त्वथ पुत्तलीमभिमुखे संस्थाप्य संध्यात्रये,
जप्यादष्टशतं चिराय वशतां गछत्यसौ निश्चयः।।

साध्य नामाक्षरों द्वारा विदर्भित वन दुर्गा मन्त्र को किसी भोज पत्र पर लिखे। फिर कुम्भकार के हाथ द्वारा लाई गई मिट्टी से साध्य की पुतली बनाकर उसके हृदय में इस मन्त्र लिखित पत्र को रखकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करे। इसके बाद इस पुतली को अपने सामने स्थापित कर एक सप्ताह तक तीनों संध्याओं में एक सौ आठ बार वन दुर्गा-मन्त्र का जप करें। इस प्रयोग द्वारा साध्य चिरकाल तक निश्चित रूप से साधक के वशीभूत रहता है।

।। सर्वसिद्धकर-प्रयोगः।।

चक्रशंखगदाम्भोज हस्तं सञ्चिन्तयेच्छुभम्।
रवि बिम्बे मुकुन्दं च मनुं व्यत्यस्तलिङ्गकम्।
प्रजपेच्चाथ पुरुषभगवत्पदयोरथ।
सर्वसिद्धिकरः प्रोक्तः प्रकारोऽयं सुमन्त्रिभिः।।

सूर्य-बिम्ब में, चक्र, शंख, गदा तथा पदम् हाथों में धारण किये हुए चतुर्भुज श्री विष्णु का ध्यान करे। वन दुर्गा-मन्त्र में 'पुरुषि' के स्थान पर 'पुरुष' तथा 'भगवति' के स्थान पर 'भगवन्' शब्द का प्रयोग करते हुए "उत्तिष्ठ पुरुष किं स्वपिषि भयं में समुपस्थितम्। यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवन् शमय स्वाहा" रूप से मन्त्र का जप करे। इस प्रकार से मन्त्र जप करना श्रेष्ठ मन्त्रज्ञों द्वारा सर्वसिद्धिकर कहा गया है।

।। सद्यः श्री प्राप्ति प्रयोगः।।

ब्रीहीणां जुहुयान्नरोऽष्टशतकं संवत्सरात् ब्रीहिमान्,
गोदुग्धैः पशुमान् घृतैः कनकवान् दध्ना च सर्वर्द्धिमान्।
अन्नैरन्नसमृद्धिमांश्च मधुभिः स्याद्रत्नवान् दूर्वया -

ऽप्यायुष्मान् प्रतिपङ्कजेन महतीं सद्यः श्रियं प्राप्नुयात्॥

एक वर्ष तक प्रतिदिन व्रीहि (चावल) के द्वारा वन दुर्गा मन्त्रोच्चार सहित एक सौ आठ बार हवन करने से साधक व्रीहिवान, गाय के दूध से हवन करने पर पशु -सम्पदा का स्वामी, घी के हवन से स्वर्ण सम्पत्ति वाला, दही के हवन से समस्त ऋद्धियों से युक्त, अन्न से हवन करने पर अन्न भण्डारों का स्वामी, मधु के हवन द्वारा अनेक रत्नों का स्वामी, दूर्वा के हवन से दीर्घ-जीवी तथा कमल के हवन (प्रति आहुति एक-एक कमल) द्वारा शीघ्र ही सर्वसम्पत्तिशाली (ऐश्वर्यवान) हो जाता है।

॥ शत्रु-सैन्य-विनाश-प्रयोगः॥

श्वेतगुञ्जाः समानीय कुडवप्रमिताः शुभाः।
एतन्मन्त्रसुजप्ताश्च विकिरेच्छत्रुसैन्यके॥
स्वयं मन्त्री सुगुप्तः सन् तेनासौ वैरिणश्चमूः।
ज्वरादिकैः महारोगैः पीडिता स्यान्मृताचिरात्॥
सेनाधिपतिमुख्यानां परस्परविरोधतः
एतदुपद्रवैनानाविधिनाशं प्रयाति च॥

एक कुडव की मात्रा में श्वेत गुञ्जा लाकर उसे वन दुर्गा मन्त्र द्वारा (दस हजार) बार अभिमन्त्रित करके जप-कर्ता गुप्त रूप से शत्रु सेना के मध्य बिखेर दे। इससे शत्रुसेना ज्वरादि महारोगों से पीड़ित होकर, सेनापतियों में परस्पर विरोध होने से तथा अन्य अनेक प्रकार के उत्पन्न उपद्रवों के कारण शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी।

॥ वन दुर्गा - यन्त्रोद्धारः॥

तारे शक्तिः ससाध्यां लिखतु रविदले मध्यतः पत्रमूले,
मर्दिन्या वर्णयुग्मं दलमनु विलिखेद्वह्निशो मूलवर्णान्।
अन्त्ये चान्त्येकबीज बहिरथ लिपिभिर्भूपुर द्वन्द्वसंस्थम्,
दुर्गाया यन्त्रमेतद्युवतितनयदं सर्वरक्षाकरं स्यात्।
सर्वसम्पत्करं नृणां सर्वसौभाग्यपुष्टिदम्। राज्यलक्ष्मीविहीनानां भूपतीनां च राज्यदम्॥
आमयग्रस्तनृणां च रोगशान्तिकरं परम्। जपहोमादिसंपातसाधितं यत्नमुत्तमम्॥
प्रोक्तं च वनदुर्गायाः सर्वदं नात्र संशयः॥

द्वादश दल कमल की रचना करके उसके मध्य में 'ॐ' लिखें। 'ॐ' के उदर में शक्ति 'ह्रीं' तथा इसके मध्य में साध्य नाम लिखें। महिष मर्दिनि के अष्टाक्षर मन्त्र (महिष मर्दिनि स्वाहा) की तीन आवृत्ति करके इसके दो-दो वर्णों को प्रत्येक केसरों में लिखें। मूल वनदुर्गा मन्त्र के तीन-तीन वर्णो को प्रत्येक दल में लिखकर अन्तिम वर्ण को अन्तिम दल में ही लिखें। इसके बाद द्वादश दल कमल के बाहर दो वृत्त बनाकर वृत्त के अन्तराल वीथिका में मातृका के प्रत्येक अक्षर को बिन्दु सहित लिखे। वृत्तों के बाहर दो चतुरस्रों से सम्पुटित अष्टकोण बनाये।

वनदुर्गा का यह यन्त्र युवतियों को पुत्र-प्रदान करने वाला, सर्वप्रकार से रक्षा

करने वाला तथा मनुष्यों को सर्वसौभाग्य, सर्वसम्पत्ति तथा पुष्टि प्रदान करने वाला है। राज्य-लक्ष्मी से रहित राजाओं को पुनः उसकी (राज्य) प्राप्ति कराने वाला है। रोग से पीड़ित मनुष्यों के रोगों को शान्ति करने वाला है। निःसन्देह वन दुर्गा का यह परम श्रेष्ठ यन्त्र सब कुछ प्रदान करने वाला है।

वन दुर्गा का बीज मंत्र 'दुं' है। इसके ऋषि कश्यप, छन्द गायत्री तथा देवता श्री दुर्गा हैं। षड् दीर्घ स्वरों से युक्त सविसर्ग बीज (दाः, दीः, दूः इत्यादि) द्वारा षडङ्ग न्यास करे। अष्टदल कमल में दूर्वा के समान श्याम वर्णी, त्रिनेत्रा शूल, बाण, चक्र शंख, खड्ग, खेटक, धनुष तथा कपाल (दक्षिण हाथों में ऊपर से नीचे तथा वाम हाथों में नीचे से ऊपर क्रम से) धारिणी अष्ट भुजा वन दुर्गा का ध्यान करके एक लाख जप करे। दशांश होम पूजादि वन दुर्गा की भांति करे। घी द्वारा होम करे, प्रत्येक आहुति के पश्चात् स्रुवा द्वारा घी की बूँदों को यन्त्र पर गिरायें। इस प्रकार यन्त्र को सिद्ध करें।

।। वन दुर्गायाः स्तोत्रम्।।

यत्कर्मधर्म निलयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः यज्ञादिपुण्यमखिलं सकलं त्वयैव।
त्वं चेतना यत इति प्रविचार्य चित्ते नित्यं त्वदीयचरणौ शरणं प्रपद्ये।।१।।
पाथोऽधिनाथतनयापतिरेष शेषपर्यङ्कलालितवपुः पुरुषः पुराणः।
त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब सोऽपि व्याघूर्णमाननयनः शयनं चकार।।२।।
तत् कौतुकं जननि यस्य जनार्दनस्य कर्णप्रसूतमलजौ मधुकैटभाख्यौ।
तस्यापि यौ न भवतः सुलभौ निहन्तुं त्वन्मायया कवलितौ विलयं गतौ तौ।।३।।
यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरं च।
यल्लोकशोकजननव्रतबद्धहार्द तल्लीलयैव दलितं गिरिजे भवत्या।।४।।
यो धूम्रलोचनइति प्रथितः पृथिव्यां भस्मीबभूव स रणे तव हुंकृतेन।
सर्वासुरक्षयकरे गिरिराजकन्ये मन्ये स्वमन्युदहने कृत एष होमः।।५।।
केषामपि त्रिदशनायकपूर्वकाणां हन्तुं न जातु सुलभाविति चण्डमुण्डौ।
तौ दुर्मदौ सपदि चाम्बरतुल्यमूर्तेर्मातस्तवासिकुलिशात् पतितौ विशीर्णौ।।६।।
दौत्येन ते शिव इति प्रथित प्रभावो देवोऽपि दानवपतेः सदनं जगाम।
भूयोऽपि तस्य चरितं प्रथयांचकार सा त्वं प्रसीद शिवदूति विजृम्भितेन।।७।।
चित्रं तदेतदमरैरपि ये न जेयाः शस्त्राभिघातपतितादुधिरादपर्णे।
भूमौ वभूवुरमिताः प्रतिरक्त बीजास्तेऽपि त्वयैव गगने गिलिताः समस्ताः।।८।।
आश्चर्यमेतदतुलं यद्भूत् सुरारी त्रैलोक्यवैभव विलुण्ठनहृष्टपाणी।
शस्त्रैर्निहत्य भुवि शुम्भनिशुम्भसंज्ञौ नीतौ त्वया जननि तावपि नाकलोकम्।।९।।
त्वत्तेजसि प्रलयकालहुताशनेऽस्मितस्मिन् प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः।
तस्मिन्निपत्य शलभा इव दानवेन्द्रा भस्मीभवन्ति हि भवानि किमत्र चित्रम्।।१०।।
तत्किं गृणामि भवतीं भवतीव्रतापनिर्वापणप्रणयिनीं प्रणमज्जनेषु।
तत्किं गृणामि भवतीं भवतीव्रतापसंवर्द्धनप्रणयिनीं विपदि स्थितेषु।।११।।

वामे करे तदितरे च तथोपरिष्टात् पात्रं सुधारसयुतं वरमातुलुङ्गम्।
खेटं गदां च दधतीं भवतीं भवानि ध्यायन्ति येऽरुणनिभां कृतिनस्त एव।।१२।।
यद्वारुणात् परमिदं यदि मानवस्ते बीजं स्मरेदनुदिनं दहनाधिरुढम्।
मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दुबिन्दुनादैरमन्दमिह राज्यभसौ भुनक्ति।।१३।।
आवाहनं यजनवर्णनमग्नि होत्रं कर्मार्पणं तव विसर्जनमत्र देवि।
मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं मातः क्षमस्व वरदे बहिरन्तरस्थे।।१४।।
अन्तः स्थिताप्यखिलजन्तुषु जन्तुरूपा विद्योतसे बहिरिवाखिलविश्वरूपा।
का भूरिशब्दरचना वचनाधिका सा दीनं जनं जननि मामव निष्प्रपञ्चम्।।१५।।

।। फल श्रुति।।

एतत् पठेदनुदिनं दनुजान्तकारि चण्डीचरित्रमतुलं भुवि यस्त्रिकालम्।
श्रीमान् सुखी च विजयी सुभगः कृती स्यात् त्यागी चिरन्तनवपुः कविचक्रवर्त्ती।।१६।।
श्री सिद्धनाथापरनामधेयः श्री शम्भुनाथो भुवनैकनाथः।
तस्य प्रसादात् सकलागमश्रीः पृथ्वीधरस्तोत्रमिदं चकार।।१७।।

।। इति वन दुर्गा प्रयोगः।।

मन्त्र-सञ्जीवनी-विद्या

(मन्त्र-जागृति हेतु)

कोई भी मन्त्र-यन्त्र जप-पूजन के पश्चात् उसी समय ही शीघ्र फलप्रद होते हैं जब वे जागृत (चैतन्य) हों। चैतन्यता विहीन मन्त्र-यन्त्र प्रायः फलदायी नहीं होते और यदि फलप्रद होते भी हैं तो अत्याधिक विलम्ब के पश्चात् ही। अतः किसी भी मन्त्र-यन्त्र का जप-पूजन करने से पूर्व उसे जाग्रत कर लेना साधक के लिए श्रेयस्कर होता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए साधकों के हितार्थ मन्त्र-यन्त्र को जागृति करने के लिए 'मृत-सञ्जीवनी मन्त्र विद्या' का प्रयोग नीचे दिया जा रहा है। इस मन्त्र-विद्या का प्रयोग (जप-पाठ) साधक को मन्त्र-यन्त्र के जप-पूजन के पूर्व तथा पश्चात् में सात-सात बार करना चाहिए।

विनियोग - **ॐ अस्याः मन्त्र सञ्जीवनी विद्यायाः श्री सदाशिव ऋषिः, गायत्री छन्दः, पराशक्तिर्देवता, हं बीजं, सौ शक्तिः, हं कीलकं श्री पराशक्ति-प्रीतये सर्व मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र सञ्जीवनार्थे च जपे-पाठे विनियोगः।**

ऋष्यादि न्यासः

ॐ श्री सदाशिव ऋषये नमः	(शिरसि)
गायत्री छन्दसे नमः	(मुखे)
श्री पराशक्तिर्देवतायै नमः	(हृदि)
हं बीजाय नमः	(गुह्ये)
सौ शक्तये नमः	(पादयोः)
हं कीलकाय नमः	(नाभौ)
श्री पराशक्तिर्देवता प्रीतये सर्व मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र सञ्जीवनार्थे च जपे-पाठे विनियोगाय नमः	(सर्वाङ्गे)।

कर-षडङ्ग-न्यासः

ॐ हंसां	**अंगुष्ठाभ्यां नमः**	**हृदयाय नमः**
ॐ हंसीं	**तर्जनीभ्यां स्वाहा**	**शिरसे स्वाहा**
ॐ हंसूं	**मध्यमाभ्यां वषट्**	**शिखायै वषट्**
ॐ हंसैं	**अनामिकाभ्यां हुं**	**कवचाय हुम्**
ॐ हंसौं	**कनिष्ठाभ्यां वौषट्**	**नेत्रत्रयाय वौषट्**
ॐ हंसः	**करतलकर पृष्ठाभ्यां फट्**	**अस्त्राय फट्**

॥ ध्यानम् ॥

ॐ नमो भगवति मंत्रमातृके अक्षमालिके सर्वदा स्फुरसि सर्वहृदि वससि नमस्ते परारूपे। नमस्ते पश्यंती रूपे। नमस्ते मध्यमारूपे। नमस्ते वैखरी रूपे। सर्व तत्वात्मिके। सर्व शक्त्यात्मिके। सर्व मन्त्र शाप विमोचनि। सर्व मंत्र संजीवनि। सर्व देवतात्मिके भगवति मंत्रमातृके अक्षमालिके नमस्ते नमस्ते नमस्ते।

ध्यानम् के पश्चात् मानसोपचार पूजन करें। यथा-

ॐ कनिष्ठाभ्यां लं पृथिवी तत्वात्मक गन्धं समर्पयामि श्री पराशक्तिर्देवताभ्यो नमः।
ॐ अंगुष्ठाभ्यां हं आकाश तत्वात्मक पुष्पं समर्पयामि श्री पराशक्तिर्देवताभ्यो नमः।
ॐ तर्जनीभ्यां यं वायु तत्वात्मक धूपं आघ्रापयामि श्री पराशक्तिर्देवताभ्यो नमः।
ॐ मध्यमाभ्यां रं तेज (अग्नि) तत्वात्मक दीपं दर्शयामि श्री पराशक्तिर्देवताभ्यो नमः।
ॐ अनामिकाभ्यां वं जल(अमृत) तत्वात्मक नैवेद्यं निवेदयामि श्री पराशक्तिर्देवताभ्यो नमः।
ॐ सर्वाङ्गुलिभिः शं शक्तयात्मक ताम्बूलं समर्पयामि श्री पराशक्तिर्देवताभ्यो नमः।
ॐ अञ्जलिना सं सर्वमन्त्रात्मकं पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि श्री पराशक्तिर्देवताभ्यो नमः।

मन्त्रः

ॐ ह्रीं श्रीं ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ अं आं इं ईं ह्रीं ह्रैं ह्रीं जूं सः सर्वमंत्रान् संजीवय-संजीवय स्वाहा। ॐ ह्रीं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ उं ऊं ऋं ॠं सर्वमंत्र यंत्राणां संजीवनं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ लृं लॄं ॐ ह्रीं हंसः सोहं रं रं रं सर्व मंत्रान् संजीवय संजीवय कुरु कुरु स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ एं ऐं ॐ ह्रीं रं रं रं सर्वमंत्राक्षराणां उत्कीलय उत्कीलय स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः ओं औं अं अः ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं ह्रीं सर्व मंत्र यंत्र तंत्रादीनां संजीवय संजीवय रं रं रं ठः ठः ठः सर्व मंत्र संजीवन कुरु कुरु स्वाहा।। ॐ त्वया बद्धा सर्व देवा भ्रमंति निज कर्मणा। सा तुष्टा सर्व मंत्राणां अमृता सिद्धि दायिनी।। ॐ मंत्र संजीवनी विद्या वसिष्ठेन च साश्रिता। सिद्धिदा सर्व मंत्राणां सदाशिव प्रसादतः।। जपादौ बा पाठादौ वा जपान्ते वा पाठान्ते। सप्तवारं पठित्वा तु शीघ्रं सिद्धिं लभेन्नरः।।

उपरोक्त मंत्र जप के बाद पुनः ऋष्यादि-न्यास तथा ध्यान के पश्चात् 'लं' इत्यादि से मानसोपचार पूजन करें। इसके बाद करणीय मंत्र-यंत्र-तंत्रादि का जप-पूजन करें।

साधक की अनंत यात्रा

‘कुल मार्तण्ड’ मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

।।१।।
मैं अनन्त यात्रा का राही
क्या यात्रा वृत्तांत बताऊं?
मेरी कथा कथा है जग की
किसकी किसकी कथा सुनाऊं।।

।।२।।
मेरी यात्रा शुरू हुई थी,
जग ने जब आँखें थी खोली।
बीत गये कितने मन्वन्तर
चलते चलते लेकर झोली।।

।।३।।
लाखों राही मिले राह में
लेकिन मिला न कोई साथी।
चला चली की गहमा गहमी
चले जा रहे सब एकाकी।।

।।४।।
मिलते और बिछुड़ते सबसे
आगे बढ़ता रहा अकेला।
हर पड़ाव पर हुआ तमाशा,
सारी राह लगा था मेला।।

।।५।।
फूलों की घाटी से गुजरा
मधुप वृन्द का सुनते गुंजन।
श्मशानों से होकर निकला
करती जहां शिवायें क्रन्दन।।

।।६।।
लू के लाखों सहे थपेड़े,
पुरवैया की सुनी रागिनी।
कभी माघ की ठिठुरन झेली
देखी शरद् की शुभ्र चांदनी।।

।।७।।
पैरों से था बंधा सनीचर
मन उड़ता था आसमान में।
कड़ुवे फल मीठे लगते थे,
स्वाद सुधा का गरल पान में।।

।।८।।
हर फल खाने की लालच थी,
कली-कली के लिये चाव था।
घाट घाट का पानी पीकर
चल देना मेरा स्वभाव था।।

।।९।।
लेकिन प्यास नहीं बुझती थी
तृप्ति नहीं थी फल खाने से।
भोर हुई तो रात के साथी
चल देते थे बेगाने से।।

।।१०।।
सुख था, दुःख था, विरह मिलन था
कभी हास था कभी रुदन।
पर्वत चढ़ने की राहों में,
कदम कदम पर थी फिसलन।।

।।११।।
कितनी बार गिरा पर्वत से
घायल लहू लुहान हो गया।
पड़े पड़े गहरे गर्तों में
सुध बुध खो बेजान हो गया।।

।।१२।।
लेकिन कभी न हिम्मत हारी
चलने का उत्साह न टूटा।
हर ठोकर के साथ हृदय में,
नये जोश का झरना फूटा।।

॥१३॥

दुर्गम पथ की हर एक ठोकर
चलने का अंदाज सिखाती।
अंधियारी काले मेघों की
बिजली बनकर राह दिखाती।

॥१४॥

ढूंढ रहा क्या, ज्ञात नहीं कुछ
जाना कहां है मंजिल क्या है?
इस यात्रा का अन्त कहां है,
इस मेहनत का हासिल क्या है?

॥१५॥

मैं था लक्ष्यहीन सैलानी,
पथ का भी कुछ ज्ञान नहीं था।
सफर नहीं भटकाव मात्र है
इसका भी कुछ भान नहीं था॥

॥१६॥

हर पड़ाव लगता था मंजिल,
हर मंजिल पर इक पड़ाव था।
जो पथ जितना सीधा लगता,
उसमें उतना ही घुमाव था॥

॥१७॥

राहें भूल भुलैया थीं सब
घूम घूम कर वहीं पे भटका।
हाथों में था अमृत-घट, पर
बूंद-बूंद पानी को तरसा॥

॥१८॥

चलता, आखिर कितना चलता
अंत नहीं था वर्तुल पथ का।
जीना, मरना, नया जन्म फिर,
घूम रहा था पहिया रथ का॥

॥१९॥

नश्वरता में वीज निहित हैं,
नये जन्म के, नई सृष्टि के।
ज्येष्ठ और वैशाख हेतु हैं,
प्राणदायिनी सलिल वृष्टि के॥

॥२०॥

इसी एक विश्वास ने हरदम
पग पग मुझको दिया सहारा
आ पहुंचा इक नई जगह पर
गिरता पड़ता मैं बेचारा॥

॥२१॥

उस पड़ाव पर भीड़ बहुत थी
चारों ओर लगा था मेला।
तरह तरह की सजी दुकानें
मचा हुआ था ठेलम ठेला॥

॥२२॥

'ब्रह्म ज्ञान' की 'सेल' लगी थी
शिविर लगे थे राज योग के।
कई दुकानें तंत्र-मंत्र की,
कई अखाड़े भक्ति-योग के॥

॥२३॥

"सिद्ध गुरू" बनकर बैठे थे
माला मुंदरी के व्यापारी।
दीक्षाओं की हाट सजाकर
मंत्र बेचते मिले मदारी॥

॥२४॥

जन-श्रद्धा को लूट रहे थे,
वे मायावी, ठग, पाखंडी।
'कारोबारी गुर' है जिनका
कचरा माल, सुनहरी हंडी॥

॥२५॥

मैं ही आकुल नहीं वहां था,
लाखों प्यासे घूम रहे थे।
जिस दुकान पर भीड़ अधिक थी
सभी उसी पर टूट रहे थे॥

॥२६॥

भागा अपनी जान बचाकर
मेले से कर लिया किनारा।
कुछ अधसोई सी हालत में,
देखा मैंने अजब नजारा॥

।।२७।।
दूर पहाड़ी की चोटी पर,
दिखता कोई महानगर है,
परकोटे से घिरे नगर में,
ऊंचा एक महल सुन्दर है।।
।।२८।।
वह पड़ाव है, अथवा मंजिल,
वहां पंहुचने पर क्या होगा?
इतिश्री होगी यात्रा की, या
अथ श्री नये सफर का होगा?
।।२९।।
जाने को उस महानगर तक
दिखते यहां मार्ग बहुतेरे।।
कुछ गलियारे कच्चे अनगढ
कुछ विस्तृत पथ, वृक्ष घनेरे।।
।।३०।।
कौन बताये सही रास्ता
किस पथ में कितना घुमाव है?
कितना संकट, कितनी जोखिम,
कितनी फिसलन है, चढाव है?
।।३१।।
किस पथ चलूं यही थी दुविधा
या फिर अपनी राह बनाऊं?
इतनी विपदा झेल चुका हूँ,
क्या जोखिम इक और उठाऊं?
।।३२।।
कुछ प्रकाश की किरणें फूटीं
छंटा तनिक सुरमई अंधेरा।
क्षण भर को आभास हुआ यूं
होने को है नया सवेरा।।
।।३३।।
दीपक लेकर राह दिखाने
चौराहे पर खड़ा कौन है?
देख रहा है निर्निमेष वह
करुण दृष्टि है, गिरा मौन है।
।।३४।।
इस निर्जन बीहड़ पडाव पर
दिखता केवल वही सहारा।
भटका राही समझ मुझे जो
आने का कर रहा इशारा।।
।।३५।।
सोचा, चरण वन्दना कर लूं
उस करुणामय शिव स्वरूप के
शायद भाग्य देवता जागें,
दर्शन कर उस ब्रह्म रूप के।।
।।३६।।
मन कहता था, आगे बढ़ चल,
लेकिन कदम न आगे बढ़ते।
हाथ जुड़े वन्दन-मुद्रा में,
प्रेम अश्रु आंखों से झरते।।
।।३७।।
मुझे देख हैरान, चकित वे
स्वयं ही मेरे पास आ गये।
उनके पावन दर्शन पाकर
जन्म जन्म के कष्ट मिट गये।।
।।३८।।
श्री चरणों पर लेट गया मैं,
आंसू से उनके पग धोये।
रोते रोते बंध गई हिचकी
पड़ा हुआ था सुध बुध खोये।।
।।३९।।
मुझे उठाया, आंसूं पोंछे
करुण दृष्टि से मुझे निहारा
स्वाती जल पाया चातक ने,
'उठो वत्स' कह दिया सहारा।।
।।४०।।
मिली दृष्टि से दृष्टि अचानक
कौंध गई बिजली की रेखा
पूनम से थी मिली अमावस,
ग्रहण राहु को लगते देखा।।

।।४१।।

नस नस में दौड़ी थी बिजली
लावा सा कुछ फूट रहा था।
अष्ट पाश का सारा बंधन,
एक-एक कर टूट रहा था।।

।।४२।।

धू-धू कर मैं खुद ही जलकर
अपनी धूनी ताप रहा था।
बरस रहा था आग से अमृत
सुधा वृष्टि से कांप रहा था।।

।।४३।।

अंगारे चन्दनवत शीतल
आलम था कुछ मदहोशी का।
कर्ण विवर में गूंज रहा था
प्रणव नाद बस खामोशी का।।

।।४४।।

दिव्य ज्योति जल उठी हृदय में,
मुक्त हुआ जगदाकर्षण से।
ज्ञान-चक्षु उन्मीलित हो गये
सत्य सूर्य के शुभ दर्शन से।।

।।४५।।

जाना, मैंने खुद को, जग को
जाना मुझे कहां है जाना।
क्यों कर यात्रा शुरू हुई थी,
अब तक क्यों भटका अनजाना।।

।।४६।।

यह जग लीला लीलाधर की
मैं सहचर उस लीलाधर का।
नचा रहा है, नाच रहा है,
खुद ही वेश बना सहचर का।।

।।४७।।

रंगमंच की चकाचौंध से
भूल गया अपना स्वरूप मैं।
स्वांग रचाकर लगा मुखौटे
लगा नाचने हो कुरूप मैं।।

।।४८।।

फेंक मुखौटे और लबादे
बहुरुपिया का स्वांग छोड़कर
अपना आत्म-रूप है पाना
यायावरी का जाल तोड़कर।।

।।४९।।

उस नगरी के दिव्य महल में
लीलाधर जो सूत्रधार है।
दीप शिखा वह, दीप किरण मैं,
मैं हूँ मन तो वह विचार है।

।।५०।।

वह है केन्द्र बिन्दु तो मैं हूं
यायावर विस्तार परिधि का।
वह प्रशान्त सागर अनन्त है
मैं चंचल सीकर वारिधि का।।

।।५१।।

सीकर सीकर से सागर है,
सागर है वैभव सीकर का।
तत्त्व दृष्टि से एक हैं दोनों
अन्तर है बाहर भीतर का।।

।।५२।।

वह घर केवल नहीं उसी का
चिर परिचित मेरा भी घर है।
शुरू हुआ था सफर जहां से,
जाना माना वही नगर है।

।।५३।।

रोक न पावोगे लीलाधर
अपने घर तक अब आने से।
लुका छिपी का खेल छोड़ दो
बाज आओ अब बहकाने से।।

।।५४।।

बांह पकड़ कर पथ दर्शक ने
मुझको मेरी राह दिखा दी।
दुर्गम फिसलन भरी राह पर
चलने की तरकीब सिखा दी।।

।।५५।।

फिसलन से सब नीचे गिरते
पर मैं नहीं फिसलने वाला।
यह फिसलन है सीढ़ी मेरी,
फिसलन से मैं चढ़ने वाला।।[1]

।।५६।।

अब मैं नहीं भटकने वाला
देख लिया अपना घर मैंने
बीती रात, प्रभात हो गया,
छंट गये सभी रात के सपने।।

।।५७।।

मृग-मरीचिका शेष नहीं अब
मरु-जल का भ्रम टूट चुका है।
मरु-स्थल से जो लगाव था,
वह लगाव अब छूट चुका है।।

।।५८।।

मुझे ज्ञात है यहां से घर तक
मुझको छत्तीस द्वार मिलेंगे।
चौदह पर्वत, महानगर नौ,
राह में सागर चार पड़ेंगे।।

।।५९।।

पर्वत, सागर, नदियों का अब
नहीं है डर वापस आने में।
लाखों युगों की लम्बी यात्रा
करनी है तय इसी जनम में।।

।।६०।।

पैदल यात्री रहा नहीं मैं,
हंस देव ने पंख दिये हैं।
अन्धकार में राह ढूंढ लें
मुझको ऐसे नयन मिले हैं।।

।।६१।।

यात्रा का अवसान निकट है,
पल दो पल की राह बची है
मिलकर दोनों एक बनेंगे
अटल सत्य है, तथ्य यही है।।

।।६२।।

बिन्दु अगर तुम, मैं हूं रेखा
फर्क नहीं कुछ हम दोनों में।
रेखा मिटकर बिन्दु बनेगी
शेष बचेगा क्या कोणों में।।

।।६३।।

आश्विन शुक्ल अष्टमी, संवत
राम-बाण[2] की महा निशा में।।
जो देखा था वहीं लिखा है,
शुद्ध सतोमय मनोदशा में।।

।।६४।।

स्वप्न विचारें जो हैं पण्डित
है यथार्थ या मन की छलना।
मैं गृहस्थ साधारण-जन हूं
मुझको राम नाम है भजना।।

---

१. यैरेव पतनं द्रव्यैः सिद्धिस्तैरेव चोदिता।
श्रीकौल दर्शने चापि, भैरवेण महात्मना।। कुलार्णव तंत्र ५/४८

२. राम-३। बाण-५।
संवत् २०५३।
अभिषेक तिथि

प्रकाशित ग्रन्थ

१. स्वच्छन्द-पद्धति	पं० मधुसूदन प्रसाद शुक्ल
२. श्री सूक्त-विधानम्	पं० मधुसूदन प्रसाद शुक्ल
३. वैदिक कामनासिद्धि	पं० उमाकान्त द्विवेदी
४. सांख्यायन-तन्त्रम्	स्वामी शत्रुघ्न दास
५. दारिद्रयध्वंसिनी-प्रयोग	पं० मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

आगामी प्रकाश्य ग्रन्थ

१. षट्-कर्म दीपिका	स्वामी शत्रुघ्न दास
२. वृहन्नील-तन्त्रम्	स्वामी शत्रुघ्न दास
३. श्री बगला ब्रह्मास्त्र कल्पः	स्वामी शत्रुघ्न दास
४. श्री लक्ष्मी-प्रत्यंगिरार्चनम्	विकास थपलियाल
५. शत्रुध्वंसिनी-प्रयोग	विकास थपलियाल
६. फेत्कारिणी-तन्त्र	स्वामी शत्रुघ्न दास
७. महाविद्या पाठ-प्रयोग	विकास थपलियाल

* * *

सप्तशती तन्त्रसार

संकलन एवं लेखक

कुल साधक - राजीव श्रीवास्तव

लेखक ने अपने दीर्घकालीन अनुभवों, साधनाओं एवं अनेक सिद्ध महात्माओं के द्वारा अर्जित ज्ञान के आधार पर इस पुस्तक में दुर्गा सप्तशती के मंत्रों से सम्बन्धित अनेकों दुर्लभ एवं अप्राप्य (षट्-कर्म) प्रयोग दिए गये हैं। पुस्तक अति उपयोगी है।

* * *

अनुष्ठान-संदर्शकम्

सम्पादक — लेखक एवं सकलन

कुल मार्तण्ड पं0 मधुसूदन प्रसाद शुक्ल — **विकास थपलियाल 'शिवम'**

प्रस्तुत ग्रन्थ अनेकों वर्षो के अध्ययन एवं अनुभव का प्रसाद है। विभिन्न शास्त्रीय एवं वैदिक प्रमाणों के आधार पर इस ग्रन्थ में गौरि गणेश, कलश, मातृका नवग्रह, सर्वतोभद्र, लिंगतोभद्र, वास्तु, योगिनी, क्षेत्रपाल, विष्णु, शिव दुर्गादि देवताओं का पूजन, हर गौरिमण्डल स्तम्भ पूजन, प्रवजा पूजनादि का विधिवत प्रमाणिक अर्चन विधान (विस्तृत एवं संक्षिप्त दोनो प्रकार) संक्षेप तथा विस्तार द्विविध पुण्याहवाचन श्रीमद्-भागवत, शतचण्डी पूजनादि, हवन, तर्पण, मार्जनादि का विधिवत स्पष्टीकरण आदि-आदि अनेक अनुष्ठान सम्बन्धित विषयों का सरल रूप में निरुपण किया गया है। लेखक का यह प्रयास सत्य ही गागर में सागर भरने के समान है।

* * *

हमारे अन्य उपयोगी प्रकाशित ग्रन्थ

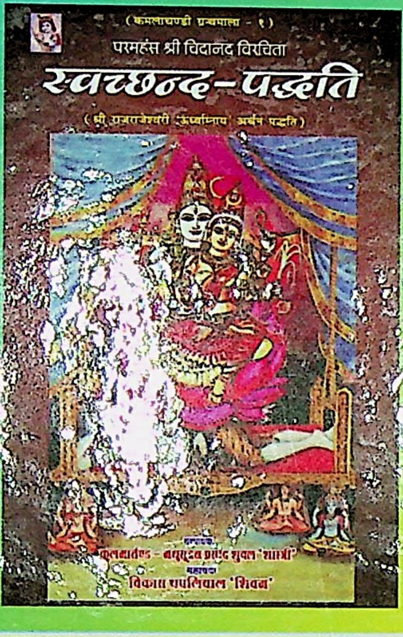
(कमलाचण्डी ग्रन्थमाला - १)
परमहंस श्री चिदानद विरचिता
स्वच्छन्द-पद्धति
(श्री उग्रराजेश्वरी 'ऊर्ध्वाम्नाय' अर्चन पद्धति)
कुलमार्तण्ड - मधुसूदन प्रसाद शुक्ल 'शास्त्री'
विकास पपनियाल 'शिवम'

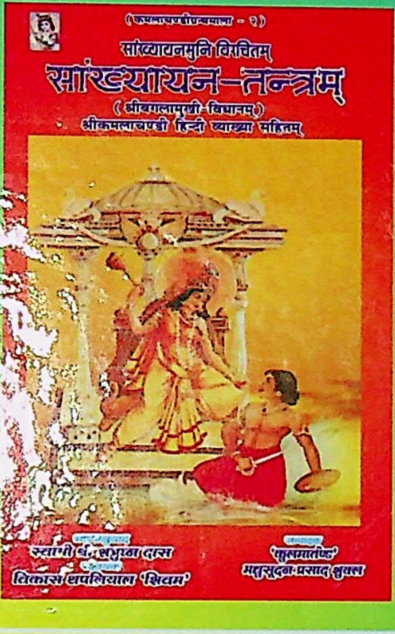
(कमलाचण्डीग्रन्थमाला - २)
सांख्यायनमुनि विरचितम्
सांख्यायन-तन्त्रम्
(श्रीबगलामुखी-विधानम्)
श्रीकमलाचण्डी हिन्दी व्याख्या सहितम्
स्वामी [illegible] दास
विकास पपनियाल 'शिवम'
'कुलमार्तण्ड'
मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

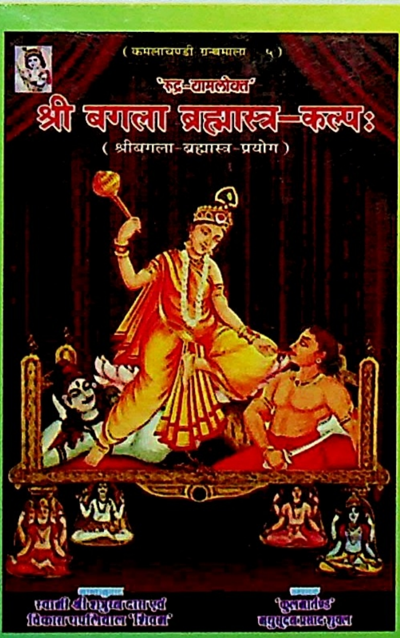
(कमलाचण्डी ग्रन्थमाला - ५)
'रुद्र-यामलोक्त'
श्री बगला ब्रह्मास्त्र-कल्पः
(श्रीबगला-ब्रह्मास्त्र-प्रयोग)
स्वामी [illegible] एवं
विकास पपनियाल 'शिवम'
'कुलमार्तण्ड'
मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

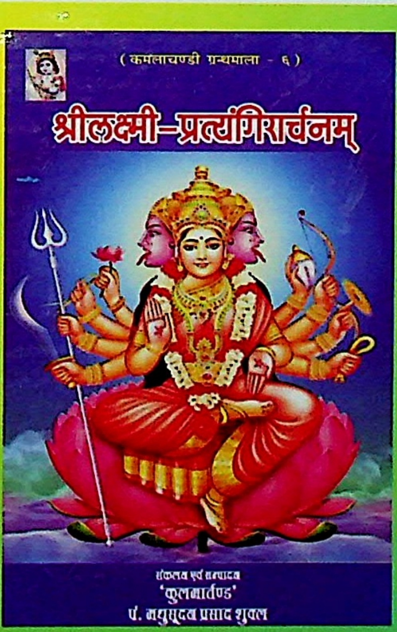
(कमलाचण्डी ग्रन्थमाला - ६)
श्रीलक्ष्मी-प्रत्यंगिरार्चनम्
संकलन एवं सम्पादक
'कुलमार्तण्ड'
पं. मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

श्री मधुसूदन प्रकाशन
पो०ओ० जाखचौरा,
टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)
दूरध्वनि : 9760219141, 9997979276

हमारे अन्य उपयोगी प्रकाशित ग्रन्थ

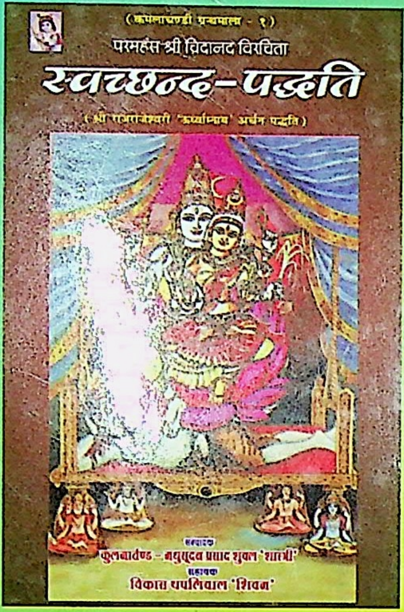
(कमलाचण्डी ग्रन्थमाला - १)
परमहंस श्री चिदानद विरचिता
स्वच्छन्द-पद्धति
(श्री राजराजेश्वरी 'ऊर्ध्वाम्नाय' अर्चन पद्धति)
कुलमार्तण्ड - मधुसूदन प्रसाद शुक्ल 'शास्त्री'
विकास थपलियाल 'शिवम'

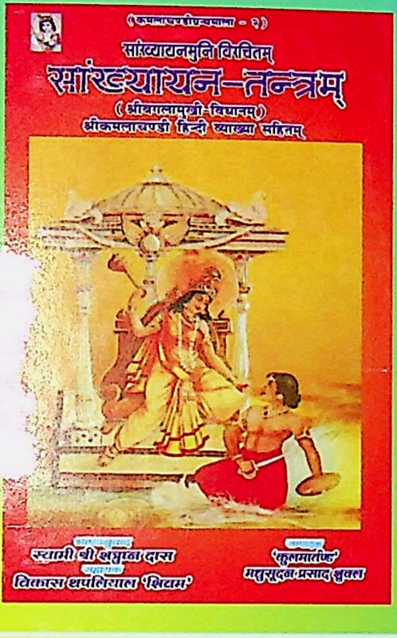
(कमलाचण्डीग्रन्थमाला - २)
सांख्यायनमुनि विरचितम्
सांख्यायन-तन्त्रम्
(श्रीबगलामुखी-विधानम्)
श्रीकमलाचण्डी हिन्दी व्याख्या सहितम्
स्वामी श्री शत्रुघ्न दास
विकास थपलियाल 'शिवम'
'कुलमार्तण्ड'
मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

(कमलाचण्डी ग्रन्थमाला - ५)
'रुद्र-यामलोक्त'
श्री बगला ब्रह्मास्त्र-कल्पः
(श्रीबगला-ब्रह्मास्त्र-प्रयोग)
स्वामी श्री शत्रुघ्न दास एवं
विकास थपलियाल 'शिवम'
'कुलमार्तण्ड'
मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

(कमलाचण्डी ग्रन्थमाला - ६)
श्रीलक्ष्मी-प्रत्यंगिरार्चनम्
संकलन एवं सम्पादक
'कुलमार्तण्ड'
पं. मधुसूदन प्रसाद शुक्ल

श्री मधुसूदन प्रकाशन
पो०ओ० जाखचौरा,
टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)
दूरध्वनि : 9760219141, 9997979276